महर्षि जैमिनि की कालजयी रचना

जैमिनि सूत्रम्

(सम्पूर्ण)

व्याख्याकार :
डॉ. सुरेश चन्द्र मिश्र
ज्योतिषाचार्य
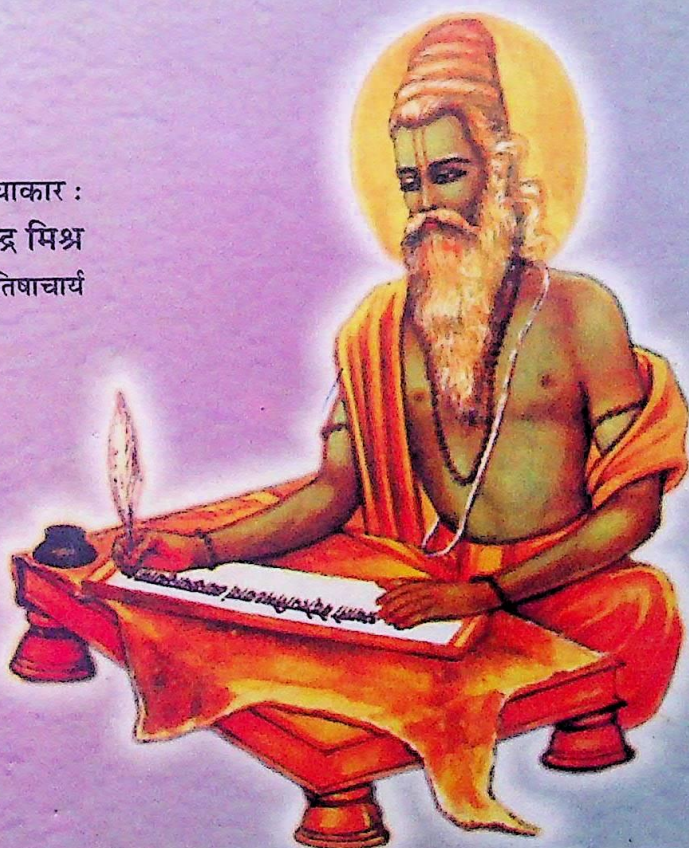
अनोखे व निराले फलित सिद्धान्त, 1100 सूत्रों में संकलित

जैमिनीय मत का वास्तविक व संदेह - रहित विवेचन

ग्रंथ परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ में महर्षि जैमिनी ने लगभग 1100 सूत्रों में फलित ज्योतिष के विशिष्ट व निराले सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। ये नियम व्यवहार में खरे उतरते हैं, जो इसकी विशेषता हैं।

महर्षि पराशर व जैमिनी ये दो व्यक्तित्व ऐसे हैं जिन्होंने फलित ज्योतिष के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया है। इस भाष्य में सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन व तर्कपूर्ण दृष्टि भी मिलेगी।

हिन्दी भाषा में व्याख्या सहित यह सम्पूर्ण सूत्रों का भाष्य निश्चय ही जैमिनीय मत को समझने व परखने में लोचन स्थानीय सिद्ध होगा।

ऐसे अनोखे नियम व फलित के सिद्धान्त और पद्धतियाँ इसमें मिलेंगी, जो किसी दूसरे ग्रंथ में कहीं भी प्राप्त नहीं।

सूत्रों के अर्थ को समझने व भ्रान्तियों को दूर करने के लिए लिखा गया यह शान्तिप्रिय भाष्य आपकी सभी जिज्ञासाओं को पूरा करेगा व एक ही स्थान पर सम्पूर्ण विवेचन सर्वप्रथम प्राप्त होगा।

व्याख्याकार : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र

मूल्य 150 रुपये

महर्षि जैमिनि की कालजयी रचना

जैमिनि सूत्रम् सम्पूर्ण

(*Jaimini Sutram*)

(हिन्दी भाष्य व्याख्या सहित)

भाष्यकारः

डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्रः

आचार्य, एम०ए०, पी-एच०डी०
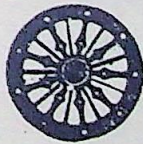
रंजन पब्लिकेशन्स

१६, अंसारी रोड, दरियागंज

नयी दिल्ली-११०००२

प्रकाशक :
रंजन पब्लिकेशन्स
१६, अंसारी रोड, दरियागंज,
नयी दिल्ली-११०००२
फोन : २३२७८८३५

संस्करण– 2003

मूल्य : १५० रुपये

मुद्रक :
वन्दना इंटरप्राईजिज दिल्ली-९२
दूरभाष : 22542474
22428980

एक दृष्टि में

जैमिनि के सभी उपलब्ध सूत्रों का हिन्दी भाष्य
राशियों की विशेष दृष्टि का प्रकार
कारकांश लग्न से सभी प्रकार का फलादेश
पद लग्न व आपकी आर्थिक दृष्टि
उपपद लग्न व आपका दाम्पत्य जीवन
जीविका, व्यवसाय व रोग-निर्णय
आयु-निर्णय का विस्तृत व प्रामाणिक मार्ग
यशस्वी, ग्रन्थकार व भाग्यशाली होना
केमद्रुम योग का अनोखा विचार
कारागार योग, सुख, विद्या, बुद्धि व वैभव
स्त्री का रूप, सौन्दर्य, स्वभाव, चरित्र व स्त्री-रोग
अपनी कुण्डली से माता-पिता व संतान का भाग्य
पिता की कुण्डली से पुत्र की जन्म-कुण्डली जानना
अस्वाभाविक, दर्दनाक या स्वाभाविक मरण
अनेक प्रसिद्ध व अप्रसिद्ध दशा प्रकार व फल
जैमिनीय मत में राजयोग एक नया ढंग
मारक स्थान, मारक दशा व मारक रोग
आधान लग्न से ही संतान का लिंग-वर्ण
स्त्री जातक के गूढ़ व विशेष नियम
षड्वर्गों का फलादेश—एक विशेषता
नवम व सप्तम स्थान भी पुत्र स्थान
भाव लग्न, घटी लग्न, होरा लग्न आदि से फलादेश

अनेक फलित पद्धतियाँ—अन्यत्र दुर्लभ

विषय-सूची

प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

प्ररोचना

जैमिनिमुनिसूत्रेषु विशयव्याकुलेष्विह ।
अदः शान्तिप्रियंभाष्यं निर्भ्रान्तं भूतये भवेत् ॥

जैमिनि सूत्र का यह शान्तिप्रिय हिन्दी भाष्ययुक्त आदिम संस्करण अपने पाठकों के समक्ष रखते हुए आज अपार हर्षानुभूति हो रही है। मुनि सम्मत अर्थ क्या है? इसका निर्णय तो परमेश्वर या जैमिनिमुनि ही कर सकते हैं। परन्तु प्राचीन ग्रन्थावलोकन, वृद्धकारिकाओं के अध्ययन व गुरुजनों के प्रसाद से जो निष्कर्ष निकले, वे ही यहाँ प्रस्तुत हैं।

ये निष्कर्ष सत्य के निकटतम सन्निकर्ष में हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। फिर भी इसकी हेयोपादेयता का निर्णय सुविज्ञ पाठक ही करेंगे और वह निर्णय ही वास्तविक होगा।

जहाँ सूत्रों का शुद्ध पाठ, क्रम निर्धारण व सभी सूत्रों का क्रमबद्ध विवेचन इस संस्करण में मिलेगा, वहीं नूतन व अनोखे, अनदेखे विषय आपका मन मोह लेंगे।

सम्पूर्ण जैमिनि सूत्र के भाष्य को प्रस्तुत करने का यह साधारण-सा प्रयत्न सुफल युक्त करने में मुझे जिन पूर्वसूरियों का कृतित्व प्रसाद मिला है, मैं उनका हृदय से अधमर्ण हूँ।

परम गुरु व गुरुजनों की कृपा सदा से मेरा सम्बल रही है। अतः मैं उनके प्रति मन, वचन, कर्म से नतमस्तक हूं।

यथा पूर्व इसे प्रकाशित करने का कार्य मैं० रंजन पब्लिकेशन्स ही कर रहे हैं, एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं।

अन्त में, मानव स्वभाववश हुई भूलों के लिए क्षमा याचनापूर्वक बुध-वृन्द से निवेदन है कि वे अपने बहुमूल्य विचार भेजकर कृतार्थ करें। उनके सत्परामर्शों का अन्तस्तल से स्वागत किया जाएगा।

विनयावनतः

सुरेशचन्द्र मिश्रः
श्रीसमन्तभद्र महाविद्यालय,
दरियागंज, नयी दिल्ली-2

।। भाष्यकर्तृकं मंगलाचरणम् ।।

भास्वतः शाश्वतीः ज्योतिश्चिन्मयी सुप्रबोधिनी ।
परमात्मस्वरूपा सा भ्राजतां मानसे सदा ।।१।।

वाणीनां मूलभूता विवृतिविरहिता या पराऽखण्डरूपा,
पश्यन्ती सार्थसंज्ञा सकलध्वनिगता या च नाभौ सरन्ती ।
मध्याख्या मध्यदेशे हृदयपुटगता या खलूद्भेदमाप्ता,
पश्चान्नो देहिनां सा मुखविवरगता वैखरी मां पुनातु ।।२।।

सितशतदलवासा श्वेतवस्त्रावृता सा,
विमलविधुविलासा ध्वान्तसन्दोहनाशा ।
विदितसकलभाषा सर्वकालप्रकाशा,
विधिहरिहरपूज्या रक्षतु भ्रान्तिपाशात् ।।३।।

पञ्चास्यादधशकले क्रमगणनया कीटतो व्युत्क्रमाच्च,
गोग्लावौ कालपालौ सकलगृहपती विश्रुतौ जातके यौ ।
तेभ्योऽन्येभ्यो ग्रहेभ्यो गृहमिहवितरन्तौ यतः खेटपालौ,
तौ वन्दे विश्ववन्द्यौ निखिलमलहरौ जैमिनेः सूत्रभाष्ये ।।४।।

पितरमखिलानन्दं शान्तिदेवीं च मातरम् ।
नत्वा जैमिनिसूत्रेषु भाषाभाष्यं करोम्यहम् ।।५।।

श्री विश्वनाथ कृपयेह सुरेशमिश्रः
वस्वम्बराङ्कप्रणवे (१९०८) शकवत्सरेऽहम् ।
दिल्ल्यां विबोधजटिले मुनिसूत्रसंघे,
शान्तिप्रियं भ्रमहरं वचनं तनोमि ।।६।।

नमः पूर्वप्रणेतृभ्यो मया बद्धोऽयमञ्जलिः ।
येषां सुकृतिनां वाणी सुधामप्यवधीरिणी ।।७।।

शंकरं शंकराचार्यं भाष्यकारं पतञ्जलिम् ।
नौमि होरागमज्ञांश्च सम्यगर्थाः भवन्तु मे ।।८।।

॥ ॐ परं ज्योतिषे नमः ॥

प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

मंगलाचरण

उपदेशं व्याख्यास्यामः ॥१॥

जैमिनीय सूत्रों की रचना करने से पूर्व जैमिनिमुनि भगवान शंकर की स्तुति करते हुए वर्णनीय विषय की घोषणा करते हैं। यहाँ पर उपदेश शब्द के दो अर्थ हैं—भगवान् शंकर और ज्योतिष शास्त्र। संस्कृत भाषा में 'उ' अक्षर का अर्थ है--शिव, अर्थात् उकार के अधिष्ठाता शिव हैं। 'उपदेश' शब्द का अर्थ हो जाता है—'उ' पद अर्थात् अक्षर वाले ईश अर्थात् प्रभु शंकर। ऐसे भगवान् शंकर को हम विशेष श्रद्धा के साथ नमस्कार करते हैं।

उपदेश का दूसरा अर्थ है—उपदेश करने अर्थात् प्रकाशित करने, समझाने, सिखाने योग्य अर्थ। इस प्रसंग में ज्योतिष शास्त्र के तत्त्वों को प्रकट करना ही अभीष्ट है, अतः ज्योतिष के उपदेश अर्थात् तत्त्वार्थ की हम यहाँ व्याखया करेंगे। ऐसा अर्थ लगाना युक्तियुक्त है।

राशियों व ग्रहों की दृष्टि

अभिपश्यन्त्यृक्षाणि ॥२॥

पार्श्वभे च ॥३॥

जैमिनीय मत से राशियाँ भी दूसरी राशियों पर दृष्टि रखती हैं। इस विषय में नियम है कि सभी राशियाँ (ऋक्ष) सामने पड़ने वाली व

पार्श्व में पड़ने वाली राशियों को देखती हैं।

चर राशियाँ अपने से ५,८,११ राशियों को देखती हैं। स्थिर राशियाँ ३,६,९ राशियों को व द्विस्वभाव राशियाँ ४,७,१० राशियों को देखती हैं। इस विषय में जैमिनीय सम्प्रदाय के वृद्ध पुरुषों का कथन है—

'चरं धनं विना स्थास्नं स्थिरमन्त्यं विना चरम् ।
युग्मं स्वेन बिना युग्मं पश्यन्तीत्ययमागमः ।।' (वृ. का.)

'चर राशियाँ अपने से द्वितीय स्थान की स्थिर राशि को छोड़कर शेष स्थिर राशियों को देखती हैं।

स्थिर राशि अपने से द्वादश स्थान में विद्यमान चर राशि को छोड़ कर शेष चर राशियों को देखती हैं।

द्विस्वभाव राशि स्वयं को छोड़कर शेष द्विस्वभाव राशियों को देखती हैं।'

इन राशियों व वक्ष्यमाण ग्रहों की दृष्टि जैमिनीय मत का एक विलक्षण (पराशर से भिन्न) प्रकार है।

तन्निष्ठाश्च तद्वत् ।।४।।

इन राशियों में स्थित ग्रह भी पूर्वोक्त राशिदृष्टि के प्रकार से ही परस्पर दृष्टि करते हैं। जैसे—मेष राशि में स्थित ग्रह वृश्चिक, सिंह या कुम्भ में स्थित ग्रह को देखेगा।

इसी प्रकार अन्य राशियों में स्थित ग्रहों के विषय में भी जाना जा सकता है। वृद्धों ने कहा है—

'चरस्थं स्थिरगः पश्येत् स्थिरस्थं चरराशिगः ।
उभयस्थं तूभयगो निकटस्थं विना ग्रहम् ।।' (वृ. का.)

'निकटस्थ राशि में स्थित ग्रहों को छोड़कर चरराशिगत ग्रह स्थिरराशिगत को, स्थिरगत चरगत को व द्विस्वभावगत द्विस्वभावगत ग्रह को देखेगा।'

जिस प्रकार पराशर मत में ग्रहों की एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद व पूर्ण दृष्टि होती है वैसा इस मत में नहीं है। यहाँ केवल पूर्ण दृष्टि ही होती है।

अर्गला का विचार

दारभाग्यशूलस्थार्गलानिध्यातुः ॥५॥

जिस राशि का विचार करना अभीष्ट हो, उस राशि को देखने वाले ग्रह का निर्णय पूर्वोक्त प्रकार से कर लीजिए। उस दृष्टिकारक ग्रह से दारस्थान अर्थात् चतुर्थ, शूल अर्थात् एकादश व भाग्य अर्थात् द्वितीय स्थान में स्थित ग्रह पूर्वोक्त दृष्टिकारक ग्रह दृष्ट भाव के अर्गला ग्रह होते हैं।

अर्गला दरवाजा वन्द करने वाले कुण्डे को कहते हैं। चुंगी आदि इकट्ठा करने के लिए सड़कों पर जो लकड़ी आदि के अवरोधक (Barrier) लगा दिये जाते हैं, वे अर्गला कहे जाते हैं। यह संस्कृत शब्द है। अतः आशय यह है कि अर्गला ग्रह दृष्टिकारक ग्रह या भाव के फल को संभाल कर रखते हैं, उसे विगलित होने से बचाते हैं। इस अर्गला के शुभ, पाप व सामान्य—ये भेद होते हैं। इनका विवेचन भी अगले सूत्रों में दिया जा रहा है।

अब यहाँ एक प्रश्न है कि यह अर्गला भाव की होती है या ग्रह की। इस विषय में हमारा विचार है कि जैमिनि के सूत्रों में ग्रहों की नहीं, भावों की ही अर्गला मानी जाती है।

सरल प्रकार से समझिए—

(i) जिस भाव का विचार करना हो, उस भाव को देखने वाले ग्रहों को सूत्र ४ के आधार पर जान लें।

(ii) अब इन द्रष्टा ग्रहों से यदि २,४,११ भावों में ग्रह स्थित हैं तो वे उस विचारणीय भाव के अर्गला ग्रह होंगे।

(iii) यह अर्गला प्रायः शुभ पाप ग्रहों से सामान्यतः होती है।

अब यहां एक विशेष बात और कहनी है। सूत्र में प्रयुक्त दार, भाग्य आदि शब्दों का अर्थ यदि सामान्यतः करेंगे तो पराशरमतानुसार सप्तम व नवम स्थान होगा। परन्तु यहाँ पर क्रमशः चतुर्थ व द्वितीय स्थान अर्थ किया है। इसके पीछे क्या रहस्य है? इसे समझाते हैं। यह सिद्धान्त व प्रक्रिया आपको अन्त तक याद रखनी है। जैमिनीय सूत्रों में इसी के आधार पर अर्थ किया जाना अभीष्ट है।

ज्योतिष शास्त्र में ही क्या, अन्य प्राचीन भारतीय शास्त्रों में भी संख्या को अक्षर से प्रकट करने की परिपाटी रही है। इससे कवियों व लेखकों को बड़ी सुविधा होती थी। उदाहरणार्थ यदि ७ का अंक अभीष्ट है तो इसे संस्कृत में हम वार, ऋषि, नग आदि शब्दों से कह सकते हैं। कारण यह है कि वार सात होते हैं। सप्तर्षि तो प्रसिद्ध हैं। यह एक प्रकार है। दूसरा प्रकार **'कटपयादि प्रकार'** के नाम से प्रसिद्ध है। कटपयादि क्या होता है?

क से लेकर ह तक ३३ व्यंजन होते हैं। इनमें से न व ञ को छोड़ कर शेष ३१ व्यंजनों को क=९, ट=९, प=५, य=८ इस क्रम से लिखें। क्रमशः क और ट आदि से शुरू होने के कारण इसका नाम कटपयादि है।

१.	क	ट	प	य
२.	ख	ठ	फ	र
३.	ग	ड	ब	ल
४.	घ	ढ	भ	व
५.	ङ	ण	म	श
६.	च	त		ष
७.	छ	थ		स
८.	ज	द		ह
९.	झ	ध		

इस ग्रन्थ में शब्दों का अर्थ जहाँ आवश्यक होगा, कटपयादि प्रकार से ही लगाया जाएगा। आपने देखा कि उपर्युक्त चक्र में प्रत्येक व्यंजन को एक अंक प्रदान कर दिया गया है। उसी अंक को चक्र से लेकर बाएँ से दाएँ लिख लीजिए। वह संख्या कुण्डली के किसी स्थान विशेष की वाचक होगी। यदि संख्या १२ से अधिक है तो उसे १२ से भाग देकर शेष का ही ग्रहण कीजिए। जैसे—सूत्र में आए दार शब्द का अर्थ जानना है—

द=८, र=२ है। इसे **'अंकानां वामतो गतिः'** के सिद्धान्त से उल्टे क्रम से २८ लिखा। १२ से भाग देने पर शेष ४ बचा। अतः दार शब्द का अर्थ चौथा स्थान है।

भाग्य शब्द को लें। भ=४, य=१ अर्थात् १४। आधे अर्थात् स्वर रहित व्यंजन की कोई संख्या नहीं होती है।

१२ से विभाजित करने पर शेष बचा २, अतः भाग्य शब्द दूसरे स्थान का वाचक है।

शूल को देखें—श=५, ल=३ अर्थात् ३५÷१२। शेष ११ बचा। अतः शूल शब्द का अर्थ ग्यारहवाँ स्थान हुआ।

यह क्रम मस्तिष्क में बैठा लें। यही पद्धति अन्त तक काम आएगी। इसी कटपयादि के विषय में वृद्ध कारिका है—

'कटपयवर्गभवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरंकाः।
नञि च शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथितम्।' (वृ. का.)

'क ट प य से शुरू कर सारे वर्गाक्षरों को (न ञ को छोड़कर) कादि नव, टादि नव, पादि पंच व यादि अष्ट क्रम से लिखकर क्रमसंख्या दें। सभी स्वर, न व ञ् ० के द्योतक होंगे।

अन्य अर्गला का विचार

कामस्था तु भूयसा पापानाम् ॥६॥

जिस दृष्टिकर्ता ग्रह से काम अर्थात् तृतीय स्थान में बहुत से पाप-ग्रह हों अर्थात् कम से कम तीन हों तो उस भाव के लिए अर्गला होते हैं। यह अर्गला पाप ग्रहों से सम्बन्धित होने के कारण पाप अर्गला है। पूर्वोक्त अर्गला सामान्य, न शुभ और न अशुभ होती हैं। तृतीय में यदि बहुत से शुभ ग्रह हों तो वह शुभ अर्गला नहीं होती। इस अर्गला के लिए कम से कम तीन पापग्रहों का होना आवश्यक है। इस अर्गला का निराकरण अर्थात् बाध नहीं होता। अतः पूर्वोक्त सूत्र की अपेक्षा इसे अलग सूत्र में बताया गया है। जैमिनीय मत में सूर्य, मंगल, शनि, राहु पाप हैं व गुरु, केतु, शुक्र, बुध शुभ व मेष वृश्चिक का चन्द्रमा पाप व अन्य राशिगत शुभ होता है। विशेष विवेचन आगे २.१,४१-४२ के भाष्य में देखें।

अर्गला-प्रतिबन्धक ग्रहों का विवेक

रिष्फ नीच कामस्था विरोधिनः ॥७॥

रिष्फ अर्थात् ग्यारहवाँ स्थान, नीच अर्थात् बारहवाँ स्थान व काम

अर्थात् तृतीय स्थान, इन तीन भावों में स्थित ग्रह अर्गला कारक ग्रहों के प्रतिबन्धक अर्थात् विरोधी होते हैं।

जिस अर्गला कारक ग्रह के विरोधी ग्रहों का ज्ञान करना हो तो उस विचारणीय ग्रह से तृतीय, द्वादश व दशम स्थानों में स्थित ग्रहों को उसका विरोधी अर्थात् शत्रु समझना चाहिए। तब अर्गला भंग होता है। यहाँ भी रिष्फ आदि शब्दों का अर्थ कटपयादि के आधार पर ही लगाया गया है। रि=२, फ=२ अर्थात् २२÷१२। शेष १०। इसी प्रकार सब जगह सावधानी से शब्दों के अर्थों का निर्धारण करना है। पराशर मत से प्रसिद्ध भाववाचक शब्दों का अर्थ लेकर इस जैमिनीय मत में भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। ४-१०, २-१२, ३-११ ये भाव परस्पर विरोधी हैं। अतः पूर्वोक्त चतुर्थादि भावों की अर्गला, विरोधी भाव में ग्रह हो तो भग्न हो जाती है। यदि वहाँ ग्रह न हो तो अर्गला का प्रभाव बना रहेगा।

प्रतिबन्धक ग्रहों का परिहार

न न्यूना विबलाश्च ॥८॥

पूर्वोक्त अर्गला ग्रहों की अपेक्षा, अर्गला प्रतिबन्धक ग्रह यदि निर्बल व कम संख्या वाले हों तो प्रतिबन्धक नहीं होते। अर्थात् अर्गला ग्रह तीन हों और प्रतिबन्धक ग्रह दो या एक हो तो उसे प्रतिबन्धक नहीं माना जाएगा। बल का निर्धारण जैमिनीय मत में किस प्रकार होता है, इसका विवेचन आगे यथाप्रसंग किया जाएगा। यहाँ संकेत मात्र करते हैं। जैमिनीय मत में शनि, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा व सूर्य क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक बली (निसर्ग बली) माने जाते हैं। अर्थात् शनि सबसे कम बली व सूर्य सर्वाधिक बली होता है। इसके अतिरिक्त अंशों की अधिकता के तारतम्य से व राशि से बल का निर्णय किया जाता है। यह विषय प्रसंगानुसार आगे स्पष्ट करेंगे। देखें अ० २.३ सूत्र ५-१७ का भाष्य।

प्राग्वत् त्रिकोणे ॥९॥

विपरीतं केतोः ॥१०॥

जिस राशि की अर्गला का विचार करना हो, उस राशि पर दृष्टि रखने वाले ग्रह से पंचम स्थान में कोई ग्रह हो तो वह अर्गला कारक ग्रह

माना जाएगा । लेकिन ध्यान रखिए, दृष्टिकारक ग्रह से नवम स्थान में भी कोई ग्रह हो तो वह अर्गला का प्रतिबन्धक हो जाएगा ।

यदि पंचम में अधिक ग्रह हों और नवम में निर्बल या कम ग्रह हों तो अर्गला सुरक्षित रहेगी । इसके विपरीत नवम में अधिक ग्रह हों और पंचम में कम तो अर्गला का प्रतिबन्ध हो जाएगा । यहाँ पर त्रिकोण शब्द का अर्थ सामान्यत: प्रसिद्ध ५-९ भाव ही हैं । कटपयादि प्रकार यहाँ पर प्रयुक्त नहीं होगा । अत: निर्देश कर दिया गया है । जब अन्यथा निर्देश न हो तब कटपयादि का ही प्रयोग करें । यह बात अन्त तक उपयोगी है ।

अब सूत्र संख्या १० को देखिए । यहाँ पर केतु के विषय में एक विशेष नियम बताया गया है । केतु से पंचम स्थान को अर्गला का प्रतिबन्धक व नवम स्थान को अर्गला का नियामक माना जाएगा । इसीलिए कहा है कि केतु के विषय में विपरीत प्रकार अपनाया जाएगा । **इस सूत्र १० का प्रयोग केवल सूत्र ९ के साथ ही है, सब जगह इसका प्रयोग नहीं होगा ।**

आत्मकारक आदि का ज्ञान

आत्माधिक: कलादिभिर्नभोग: सप्तानामष्टानां वा ।।११।।

अब सामान्यत: प्रसिद्ध आत्मकारक, अमात्यकारक आदि ग्रहों का विवेचन किया जा रहा है । जैमिनीय मत में जन्म लग्न से भी अधिक महत्त्व आत्मकारक को प्राप्त है । ये आत्मकारक आदि सात कारक पराशर मत में 'चर कारकों' के नाम से प्रसिद्ध हैं । जैमिनि मुनि को भी ये सात ही अभीष्ट हैं ।

सूर्य से लेकर शनि पर्यन्त सातों में से अथवा राहु को मिलाकर आठों ग्रहों में से जिसके अंश सबसे अधिक होंगे, वही आत्मकारक होगा । यदि अंश समान हों तो कलाओं की अधिकता से और कलासाम्य होने पर बल के आधार पर आत्मकारक का निर्णय किया जाएगा । बल के विषय में विशेषतया आगे बताया जाएगा ।

यहाँ सूत्र में राहु का ग्रहण अनिवार्य है या स्वैच्छिक ? अर्थात् क्या आप स्वेच्छा से सातों या आठों ग्रहों में से कारकों का निर्णय कर सकते हैं ? वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है । विशेष परिस्थितियों में राहु का ग्रहण

होगा, सदा नहीं। केतु का ग्रहण इसलिए नहीं किया जाता क्योंकि केतु के अंशादिक सदैव राहु के तुल्य ही होते हैं। अतः सूत्र में 'नवानाम्' का प्रयोग न कर 'अष्टानाम्' शब्द का प्रयोग किया गया है।

अस्तु राहु का विचार कब करें और कब न करें। इसलिए सर्वप्रथम आत्मकारक का निर्णय करना होता है। आत्मकारक का निर्णय करने में अंशों की अधिकता का विचार करना चाहिए। यहाँ कलादि की अधिकता नहीं देखेंगे। यदि दो या अधिक ग्रहों के अंश समान हों तो वे दोनों ही ग्रह आत्मकारक माने जाएँगे। अर्थात् इन दोनों ग्रहों का प्रभाव उस मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माणादि पर पड़ेगा। इस स्थिति में ग्रह की कमी पड़ेगी। उस स्थिति में राहु उस रिक्तता को पूरा करेगा। **जैमिनीय सूत्रों के आधार पर महर्षि पराशर ने भी यही माना है :**

न भवेद् राशिकलयोराधिक्यादात्मकारकः।
कारकोऽशाधिको ग्राह्यो ह्यल्पांशः कारकोऽन्तिमः॥

(बृ. परा., कारक., श्लो. ५)

दो ग्रहों के अंश समान होने पर ही राहु को सम्मिलित करना चाहिए, अन्यथा नहीं। इस बात की पुष्टि भी वहीं से हो जाती है—

यदि खेटौ समावंशे राह्वन्तान् गणयेद् द्विज ! ॥ (वही)

आशय यह है कि दो या तीन ग्रहों को एक ही कारकत्व प्राप्त हो सकता है। जब समान अंशादिक होने पर एक ही कारकत्व दो ग्रहों को प्राप्त होता हो तो पराशर के अनुसार राहु को सम्मिलित कर लेना चाहिए। इस प्रकार सातों कारकत्व का निर्णय हो जाएगा। लेकिन यहाँ यह विशेषता है कि आत्मकारक के निर्णय में राहु का विचार अवश्य करें। यदि राहु सर्वाधिक भुक्तांश वाला हो (एतदर्थ राहु के स्पष्टांशों को ३० में से घटाकर शेष को लें) तो वह भी आत्मकारक हो सकता है। यदि तत्तुल्य अंशों वाला कोई और ग्रह भी है तो उसे भी आत्मकारक माना जाएगा। शेष का निर्णय भी इसी तरह होगा। अब शंका यह है कि यदि तीन या अधिक ग्रहों को समान गतांश होने के कारण एक ही कारकत्व मिल रहा हो, तो कई कारकत्व पद तो खाली ही रह जाएँगे। जैसे सात कारक पद हैं और अधिकतम आठ ग्रह प्रत्याशी हैं। यदि एक कारक पद पर तीन ग्रह प्रतिष्ठित हो गए तो, शेष प्रत्याशी रहे पाँच और कारक पद

शेष रहे छह। तब प्रत्याशी ग्रहों की कमी पड़ेगी। उक्त स्थिति में क्या होगा? इस विषय में ध्यातव्य है कि जैमिनि मत में स्पष्टतः तब स्थिर कारकों में से कारक पद भरे जाएँगे। जैसे सूर्य, चन्द्रादि ग्रहों को क्रमशः पिता, माता, भ्राता, मित्र, पितामह व अमात्यत्व, स्त्री पुत्रादि का कारक माना जाता है। पिता व माता के विषय में विशेष है कि दिन में जन्म होने पर इनके कारक सूर्य व शुक्र होते हैं और रात्रि में चन्द्र व शनि क्रमशः होते हैं। (देखें—अ० २.२, सूत्र १–३)

आत्मकारक का महत्त्व

सईष्टे बन्धमोक्षयोः ॥१२॥

यह आत्मकारक मनुष्य के भाग्य के बन्ध (अशुभ) व मोक्ष (शुभ) फल का स्वामी है। अर्थात् मनुष्य के भविष्य-निर्माण में आत्मकारक की स्थिति निर्णायक है। फल विचार के समय लग्न, चन्द्र व आत्मकारक से विचार करने की परिपाटी का यही स्वारस्य है।

यह आत्मकारक जब नीचगत या पापयुक्त हो तो अपनी दशादि में अशुभ फल देता है। जब शुभयुक्त व उच्चादिगत हो तो बहुत शुभ फल देता है।

अथवा आत्मकारक पापयुति आदि में हो तो मनुष्य सांसारिक बन्धनों में पड़कर कष्ट पाता है। वही जब शुभ सम्पर्क में हो तो वह सुखी बनाकर अन्ततोगत्वा अपवर्ग अर्थात् मोक्ष देता है। आशय आत्मकारक की महत्ता को रेखांकित करने से है।

अन्य कारकों का निर्णय

तस्यानुसरणादमात्यः ॥१३॥

तस्य भ्राता ॥१४॥

तस्य माता ॥१५॥

तस्य पुत्रः ॥१६॥

तस्य ज्ञातिः ॥१७॥

तस्य [illegible] ॥१८॥

आत्मकारक से कम अंशादि वाला ग्रह अमात्यकारक होता है। तब उससे कम अंशादि वाला भ्रातृकारक, उससे कम अंशादि वाला मातृकारक, उससे कम अंशादि वाला पुत्र कारक, उससे कम अंशादि वाला ज्ञाति कारक व सबसे कम अंशादि वाला स्त्री कारक होता है।

इन सबमें आत्मकारक व अमात्यकारक के योगादि से राजयोग बनते हैं। ये दोनों बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन चर कारकों व आगे बताए जा रहे स्थिर कारकों का तुलनात्मक अध्ययन करके फलादेश करना चाहिए। अर्थात् केवल इन चर कारकों से ही फलादेश नहीं होगा; अपितु लग्न, भाव, पद व कारक आदि अवश्य विचारणीय हैं।

मात्रा सह पुत्रमेके समानन्ति ॥१९॥

कुछ आचार्यों के मत से मातृकारक ही पुत्रकारक होता है। पुत्र का विचार भी मातृकारक से ही किया जा सकता है।। अथवा पुत्रकारक के स्थान पर मातृकारक मानकर, भ्रातृकारक से ठीक अगला ग्रह पितृकारक हो जाएगा। ऐसा सम्प्रदाय है। यद्यपि पराशर पितृकारक को अलग मानते हैं, तथापि जैमिनीय मत में चर पितृकारक का स्थान नहीं है। अतः शंका नहीं करनी चाहिए। पराशर मत में क्रमशः कम अंशों वाले ग्रहों का कारकत्व इस प्रकार है—

आत्मकारक, अमात्यकारक, भ्रातृकारक, मातृकारक व पुत्रकारक, पितृकारक, ज्ञातिकारक व स्त्रीकारक।

आशय यह है कि जैमिनीय मत के पुत्रकारक को मातृकारक के साथ मिलाकर, पुत्रकारक के स्थान पर पितृकारक माना जा सकता है। यह मत जैमिनि मुनि के मत से गौण है। इसी कारण उन्होंने दूसरों के नाम से इसे प्रस्तुत किया है।

नित्य कारकों का विभाजन

भगिन्याऽऽरतः श्यालः कनीयाञ्जननी चेति ॥२०॥

मंगल से बहन, पत्नी के भाई अर्थात् धर्मभ्राता (साला) भाई व माता आदि का विचार करना चाहिए।

यहाँ हम यह बात बताना चाहते हैं कि पराशर व जैमिनि के समय में कारकत्व विचार का यह मूलभूत स्वरूप है। शनैः-शनैः इनसे विचार-

णीय विषयों में यथावसर वृद्धि होती गई व आज मंगल आदि ग्रहों का कारकत्व बहुत विशाल है। इस विषय में इन दोनों बातों को परस्पर विरोधी न मानकर विकास का लक्षण ही मानना चाहिए। कारकत्व के विषय में हमारी (**प्रणवाख्या**) **भावमंजरी** या **उत्तरकालामृत** का अवलोकन करें।

मातुलादयो बन्धवो मातृसजातीया इत्युत्तरतः ।।२१।।

उत्तर अर्थात् बाद वाले ग्रह अर्थात् बुध से मामा, मामी, अन्य बन्धु (सजातीय) व माता के समान पदवी वाली स्त्रियों (ताई, चाची आदि) का विचार करना चाहिए।

पितामहः पतिपुत्राविति गुरुमुखादेव जानीयात् ।।२२।।

गुरु से लेकर शनि पर्यन्त तीनों ग्रहों से क्रमशः दादा-दादी, पति व पुत्र का विचार करना चाहिए। अर्थात् बृहस्पति दादा-दादी का, शुक्र पति का व शनि पुत्र का नित्य कारक है।

शुक्र का विशेष कारकत्व

पत्नी पितरौ श्वसुरौ मातामहा इत्यन्तेवासिनः ।।२३।।

अन्तेवासी अर्थात् शुक्र से पत्नी, माता-पिता सास-ससुर व नाना-नानी का भी विचार करना चाहिए।

कारकों के उक्त विषय का समर्थन बृहत्पाराशर के कारकाध्याय से भी हो जाता है। पराशर ने सूर्य व चन्द्रमा का कारकत्व भी माना है जबकि जैमिनि मुनि ने इन्हें स्थिर कारकत्व प्रदान नहीं किया है। कुछ लोग अन्तेवासी अर्थात् ग्रहों में सबसे बाद में रहने वाला केतु ऐसा अर्थ भी करते हैं। किन्तु शुक्र वाला अर्थ अधिक सटीक प्रतीत होता है।

ग्रहों का निसर्गबल

मन्दोऽज्यायान् ग्रहेषु ।।२४।।

शनि का निसर्गबल सूर्यादि सातों ग्रहों में सबसे कम होता है। अर्थात् शनि के अधोवर्ती ग्रह क्रमशः उत्तरोत्तर निसर्ग बली हो जाते हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **वराहमिहिर** ने **बृहज्जातक** में भी किया है—

श कु बु गु शु चन्द्रार्का वृद्धितो वीर्यवन्तः ।। (अ. २ श्लो. २१)

'अर्थात् शनि, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा व सूर्य उत्तरोत्तर अधिक निसर्गबली होते हैं।'

पिछले सूत्रों में बताया था कि फल निर्णय में चर कारक, अर्गला-ग्रह, स्थिर कारक, वक्ष्यमाण आरूढ़ पद आदि का उपयोग होता है। वहाँ यह सम्भावना व्यक्त की गई थी कि एक ही कारकत्व कई ग्रहों को प्राप्त हो तो चर की अपेक्षा स्थिर को फलदायी माना जाएगा। कई कारक होने पर बलवान ग्रह के स्वरूप गुणादि के आधार पर फलादेश किया जाना चाहिए। तब बल के विषय में जो जिज्ञासा थी उसे यहाँ शान्त किया जा रहा है। स्पष्ट है कि जैमिनि मुनि पराशरादि सम्मत निसर्ग बल को स्वीकार करते हैं। अन्य बलों का विवेचन आगे यथावसर किया जाएगा।

चरदशा में गणना का विशेष प्रकार

प्राचीवृत्तिर्विषमभेषु ॥२५॥

परावृत्योत्तरेषु ॥२६॥

न क्वचित् ॥२७॥

यह चर दशा लग्नादि बारह भावों की होती है। सामान्यत: विषम राशि (१, ३, ५, ७, ९, ११) का क्रम पूर्ववृत्ति अर्थात् बाएँ से दाएँ मानकर गणना की जाएगी। जैसे मिथुन राशि से चौथा स्थान जानना हो तो मिथुन कर्क, सिंह आदि राशि-क्रम से गणना होगी।

सम राशियों (२, ४, ६, ८, १०, १२) में गणना व्युत्क्रम अर्थात् कर्क, मिथुन, वृष, मेष, मीन, कुम्भ आदि व्युत्क्रम से होगी।

सू. २७ में इसका अपवाद बताया गया है। कहा गया है कि उक्त दोनों सूत्रों में बताए गए नियम कहीं-कहीं पर लागू नहीं होते हैं। इस विषय को स्पष्ट रूप से समझिए। क्योंकि सूत्र में इस विषय में कुछ भी नहीं बताया गया है। यहाँ क्वचित् शब्द से तात्पर्य चरदशा में वृष व वृश्चिक (दोनों सम राशि) एवं सिंह व कुम्भ (दोनों विषम राशि) से है। अर्थात् इन राशियों में उक्त पद्धति नहीं अपनायी जाएगी। वृष व वृश्चिक में उक्त नियम के विपरीत क्रमगणना होगी।

सिंह व कुम्भ में व्युत्क्रम गणना की जाएगी। ये दोनों सामान्य

सूत्रार्थ के अपवाद हैं। इस विषय में **वृद्धकारिका है—**

क्रमाद् वृषे वृश्चिके च व्युत्क्रमात्कुम्भसिंहयोः ॥

(वृ. का.)

इस विषय का यथावत् ग्रहण पराशर ने भी किया है।

दशाध्याय का चरदशासाधन सम्बन्धी प्रकरण देखें। त्रिकोणदशा व चर दशा की गणना में ही यह अपवाद है, सर्वत्र नहीं।

दशा वर्ष जानने का प्रकार

नाथान्ताः समाः प्रायेण ॥२८॥

प्रत्येक राशि के दशा वर्ष अलग-अलग कुण्डलियों में अलग-अलग हो सकते हैं। इसे जानने का एक सामान्य सिद्धान्त यहाँ बताया जा रहा है। जिस राशि के दशा वर्ष जानने हों, उस राशि के स्वामी की स्थिति को देखें। उस राशि-से उसी राशि का स्वामी जितने स्थान दूर होगा, उतने ही उस राशि के दशा वर्ष होंगे। गणना करने का प्रकार पीछे बताया गया है। जैसे कर्क राशि की दशा जाननी है। कदाचित् कर्क का स्वामी चन्द्रभा सिंह राशि में है। तब राशि से १२वें स्थान में (उत्क्रम से) स्वामी स्थित है। अतः ११ वर्ष दशा के हैं। राशीश दूसरे स्थान में हो तो एक वर्ष, तीसरे स्थान में हो तो दो वर्ष इत्यादि प्रकार से समझना चाहिए। यदि राशीश स्वक्षेत्री होकर उसी राशि में हो तो राशि के १२ दशावर्ष माने जाएँगे। इस विषय में वृद्धों का कथन है—

तस्मात् तदीशपर्यन्तं संख्यामत्र दशां विदुः।

वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकं विनिर्दिशेत् ॥' (वृ.का.)

इस प्रकार राशि से राशीश पर्यन्त संख्या तुल्य दशा के वर्ष होते हैं। यदि उसी राशि में राशीश हो तो १२ वर्ष होंगे। यदि स्वराशि में न हो तो १-१ वर्ष मान लेना चाहिए।

सूत्र में प्रायः शब्द के प्रयोग से सूचित किया गया है कि इस दशा अवधि में नियमानुसार वृद्धि या हानि की जाती है, जो आगे स्पष्ट की जा रही है। ध्यान रखिए, यदि कोई ग्रह उच्चगत हो तो उसके नियमानुसार प्राप्त दशा वर्षों में एक (१) वर्ष की वृद्धि की जाएगी। यदि ग्रह नीचगत हो तो प्राप्त दशा वर्षों में से एक वर्ष कम कर दिया जाएगा।

वृद्ध कारिका है—

"उच्चखेटस्य सद्भावे वर्षमेकं विनिक्षिपेत् ।

तथैव नीचखेटस्य वर्षमेकं विशोधयेत् ।" (वृ. का.)

'प्राय:' शब्द से एक बात और विशेष रूप से बताई गई है। जैमिनि मत में वृश्चिक के दो स्वामी होते हैं—केतु व मंगल।

इसी प्रकार कुम्भ राशि के भी दो स्वामी होते हैं—शनि व राहु।

इन राशियों को द्विनाथ राशि कहा गया है। अब समस्या यह है कि कुम्भ के वर्ष राहु से निर्धारित होंगे या शनि से ? इसकी व्यवस्था भी है।

(i) यदि दोनों स्वामी ग्रह उसी स्थान में हों (केवल इन राशियों के संदर्भ में) तो १२ वर्ष की दशा मानी जाएगी।

(ii) यदि एक स्वामीग्रह उस राशि में हो और दूसरा अन्यत्र हो तो अन्यत्र स्थित ग्रह के आधार पर दशा वर्ष जानें। कहा गया है—

एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थितः ।

तदान्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत् ।। (वृ.का.)

(iii) यदि दोनों ही स्वामी ग्रह कहीं अन्यत्र स्थित हों तो बलवान् ग्रह तक गिनकर दशा वर्ष जानने चाहिएं। बली ग्रह का निर्णय करने के लिए पूर्वोक्त निसर्ग बल के आधार पर निर्णय करें तथा स्वक्षेत्री, उच्चगतादि को बली समझें।

(iv) यदि दोनों ग्रहों का बल समान हो तो राशि बल को ग्रहण करें। तथा राशिबली ग्रह से दशा वर्षों का निर्णय करें। **राशि बल क्या है** ? ग्रह हीन से ग्रह युक्त राशि बली है। चर राशि से स्थिर राशि अधिक बली है और स्थिर से अधिक बली द्विस्वभाव राशि है। कहा गया है—

द्वावप्यन्यर्क्षगौ तौ चेत्स ग्रहो बलवान् भवेत् ।

ग्रहयोगसमानत्वे चिन्त्यं राशिबलाद् बलम् ।।

चरस्थिरद्विस्वभावाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः ।

राशिसत्त्वसमानत्वे बहुवर्षो बली भवेत् ।।

(v) यदि राशिबल भी समान हो तो बहुत वर्षों वाले ग्रह से निर्णय

करना चाहिए।

(vi) यदि दोनों स्वामियों में से एक ग्रह उच्चस्थ हो और दूसरा अन्यत्र हो तो उच्चस्थ को बली मानना चाहिए। तब बहुवर्षी का विचार नहीं होगा।

एकः स्वोच्चगतस्त्वन्यः परत्र यदि संस्थितः।
ग्राहयेदुच्चखेटस्थं राशिमन्यं विहाय वै ॥ (वृ. का.)

(vii) राशि बल के विषय में और भी कुछ नियम ध्यातव्य हैं।

न्यासयोर्ग्रहहीनत्वे वैकस्यान्येन संयुतौ।
ग्राह्योराशिर्ग्रहाभावस्तत्स्वाम्युच्चं गतो यदि ॥
एकत्र स्वर्क्षगः खेटश्चान्यत्र द्वौ ग्रहौ यदि।
ग्रहद्वययुतिं हित्वा ग्राहयेत्पूर्वभं सुधीः ॥ (वृ. का.)

न्यास अर्थात् लग्न और सप्तम स्थान में यदि कोई ग्रह न हो अर्थात् वे ग्रह रहित हों तो ग्रहयुक्तादि नियमों से सिद्ध बली राशि की अपेक्षा बली समझे जायेंगे।

यदि दोनों स्थानों में एक जगह कोई ग्रह (लग्नेश, सप्तमेश के अतिरिक्त) हो तो भी ग्रह रहित को बलवान मानें।

ग्रहयुक्त राशि से वह राशि अधिक बली है जिसका स्वामी उच्चगत हो। परन्तु किसी राशि में स्वक्षेत्री ग्रह है और अन्यत्र दो ग्रह हैं तो स्वक्षेत्री को बली मानकर निर्णय किया जाएगा।

यद्यपि सामान्यतः ग्रहरहित राशि से ग्रहयुक्त राशि अधिक बली है, ग्रहयुक्त राशि से अधिक ग्रहों से युक्त राशि बली है, तथापि उक्त अपवादों की गवेषणा कर लेनी चाहिएं। इस विषय को पराशर ने भी ग्रहण किया है। उक्त वृद्ध कारिकाओं में से कुछ पराशर होरा में भी मिलती हैं। ये कारिकाएँ सम्प्रदाय की निधि होती हैं, न कि किसी ग्रन्थ विशेष के उद्धरण। इस प्रकार सावधानी से चर दशा में वर्षों का निर्णय करना चाहिए। दशाक्रमनिर्धारण के लिए आगे अ० २, पा० ३ का सूत्र २८ देखें।

पद (आरूढ़) का ज्ञान

यावदीशाश्रयपदमृक्षाणाम् ॥२९॥

स्वस्थे दाराः ॥३०॥

सुतस्थे जन्म ॥३१॥

पद अर्थात् आरूढ़ के ज्ञान की पद्धति बता रहे हैं। यह पद भी भाव सम्बन्धी फलादेश में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। किसी भी भाव या लग्न का स्वामी, उस भाव से जितने भाव आगे हो, उतने ही भाव आगे तक भावेश से गिनें। जहाँ गणना समाप्त हो, वहीं उस भाव का पद होता है। यह एक सामान्य नियम है।

उदाहरणार्थ, कर्क लग्न में स्वामी चन्द्रमा बारहवें भाव में स्थित है तो भाव से भावेश बारहवें भाव में हैं। अत: बारहवें भाव से बारहवें भाव अर्थात् एकादश में लग्न का पद हुआ।

अब नियम का अपवाद सूत्र ३०-३१ में बताया जा रहा है :

यदि भावेश अपने भाव से स्व अर्थात् चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो उस भाव का पद चतुर्थ भाव ही होगा। यहाँ स्व व दार पद का अर्थ कटपयादि से चतुर्थ स्थान होता है।

यदि किसी भाव का स्वामी भाव से सुत अर्थात् सप्तम स्थान में स्थित हो तो उस भाव का पद जन्म अर्थात् दशम भाव में होगा। इस स्थिति में क्रमशः सप्तम और लग्न को पद नहीं माना जाएगा। प्राचीन टीकाकारों ने सूत्र ३०-३१ को उदाहरण सूत्र मानकर जो अर्थ किया है कि 'भावेश यदि भाव से चतुर्थ में हो तो सप्तम भाव और सप्तम में स्थित हो तो स्वयं वह भाव पद होगा' यह अर्थ भ्रामक है। यह उदाहरण सूत्र नहीं है। स्वयं **महर्षि पराशर** ने इस विषय में कहा है कि—

स्वस्थानं सप्तमं नैव पदं भवितुमर्हति।
तस्मिन् पदत्वे विज्ञेयं मध्यं तुर्यं क्रमात् पदम् ॥

(पा० हो०, पदा०, श्लो० ४)

'लग्न का स्वामी यदि सप्तम में हो तो उससे सातवाँ अर्थात् लग्न पद नहीं होता है। तब भावेश सप्तम में हो तो दशम भाव और भावेश चतुर्थ में हो तो स्वयं चतुर्थ भाव ही पद होगा।

ये पद सभी भावों के हो सकते हैं। पं० नीलकण्ठ ने सूत्र ३०-३१ को उदाहरण मानकर जो भ्रम का सूत्रपात किया है उस विषय में हमें कहना है कि

(i) उदाहरण सूत्रों की रचना सूत्र शैली के विरुद्ध है। यदि उदाहरण देना जैमिनि मुनि को अभीष्ट होता तो वे और कहीं कठिन विषयों में भी उदाहरण देते।

(ii) एक ही सूत्र में स्व शब्द का अर्थ कटपयादि से व दारा शब्द को सप्तम भाव का वाचक मानकर चलना सम्भव नहीं है। सब जगह जैमिनि मुनि ने भावों के वाचक शब्दों को कटपयादि से माना है।

(iii) इसी प्रकार सुत शब्द का अर्थ कटपयादि से सप्तम भाव मानकर व जन्म शब्द को लग्न का वाचक मानकर चलना भी शुद्ध नहीं है।

जैमिनि मुनि को भी ऐसी शंका थी कि कहीं विद्वान् टीकाकार इन्हें उदाहरण सूत्र न मान लें। तभी उन्होंने इससे ठीक अगले सूत्र में कहा है कि यहाँ भावों का अर्थ कटपयादि से लेना है। इस सन्दर्भ में जो कारिका पं० नीलकण्ठ ने प्रस्तुत की है वह प्रामाणिक नहीं है।

वर्णद राशि विचार

सर्वत्रसवर्णा भावा राशयश्च ॥३२॥

सभी राशियों या भावों का प्रयोग यहाँ कटपयादि वर्णों के आधार पर किया है। अथवा राशियों व भावों की वर्णद राशि का विचार होता है, ग्रहों का नहीं।

यह वर्णद राशि या लग्न क्या है? जैमिनि मुनि ने कहा है कि जिस प्रकार पहले कारक, लग्न, पद, आदि का विचार फलादेश के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार सर्वांगीण फल कथन के लिए वर्णद लग्न का विचार भी आवश्यक है। वर्णद लग्न जानना कैसे सम्भव है, यह एक पारिभाषिक शब्द है। इसके ज्ञान की प्रक्रिया यहाँ बता रहे हैं।

(i) जन्म लग्न स्पष्ट को एक स्थान पर रख लें।

(ii) अब होरा लग्न का साधन करें। जन्म-कालीन इष्ट काल को २ से गुणा कर ५ का भाग देने से लब्धि राश्यादि होगी। शेष को ३० से गुणा कर पुनः ५ का भाग दें तो लब्धि राश्यादि होगी।

शेष को ३० से गुणा कर पुनः ५ का भाग दें तो लब्धि अंश होगी। शेष को पुनः ६०-६० से गुणा कर पुनः दो बार ५ का भाग दें तो लब्धि क्रमशः कला व विकला होगी। इस राश्यादिक फल को सूर्य में जोड़ देने से होरा लग्न होगा।

अथवा जन्मेष्ट काल को १२ से गुणा कर प्राप्त अंशादि फल को सूर्य में जोड़ने पर होरा लग्न होता है।

सूर्योदय के समय वही होरा लग्न होता है जिस राशि में सूर्य है। सूर्योदय से १-१ घण्टे तक राशिक्रम से होरा लग्न होता है। नियमतः स्थानीय सूर्य के उदयकालिक स्पष्ट में यह फल जोड़ना चाहिए। किन्तु ठीक औदयिक सूर्य प्राप्त न हो तो स्थूल गणना हेतु निकटस्थ सूर्य को भी प्रयोग में लाया जा सकता है। हमारे विचार से जो लोग, जन्म-लग्न सम हो तो लग्न में और विषम होने पर सूर्य में उक्त फल को जोड़ने की बात करते हैं, वह ऋषि सम्मत नहीं है।

सूर्योदयं समारभ्य घटिकानां तु पंचकम्।
प्रयाति जन्मपर्यन्तं भावलग्नं तथैव च॥
तथा सार्धं द्विघटिकामितात्कालाद् विलग्नभात्।
प्रयाति लग्नं तन्नाम होरा लग्नं प्रचक्षते॥ (वृ० का०)

'सूर्योदयादिष्ट को ५ से भाग देकर प्राप्त राश्यादि लब्धि को सूर्य में तथा इष्ट को २॥ से भाग देकर प्राप्त राश्यादि लब्धि को सूर्य में जोड़ने से क्रमशः भाव-लग्न व होरा-लग्न होता है।'

६० घड़ी का एक अहोरात्र है, अतः १२ राशियों से भाग देने पर एक राशि का भोग ५ घड़ी आता है। इसी कारण भाव लग्न सूर्योदय काल से ५-५ घड़ी तक सूर्य राशि से क्रमशः होता है।

होरा अर्थात् १ घंटा। अहोरात्र की घड़ियों को २४ घंटों से भाग देने पर ६०÷२४=२॥ घड़ी का एक होरा लग्न या काल होरा लग्न है। इसी प्रकार घटी लग्न भी १-१ घड़ी का सूर्योदयात् होता है। पुनः प्रकृत विषय पर आइए। होरा लग्न व जन्म लग्न स्पष्ट कर लें।

(iii) जन्म लग्न व होरा लग्न का योग करके योगफल यदि विषम राशि में आता है तो यही योगफल वर्णद लग्न स्पष्ट है।

(iv) यदि यह योगफल समराशि में आता है तो योग को १२ राशि

में से घटाकर शेषफल वर्णद लग्न स्पष्ट होगा।

उदाहरण से समझिए: जन्म लग्न स्पष्ट ३.५°.४८'.००" है। होरा लग्न ७.१४°.५१' है। इन दोनों का योग १०.२०°.३९'.००" है। यदि यह योग सम राशि में होता तो इसे १२ राशि में से घटा कर शेष का ग्रहण करते।

(v) ध्यान रखिए, वर्ण लग्न सदा विषम राशि में ही होता है। यदि योग समराशि में हो तो उसे १२ में से घटाकर विषम ही बनाया जाता है।

(vi) इसी प्रकार अन्य भाव स्पष्ट के आधार पर शेष भावों का भी वर्णद बनाया जा सकता है।

(vii) इसी वर्णद के आधार पर वर्णदशा की गणना होती है।

बृहत्पाराशर में वर्णद लग्न जानने का जो प्रकार बताया है, उसकी प्रक्रिया उलझी हुई है, अतः हमने उसी बात को ऊपर सरल शब्दों में बताया है, कृपया भ्रम न करें। वहाँ जो प्रकार बताया गया है तदनुसार उपर्युक्त उदाहरण देखिए। यदि सम लग्न में जन्म हो तो मीन, कुम्भ, मकरादि क्रम से व विषम में हो तो मेषादि क्रम से गिनें। उदाहरण में लग्न व होरा दोनों सम हैं। अतः मीन से कर्क लग्न तक संख्या ९ है। होरा लग्न से वृश्चिक तक संख्या ५ है। ये दोनों संख्याएं विषम होने के कारण सजातीय हैं। अतः इन्हें जोड़ा तो ९+५=१४÷१२, शेष २ राशि मिली है। अतः मीन से विपरीत क्रम से दूसरी राशि तक पीछे चलें तो कुम्भ राशि मिली। यही वर्णद राशि है।

इसे स्पष्ट करने के लिए जन्म व होरा सम होने के कारण १२ राशियों में से घटाएँ। १२—३.५°.४८'=८.२४°.१२' और १२—७.१४°.५१'=४.१५°.९' हुए।

इन्हें जोड़ा :—८.२४°.१२'+४.१५°.९' = १३.०९°.२१' अर्थात् १.९°.२१' हुआ। यह राशि सम है। अतः इसे १२ में से घटाया।—

१२—१.९°.२१'=१०.२०°.३९' वर्णद लग्न स्पष्ट है। यही हमारा पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त वर्णद लग्न है।

इस वर्णद लग्न पर्यन्त, होरा या लग्न से गिनने पर प्राप्त वर्षादि इसके दशा वर्ष होते हैं—

'होरा लग्नभयोर्नेया दुर्बलाद् वर्णदा दशा ।
यत्संख्यो वर्णदो लग्नात् तत्तत्संख्या क्रमेण तु ।।
क्रमव्युत्क्रमभेदेन दशा स्यात् पुरुषास्त्रियोः ।' (वृ० का०)

होरा या लग्न में से जो निर्बल हो उसी से इस दशा का आरम्भ कर **'वर्णदान्ताः समाः'** पद्धति से क्रम या उत्क्रम से दशा वर्ष होंगे ।

अन्य भावों की राशियों के भी वर्णद होंगे । होरा स्पष्ट में एक-एक राशि जोड़ने से अगले होरा लग्न भाव स्पष्ट हो जाते हैं । तदनुसार भाव स्पष्टों से उक्त रीति से अन्य वर्णद जाने जा सकेंगे। ये राशियों के वर्णद हैं ।

वर्णद राशि से फलादेश के विषय में वृद्धों ने कहा है—

'पापदृष्टिः पापयोगो वर्णदस्य त्रिकोणके ।
यदि स्यात् तर्हि तद्राशिपर्यन्तं तस्य जीवनम् ।।
रुद्रशूले यथैवायुर्मरणादि निरुप्यते ।
तथैव वर्णदस्यापि त्रिकोणे पापसंगमे ।।
वर्णदात् सप्तमाद्राशेः कलत्रादि विचिन्तयेत् ।
एकादशादग्रजं तु तृतीयात्तु यवीयसम् ।।
पंचमे तनुजं विन्द्यान्मातरं तुर्यपंचमे ।
पितुस्तु नवमान्मातुः पंचमाद्वर्णदस्यतु ।
शूलराशिदशायां वै प्रबलायामरिष्टकम् ।।' (वृ० का०)

'वर्णद लग्न (राशि) से त्रिकोणों में यदि पापग्रहों की दृष्टि या योग हो तो उसी त्रिकोण राशि पर्यन्त आयु होती है ।

जिस प्रकार रुद्रशूलादि से आयु विचार होता है, उसी प्रकार वर्णद व उसकी त्रिकोण राशियों से भी करना चाहिए ।

वर्णद से सातवीं राशि से पत्नी का, ग्यारहवें से बड़े भाई का, तीसरे से छोटे भाई का, पाँचवें से पुत्र का, चतुर्थ व पंचम से माता का विचार करना चाहिए ।

वर्णद राशि से नवीं व पाँचवीं राशियों की शूल दशा में क्रमशः पिता व माता का प्रबल अरिष्ट बताना चाहिए ।

वास्तव में वर्णद लग्न भी जन्म की तरह ही महत्त्वपूर्ण है । सभी भावों से वर्णद लग्न में भी तत्तत विषयों का विचार करना चाहिए ।

न ग्रहाः ॥३३॥

यहाँ ग्रहों को कटपयादि से नहीं बताया गया है। अथवा ग्रहों की वर्णद राशियाँ नहीं होती हैं।

ये वर्णद केवल जन्म लग्नादि के भावों—गुलिक और भाव लग्न (पूर्वोक्त)— के होते हैं। वास्तव में ग्रहों के वर्णद नहीं होते हैं।

अब वर्णद दशा को सोदाहरण समझिए।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न स्पष्ट ३.५°.४८′ है। अतः इसमें १-१ राशि जोड़ने से जैमिनीय मत से बारहों भाव स्पष्ट हो जाएँगे।

इसी प्रकार होरा लग्न स्पष्ट ७.१४°.५१′ में भी १-१ राशि जोड़ने से शेष भाव होरा लग्न में स्पष्ट हो जाएँगे।

इसी प्रकार वर्णद राशि के भावों को भी स्पष्ट करने के लिए लग्न कुण्डली के भाव स्पष्ट व होरा लग्न के भाव स्पष्ट को जोड़कर योगफल विषम राशि हो तो यथावत् अन्यथा १२ में से घटाकर शेष को उस भाव का वर्णद जानें।

वर्णद भाव २-२ राशि घटते या बढ़ते हैं।

अब दशा कर्क लग्न से शुरू होगी। कर्क सम लग्न है तथा होरा लग्न से निर्बल है। अतः दशाओं का क्रम उल्टा रहेगा। जैसे कर्क, मिथुन आदि। दशावर्ष जानने के लिए ध्यान रखिए कि जो बलवान लग्न होगा उसी से वर्णद राशि तक क्रम या उत्क्रम से गिनकर वर्ष जाने जाएँगे।

होरा लग्न वृश्चिक से वर्णद १०.२०°.३०′ तक उत्क्रम से गिना। तब ९ वर्ष लग्न दशा के रहेंगे।

लग्न द्वादश व होरा द्वादश में क्रमशः मिथुन व तुला राशि हैं। इनमें मिथुन बली है। अतः मिथुन राशि से क्रमशः द्वादश भाव के वर्णद धनु तक गिना। अतः ६ वर्ष मिथुन के दशा वर्ष हुए। इसी प्रकार सबके दशा वर्ष जाने तथा दशा चक्र बना लिया—

वर्णद दशाचक्र (उदा०)

दशेश	कर्क.	मि.	वृ.	मे.	मी.	कु.	म.	धनु.	वृश्चि.	तुला	कन्या	सिंह
वर्ष	९	६	१२	१	९	१०	१२	१	१	६	७	८
जन्मतिथि २५.१.१९५५	२५.१.१९६५	२५.१.१९७१	२५.१.१९८३	२५.१.१९८४	२५.१.१९९३	२५.१.२००३	२५.१.२००५	२५.१.२०१६	२५.१.२०१७	२५.१.२०२३	२५.१.२०३०	२५.१.२०३८

सभी भावों के वर्णद आगे दिए गए हैं।

वर्णद लग्न व सप्तम—१०.२०°.३९'.००"

" द्वितीय व अष्टम—००.२०°.३९'.००"

" तृतीय व नवम—२२.०°.३९'.००"

" चतुर्थ व दशम—४.२०°.३९'.००"

" पंचम व एकादश—६.२०°.३९'.००"

" षष्ठ द्वादश—८.२०°.३९'.००"

बारह भावों को स्पष्ट करने के लिए आजकल जो परिपाटी प्रचलित है वह जैमिनिय मुनि के मत में या प्राचीन ऋषियों के मत में मान्य नहीं है। प्राचीन काल में लग्न के अंशादिक तुल्य आगामी भावों के भी अंशादि होते थे। अतः पद्धत्युक्त ढंग से यहाँ भावादि साधन नहीं होता। यदि आधुनिक पद्धति से भावादि साधन करें तो फिर जैमिनिप्रोक्त दशाओं में भुक्त-भोग्य भी जानना आवश्यक हो जाएगा तथा फल निर्णय में त्रुटि होगी। अतः हमने विशुद्ध जैमिनीय मत के आधार पर उक्त भावादि विषयक गणना की है। जैमिनीय सूत्रों के अति प्राचीन एक टीकाकार स्वामी ने कहा है कि—**'सर्वे भावा लग्नसमाः'** अर्थात् सभी भाव लग्न के तुल्य होते हैं। इसी आधार पर पं० रामयत्न ओझा ने भी यही लिखा है—

'पद्धत्युक्तं भावसाधनमप्यत्र विडम्बनामात्रम्। सर्वत्र भावसाधने स्वस्व लग्नमध्ये एकैकराशियोगेनैव धनभावादयो भावा भवन्तीति सत्सम्प्रदायः।' (जै. सू. १. १. ३१)

अतः विद्वान् पाठक भ्रम न कर कृपया इसे स्वीकार करें और स्वयं फलादेश की प्रामाणिकता का अनुभव करें।

अन्तर्दशा जानने का प्रकार

यावद्विवेकमावृत्तिर्भानाम् ॥३४॥

उक्त दशाओं में अन्तर्दशा का विभाग भी होता है। जिस राशि के जितने दशा वर्ष आए हों, उन वर्षों के १२ भाग कर लीजिए। एक भाग एक अन्तर्दशा का द्योतक होगा। पहली अन्तर्दशा उसी राशि की होगी जो राशि महादशेश है। आगे की अन्तर्दशाओं का क्रम राशिक्रम से

निर्धारित कर लिया जाएगा। पहली दशा लग्न की होगी। इसी प्रकार अन्तर्दशा के १२ विभाग कर प्रत्यन्तर्दशा भी जानी जा सकती है।

कृत्वार्क (१२) धा राशिदशां राशेर्भुक्ति क्रमाद् वदेत्। (वृ० का०)

ये अन्तर्दशाएँ १२×१२=१४४ होती हैं। विवेक शब्द का अर्थ कटपयादि से १४४ ही है।

होरादि षड्वर्गों का कथन

होरादयः सिद्धाः ॥ ३५ ॥

होरा, द्रेष्काण आदि के विषय में शास्त्र सम्वन्धी अन्य ग्रन्थों में कहा गया है। जैमिनि मुनि का उनसे कोई मतभेद नहीं है। अतः उन्होंने सिद्ध अर्थात् प्रसिद्ध बताया है। अर्थात् होरादिक का ज्ञान ग्रन्थान्तर से कर लेना चाहिए।

इस विषय में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है। मुनि ने कहा है कि जैसा और लोग मानते हैं, वैसे ही हम भी होरा आदि को मानते हैं। परन्तु आजकल विशेषतया वराहमिहिर के बाद षड्वर्गों के विभाग का प्रकार विलक्षण हो गया है। अतः आजकल प्रसिद्ध होरादि से जैमिनिसम्मत होरादि भिन्न हैं। हमारी पुरानी आर्ष परम्परा का प्रतिनिधित्व वृद्धकारिकाएँ करती हैं। तदनुसार होरादि का विभाग प्रसिद्ध प्रकार से अलग है तथा यही प्राचीन परिपाटी जैमिनि मुनि को मान्य है।

"राशेरर्ध भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृताः।
मेषादि तासां राशीनां परिवृत्तिर्द्वयं भवेत्" ॥ (वृ० का०)

'राशि के आधे भाग को होरा कहते हैं। ये होराएँ २४ होती हैं। इनमें मेषादि १२ राशियों की दो बार आवृत्ति होती है।'

यह कारिका तथा इस विषय से सम्बन्धित अन्य कारिकाएँ पराशर के होरा शास्त्र में भी मिलती हैं। परन्तु वहाँ थोड़ा भेद है। हमारा तात्पर्य है कि होरा में वृद्धमत से राशियों की आवृत्ति दो बार होनी चाहिए और आजकल ऐसा नहीं होता है। यह वर्तमान पद्धति जैमिनि को स्वीकार्य नहीं है। जैमिनि सम्मत होरा चक्र इस प्रकार होगा—

होरा चक्र

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०
०°–१५°	१	३	५	७	९	११	१	३	५	७	९	११
१६°–३०°	२	४	६	८	१०	१२	२	४	६	८	१०	१२

आपने देखा कि दो आवृत्ति राशि चक्र की हो गई हैं। इसी प्रकार द्रेष्काण में तीन आवृत्ति होती हैं। तदनुसार मेष में क्रमशः तीनों द्रेष्काण मेष, वृष, मिथुन राशियों के होंगे। इसी प्रकार शेष राशियों में भी समझना चाहिए।

राशि त्रिभागा द्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिताः।
परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशो भवेत्॥ (वृ० का०)

'एक राशि का तीसरा भाग द्रेष्काण है। ये कुल ३६ होते हैं। इनमें मेषादिक्रम से राशि चक्र की तीन आवृत्तियाँ सम्पूर्ण हो जाती हैं।'

सप्तमांश जैमिनिसम्मत वही है जो आजकल प्रचलित है।

सप्तांशकास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः।
युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमर्क्षाधिनायकात्॥ (वृ० का०)

'विषम राशियों में सप्तमांश उसी राशि से प्रारम्भ होता है तथा सम राशियों में सातवीं राशि से प्रारम्भ होता है। अर्थात् मेष में मेष का ही प्रथम सप्तमांश होकर अगले सप्तमांश राशि क्रम से होंगे। इस प्रकार वृष (समराशि) में जाकर सातवीं राशि अर्थात् वृश्चिक से सप्तमांश प्रारम्भ होंगे।'

नवमांश भी प्राचीन व नवीन मत में समान है—

नवांशेशाश्चरे तस्मात् स्थिरे तन्नवादितः।
उभये तु तत्पंचमादेरिति चिन्त्यं विचक्षणैः॥ (वृ० का०)

'चरराशि में उसी राशि से, स्थिरराशि में नवीं राशि से और द्विस्वभाव राशि मे पाँचवीं राशि से नवांश होते हैं।'

उसी प्रकार द्वादशांश में भी कोई मतभेद नहीं है—

"द्वादशांशस्य गणना तत्तत्क्षेत्राद्विनिर्दिशेत्"। (वृ० का०)

'द्वादशांशों की गणना उसी राशि से होगी।'

हमारा विनम्र निवेदन है कि जैमिनीयं मत में जहाँ कहीं होरादि का प्रसंग होगा, वहाँ उक्त होरादि से ही तात्पर्य है न कि आधुनिक यवन प्रभावयुक्त प्रणाली से। होरा और द्रेष्काण के विषय में बहुत कुछ तुलनात्मक विवेचन किया जा सकता है तथा वृद्धमत के पक्ष में कई पुष्कल प्रमाण हैं।

।। इति पं० सुरेशमिश्रकृते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्रभाष्ये प्रथमाध्याये प्रथमः पादः समाप्तः ।।

द्वितीयः पादः

आत्मकारक के नवांश का फल

अथ स्वांशो ग्रहाणाम् ॥१॥

आत्मकारक ग्रह, जिसके निश्चय की प्रक्रिया पहले पाद में बताई गई है, वह जिस नवांश में हो, वह आत्मकारकाधिष्ठित नवांश है। फलित ग्रन्थों में इसे बहुत महत्त्व दिया गया है। कारकांश कुण्डली निर्माण का आधार यही नवांश होता है।

अब मुनिवर इस नवांश के आधार पर फलादेश बताने के लिए सूत्रों की अवतरणिका के रूप में इस सूत्र को लिखते हैं।

अर्थात् सूर्यादि ग्रहों में जो स्वांश अर्थात् आत्मकारक के नवांश हों, उनका फल बता रहे हैं।

आत्मकारक के मेषादि नवांशों का फल

पंचमूषिकमार्जाराः ॥२॥

तत्र चतुष्पादः ॥३॥

मृत्यौ कण्डूः स्थौल्यं च ॥४॥

यदि आत्मकारक ग्रह पंच (मेष राशि) नवांश में हो तो मनुष्य को चूहे, बिल्ली व अन्य समस्वरूप वाले जीवों से कष्ट होता है।

यदि आत्मकारक तत्र (वृष राशि) के नवांश में हो तो मनुष्य को चौपाए जानवरों से सुख मिलता है।

कुछ विज्ञ टीकाकारों ने इस स्थिति में चतुष्पदों को दुःखदायी बताया है। उनका तर्क यह है कि सूत्र २ व सूत्र ३ परस्पर सम्बन्धित (अन्वित) है। अतः दोनों स्थानों पर सुखदायी या दुःखदायी एक अर्थ समान

रूप से मानना चाहिए। किन्तु इस विषय में प्राचीन टीकाकारों के मन्तव्य का अनुसरण कर हमने उक्त अर्थ को प्रामाणिक माना है। साथ ही अनुभव में भी ऐसा आता है। वृद्धों का कथन है—

वृषतौल्यमंकगते तस्मिन् वाणिज्यवान् भवेत्।
मेष सिंहांशकगते ब्रूयात् मूषकदंशनम् ॥
कारके कार्मुकांशस्थे वाहनात्पतनं भवेत् ॥ (वृ. का.)

वृष व तुला के नवांश में आत्मकारक हो तो मनुष्य बड़ा व्यापारी होता है। मेष, सिंह के नवांश में चूहों से भय होता है।

धनु नवांश में हो तो वाहन से पतन होता है।

यदि वृष राशि के नवांश में होने पर अशुभ फल होता तो यहाँ मेष के नवांश में की गई स्पष्टोक्ति के समान साफ कहा गया होता, जबकि ऐसा नहीं है। अतः पाठकों को हमारी सलाह है कि वे वृष नवांश होने पर चतुष्पदों को सुखदायी ही बताएँ। पराशर होरा में भी इसी अर्थ का समर्थन किया गया है।

यदि मिथुन के नवांश में आत्मकारक हो तो मनुष्य के शरीर में खुजली आदि चर्म रोगों के होने की सम्भावना होती है और शरीर में स्थूलता होती है।

यहाँ कटपयादि से पंच, तत्र आदि शब्दों का अर्थ लगाया गया है।

पंच—प=१, च=६, ६१÷१२=शेष १ (मेष)
तत्र – त=६, र=२=२६÷१२=शेष २ (वृष)
मृत्यु—म=५, य=१=१५÷१२=शेष ३ (मिथुन)
इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

दूरे जलकुष्ठादिः ।५।।
शेषाः श्वापदानि ।।६।।
मृत्युवज्जायाग्निकणश्च ।।७।।

आत्मकारक यदि कर्क के नवांश में हो तो मनुष्य को जल से भय होता है व उसे कुष्ठ रोग होने की सम्भावना होती है।

यदि सिंह राशि के नवांश में हो तो कुत्ते, बिल्ली आदि के काटने का भय होता है।

कन्या राशि के नवांश में होने पर खुजली, शरीर का मोटापा एवं अग्नि कण से भय, यह फल होता है।

लाभे वाणिज्यम् ॥८॥
अत्र जलसरीसृपाः स्तन्यहानिश्च ॥६॥
समे वाहनाद् उच्चाच्च क्रमात्पतनम् ॥१०॥

तुला राशि के नवांश में होने पर मनुष्य व्यापार करने वाला होता है।

वृश्चिक राशि के नवांश में होने पर पानी व साँप आदि से भय होता है और माँ का दूध कम मिलता है।

धनु राशि के नवांश में होने पर वाहन से व किसी ऊँचे स्थान से पतन होता है।

जलचरखेचरखेटकण्डूदुष्टग्रन्थयश्च रिःफे ॥११॥
तडागादयो धर्मे ॥१२॥
उच्चे धर्मनित्यताकैवल्यं च ॥१३॥

यदि आत्मकारक मकर राशि के नवांश में हो तो आकाशचारी पक्षी, ग्रह आदि दुःखदायी होते हैं और शरीर में खुजली व दुष्ट ग्रन्थि (बड़े घाव, ट्यूमर आदि) होती हैं।

यदि कुम्भ के नवांश में हो तो मनुष्य धार्मिक स्वभाव वाला तड़ाग आदि जनसुविधाओं की वस्तुओं का निर्माण करने वाला होता है।

मीन के नवांश में होने पर मनुष्य नितान्त आस्तिक, धार्मिक व मोक्ष पाने वाला होता है।

इस आत्मकारक ग्रह पर यदि शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो पापफल में कमी व अशुभ दृष्टि हो तो शुभ फल में कमी होती है।

यहाँ पर दृष्टि का विचार जैमिनीय मत से (देखें, पा. १. सू २-३-४) करना चाहिए। इसके विशेष फल के लिए **पाराशर होरा** का कारकांश फलाध्याय भी देखें।

आत्मकारक के साथ स्थित ग्रह और व्यवसाय

तत्र रवौ राजकार्यपरः ॥१४॥

कारकांश कुण्डली में यदि आत्मकारक के साथ सूर्य स्थित हो,

अर्थात् आत्मकारक के नवांश में यदि सूर्य हो तो मनुष्य राजकीय कार्य करने वाला होता है।

पूर्णेन्दुशुक्रयोर्भोगीविद्याजीवी च ॥१५॥

यदि कारकांश लग्न में पूर्ण चन्द्रमा अथवा शुक्र हो या पूर्ण चन्द्रमा शुक्र से युत दृष्ट हो तो मनुष्य भोगों को प्राप्त करने वाला, विद्या व बुद्धि से जीविका चलाने वाला, सुखी व विद्वान् होता है।

धातुवादी कौन्तायुधो वह्निजीवी च भौमे ॥१६॥

यदि वहाँ पर मंगल स्थित हो तो मनुष्य रसायनों का निर्माण करने वाला, शस्त्रधारी योद्धा और अग्निकर्म से जीविका चलाने वाला होता है। अर्थात् ऐसा व्यक्ति रसायन निर्माण की भट्ठियों में काम करने वाला, इंजिन ड्राइवर, सोनार, लोहार, परमाणु संयंत्रों में कार्यशील, बेकरी आदि अग्नि पर आधारित कार्यों में रत होता है।

वणिजस्तन्तुवायाः शिल्पिनो व्यवहारविदश्च सौम्ये ॥१७॥

कारकांश लग्न में बुध हो तो मनुष्य व्यापार करने वाला, कपड़ा बनाने वाला, शिल्पी व व्यवहार-कुशल होता है।

कर्मज्ञाननिष्ठावेदविदश्च जीवे ॥१८॥

यदि वहाँ बृहस्पति स्थित हो तो मनुष्य कर्मकाण्ड जानने वाला, अथवा कार्यकुशल, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं वेदों का जानकार होता है। पराशर के मत से ऐसा व्यक्ति उक्त विशेषताओं के साथ अच्छे कार्य करने वाला भी (सुकर्मा) होता है।

राजकीयाः कामिनः शतेन्द्रियाश्व शुक्रे ॥१९॥

कारकांश में शुक्र होने पर मनुष्य राजकीय अधिकारों से युक्त, अनेक स्त्रियों का भोग करने वाला, सौ वर्षों तक इन्द्रिय शक्ति से युक्त होता है। अर्थात् ऐसा व्यक्ति लम्बी अवस्था तक सांसारिक सुखों को भोगता है।

प्रसिद्ध कर्माजीवः शनौ ॥२०॥

कारकांश कुण्डली में शनि होने पर मनुष्य प्रसिद्ध कार्य कर जीविका चलाने वाला होता है। अर्थात् ऐसा व्यक्ति प्रसिद्ध होता है तथा अपने कार्यक्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान करता है।

धानुष्काश्चौराश्च जांगलिकालोहयन्त्रिणश्च राहौ ॥२१॥

यदि कारकांश लग्न में राहु हो तो मनुष्य युद्ध में प्रयुक्त होने वाले शस्त्रों का निर्माण करने वाला, चोर वृत्ति से जीवन यापन करने वाला, विष की चिकित्सा का विशेषज्ञ और यन्त्रों का निर्माता अथवा यन्त्र विशेषज्ञ होता है।

गजव्यवहारिणश्चोराश्च केतौ ॥२२॥

यदि आत्मकारक के नवांश में केतु हो तो हाथियों का व्यापार करने वाला व चोर वृत्ति वाला होता है।

उक्त फल आत्मकारक ग्रह के नवांश में स्थित होने पर ही होता है। फल में स्वविवेक से तारतम्य सर्वत्र अपेक्षित है।

आत्मकारक नवांश में सूर्य व राहु का फल

रविराहुभ्यां सर्पनिधनम् ॥२३॥

यदि आत्मकारक ग्रह के साथ कारकांश लग्न में सूर्य व राहु स्थित हों तो मनुष्य की मृत्यु साँप के काटने से होती है।

शुभदृष्टेसन्निवृत्तिः ॥२४॥

यदि उक्त स्थिति में सूर्य व राहु को शुभ ग्रह देखते हों तो अशुभ फल अर्थात् सर्पदंश की निवृत्ति हो जाती है।

शुभमात्र सम्बन्धाज्जाङ्गलिकः ॥२५॥

कारकांश लग्न में विद्यमान सूर्य व राहु से यदि केवल शुभग्रह सम्बन्ध रखते हों और अशुभ ग्रहों का उनसे कोई सम्बन्ध न हो तो मनुष्य विषवैद्य अर्थात् जहर की चिकित्सा करने वाला होता है। इस स्थिति में उसे सर्पदंश का भय नहीं होता।

कुजमात्रदृष्टे गृहदाहकोऽग्निदो वा ॥२६॥

यदि कारकांश लग्न में स्थित सूर्य व राहु को केवल मंगल देखता हो तो मनुष्य घर में आग लगाने वाला अथवा अग्नि देने वाला होता है। आशय यह है कि घर में आग लगने का प्रबल भय होता है।

शुक्रदृष्टेर्नदाहः ॥२७॥

कारकांश गत सूर्य व राहु को यदि शुक्र देखता हो तो गृह दाह वाला फल नहीं होता। इस स्थिति में केवल अग्निदानादि रूप फल ही होता है।

गुरुदृष्टेस्त्वासमीपगृहात् ॥२८॥

कारकांश लग्नगत सूर्य व राहु को केवल बृहस्पति देखता हो तो घर के पास वाले स्थानों में आग लगती रहती है। इस स्थिति में व्यक्ति का अपना घर सुरक्षित रहता है।

आत्मकारक व गुलिक

सगुलिके विषदो विषहतो वा ॥२९॥

आत्मकारक नवांश में यदि आत्मकारक के साथ गुलिक भी हो तो मनुष्य दूसरों को विष से मारने वाला या स्वयं विष द्वारा मरने वाला होता है।

शनि का अंश गुलिक कहलाता है। दिनमान या रात्रिमान के ८ भाग करके दिन में वारेश से व रात्रि में वारेश से पाँचवें ग्रह से वारक्रम से गिनने पर प्राप्त शनि खण्ड गुलिक होता है। गुलिक के विषय में हम विस्तार से अपने आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य पृ० ४१९ में बता चुके हैं। वहाँ जैमिनीय मत से हमने गुलिक स्पष्टीकरण की प्रक्रिया की तुलना भी की है।

गुलिक युक्त आत्मकारक व ग्रहों की दृष्टि

चन्द्रदृष्टौ चौराऽपहृतधनश्चोरो वा ॥३०॥

कारकांश लग्न में आत्मकारक के साथ गुलिक हो और उन्हें चन्द्रमा देखता हो तो मनुष्य या तो स्वयं चोर होता है या उसके धन को चोर चुरा लेते हैं।

बुधमात्रदृष्टेबृहद्बीजः ॥३१॥

यदि कारकांश लग्न में स्थित गुलिक युक्त आत्मकारक को केवल बुध देखता हो तो मनुष्य के अण्डकोष बड़े होते हैं।

आत्मकारक व केतु

तत्रकेतौ पापदृष्टेकर्णच्छेदः कर्णरोगो वा ॥३२॥

कारकांश लग्न में यदि केतु स्थित हो और उसे पापग्रह देखते हों तो मनुष्य के कानों में रोग होता है या उसके कानों का काटा जाना

सम्भव होता है।

शुक्रदृष्टे दीक्षितः ॥३३॥

आत्मकारक के साथ केतु उसी नवांश में स्थित हो और उन्हें शुक्र ग्रह देखता हो तो मनुष्य विविध यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं में दीक्षित होता है अथवा वह संन्यासी होता है।

बुधशनिदृष्टे निर्वीर्यः ॥३४॥

कारकांश कुण्डली में आत्मकारक के साथ स्थित केतु को यदि बुध व शनि देखते हों तो मनुष्य नपुंसक अर्थात् सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होता है।

बुधशुक्रदृष्टे पौनः पुनिको दासीपुत्रो वा ॥३५॥

उक्त स्थिति में ही आत्मकारक के साथ स्थित केतु को यदि बुध व शुक्र देखते हों तो मनुष्य एक ही बात को बार-बार दोहराता है अथवा वह दासी का पुत्र अर्थात् किसी वेश्या, देवदासी या बहुपतिका नारी से उत्पन्न होता है।

शनिदृष्टे तपस्वी प्रेष्यो वा ॥३६॥

आत्मकारक के साथ स्थित केतु को यदि शनि देखता हो तो मनुष्य तपस्वी होता है अथवा दासकर्म करने वाला होता है।

यदि शनि के साथ अन्य कोई ग्रह भी देखता हो तो भी उक्त फल होता है। केवल शनि ही देखता हो तो मनुष्य तपस्वी नहीं होता है।

शनिमात्र दृष्टे संन्यासाभासः ॥३७॥

आत्मकारक के साथ स्थित केतु को यदि अकेला शनि देखता हो तो मनुष्य संन्यासी जैसा जीवन बिताता है; परन्तु संन्यासी नहीं होता। संन्यासाभास से तात्पर्य कपटी संन्यासी अर्थात् संन्यासी होने का ढोंग करने वाले से भी हो सकता है।

आत्मकारक व सूर्य-शुक्र की दृष्टि से व्यवसाय

तत्ररविशुक्रदृष्टेराजप्रेष्यः ॥३८॥

कारकांश कुण्डली में लग्न पर अर्थात् आत्मकारक पर सूर्य व शुक्र की दृष्टि हो तो मनुष्य राजा का नौकर होता है।

प्रेष्य शब्द का अर्थ ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें कार्यवशात् स्वामी जहाँ-तहाँ भेज देता है। अर्थात् सन्देशवाहक, चपरासी, लिपिक और अन्य तत्समकक्ष कर्मचारी आदि। अतः इसे राजयोग समझने का भ्रम नहीं करना चाहिए। राजयोग में राज्याधिकार का ग्रहण होता है।

महर्षि पराशर ने कारकांश लग्न में केतु पर सूर्य शुक्र की दृष्टि होने से उक्त फल माना है। (देखें पारा., कारकांश०)

कारकांश कुण्डली का दशम भाव व व्यवसाय

रिःफे बुधे बुधदृष्टे वा मन्दवत् ॥३९॥

कारकांश लग्न में दशम स्थान में बुध स्थित हो या बुध की वहाँ दृष्टि हो तो समस्त फल शनि की तरह समझना चाहिए। अर्थात् उक्त स्थिति में मनुष्य अपने व्यवसाय में बहुत प्रसिद्ध होता है।

शुभदृष्टे स्थेयः ॥४०॥

कारकांश लग्न में दसवें भाव को यदि बुध के अतिरिक्त शुभग्रह देखते हों तो मनुष्य स्थिर बुद्धि वाला, दृढ़ निश्चयी व जमकर व्यवसाय करने वाला होता है। यदि उक्त स्थान को अशुभ ग्रह देखते हों तो मनुष्य अस्थिर मति वाला होता है।

रवौ गुरुमात्र दृष्टे गोपालः ॥४१॥

कारकांश लग्न से दशम स्थान में यदि सूर्य स्थित हो तथा उसे अकेला बृहस्पति देखता हो तो मनुष्य गाय आदि दुधारू जानवरों का व्यवसाय करने वाला होता है।

कारकांश लग्न का चतुर्थ भाव व मकान

दारे चन्द्रशुक्रदृग्योगात् प्रासादः ॥४२॥

कारकांश लग्न से चतुर्थ स्थान में यदि चन्द्रमा व शुक्र की स्थिति हो, या ये दोनों ग्रह इस स्थान पर दृष्टि रखते हों तो मनुष्य बड़े महल का स्वामी होता है।

उच्चग्रहेऽपि ॥४३॥

इसी स्थान में यदि कोई ग्रह अपने उच्च में हो तो उसका बड़ा महल होता है।

राहुशनिभ्यां शिलागृहम् ॥४४॥

कारकांश लग्न से चतुथ में यदि राहु व शनि की स्थिति या दृष्टि हो तो मनुष्य का पत्थरों से बनाया गया मकान होता है।

कुजकेतुभ्यामैष्टकम् ॥४५॥

गुरुणादारवम् ॥४६॥

तार्णं रविणा ॥४७॥

यदि वहाँ मंगल व केतु की दृष्टि या योग हो तो ईंटों का बना मकान होता है।

बृहस्पति की दृष्टि या योग हो तो लकड़ी से बना मकान होता है।

सूर्य की दृष्टि या योग हो तो घास-फूस का बना मकान होता है।

इन सूत्रों का आशय यह है कि चतुर्थ स्थान पर किसी ग्रह की दृष्टि या योग होना इस बात के लिए काफी है कि उसे सिर के ऊपर छत नसीब होगी। किन्तु ध्यान रखिए, बुध कदाचित् मकान नहीं देता है। हमारा अनुभव है कि वहाँ अकेला बुध हो तथा किसी अन्य ग्रह की दृष्टि या योग न हो तो मनुष्य आजीवन किराये के मकान में ही रहता है। इसी प्रकार अकेला चन्द्रमा वहाँ स्थित हो और अन्य ग्रहों की दृष्टि न हो तो मनुष्य विवाह के बाद सपत्नीक खुले आकाश के नीचे ही सोता है। कदाचित् इस स्थिति में मनुष्य को बहुत देर के बाद काफी प्रयत्नों से ही सिर छुपाने की जगह मिल पाती है। चन्द्रमा की इस स्थिति के विषय में पराशर ने भी यही कहा है—

चन्द्रे त्वनावृते देशे पत्नी योगः प्रजायते ॥ (वही, कारकांश०, श्लो. ३५)

यह विषय आगे सूत्र ६३ में बताया जा रहा है।

कारकांश से नवम भाव व जातक का स्वभाव

समे शुभदृग्योगाद्धर्मनित्यः सत्यवादी गुरुभक्तश्च ॥४८॥

कारकांश लग्न में नवम स्थान पर यदि शुभ ग्रहों की दृष्टि हो या वहाँ पर शुभ ग्रह स्थित हों तो मनुष्य धर्मपरायण, सत्यवादी व गुरुजनों का भक्त होता है।

अन्यथा पापैः ॥४९॥

उक्त स्थान में यदि पाप ग्रहों की स्थिति या दृष्टि हो तो मनुष्य

अधार्मिक, झूठ बोलने वाला और गुरुजनों का अपमान करने वाला होता है।

शनिराहुभ्यां गुरुद्रोहः ॥५०॥

गुरुरविभ्यां गुरावविश्वासः ॥५१॥

कारकांश के नवम भाव में यदि शनि व राहु की दृष्टि या स्थिति हो तो मनुष्य गुरुजनों से द्रोह करने वाला होता है।

यदि वहाँ गुरु और सूर्य की दृष्टि या स्थिति हो तो मनुष्य गुरुजनों पर विश्वास नहीं करता।

तत्र भृग्वंगारकवर्गे पारदारिकः ॥५२॥

कारकांश से नवम स्थान में मंगल व शुक्र की दृष्टि, युति या षड्-वर्ग पड़ते हों तो मनुष्य दूसरे की स्त्रियों का शौकीन होता है।

कारकांश लग्न से नवम भाव में स्थित राशि से इसका निर्णय करना है। **महर्षि पराशर** ने कहा है—

कारकांशाच्च नवमे शुक्रभौमयुतेक्षिते।
षड्वर्गादिकयोगे तु मरणं पारदारिकम्॥ (वही, श्लो. ५४)

कारकांश से नवम स्थान में शुक्र व मंगल की युति या दृष्टि हो या वहाँ इनके षड्वर्ग पड़ते हों तो मनुष्य परस्त्री लोलुपता के कारण मृत्यु को प्राप्त करता है।

हमारे विचार से सूत्र का अर्थ केवल षड्वर्ग परक न लेकर युति व दृष्टि को भी वहाँ समान फल देने वाली मानना चाहिए। अर्थात् जैमिनि के अनुसार यदि वहाँ इनके षड्वर्ग हों तो मनुष्य परस्त्री लोलुप होता है; परन्तु वहाँ दृष्टि व युति होने पर आजीवन इस कार्य में लगा रहता है। यह अगले सूत्र में स्पष्ट किया गया है।

दृग्योगाभ्यामधिकाभ्यामामरणम् ॥५३॥

शुक्र या मंगल की वहाँ दृष्टि या योग हो तो मनुष्य आमरण इस पापकर्म में लिप्त रहता है।

केतुना प्रतिबन्धः ॥५४॥

यदि वहाँ साथ में केतु की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य का स्वभाव मृत्युपर्यन्त पारदारिक नहीं होता है।

गुरुणा स्त्रैणः ॥५५॥

यदि उक्त नवम स्थान में वृहस्पति की दृष्टि या युति हो तो मनुष्य स्त्रियों के विषय में बहुत चंचल होता है। अर्थात् उसकी यह दुष्प्रवृत्ति शारीरिक न होकर मानसिक विकृति के रूप में उभरती है।

राहुणार्थनिवृत्तिः ।।५६।।

यदि वहां नवम स्थान में राहु की दृष्टि या युति हो तो मनुष्य स्त्रियों के लालच में अपना बहुत-सा धन नष्ट कर देता है।

कारकांश से सप्तम भाव व पत्नी विचार

लाभे चन्द्रगुरुभ्यां सुन्दरी ।।५७।।

कारकांश से सातवें स्थान में यदि चन्द्रमा व बृहस्पति की दृष्टि या युति हो तो मनुष्य का विवाह सुन्दर स्त्री से होता है।

राहुणा विधवा ।।५८।।

यदि उक्त सातवें स्थान में राहु की दृष्टि या युति हो तो मनुष्य को विधवा स्त्री की प्राप्ति होती है।

शनिना वयोधिकारोगिणी तपस्विनी वा ।।५९।।

यदि वहाँ शनि की दृष्टि हो या शनि वहाँ स्थित हो तो मनुष्य को अपने से अधिक अवस्था वाली, रोगिणी या तपस्विनी स्त्री मिलती है।

कुजेन विकलांगी ।।६०।।

यदि उक्त सप्तम स्थान में मंगल स्थित हो तो मनुष्य की स्त्री विकलांग अर्थात् दोषपूर्ण अंग वाली होती है।

रविणा स्वकुले गुप्ता च ।।६१।।

उक्त सप्तम स्थान में यदि सूर्य स्थित हो या दृष्टि रखता हो तो मनुष्य को विकलांग एवं नितान्त घरेलू स्त्री मिलती है। ऐसी स्त्री घर की सीमाओं में ही जीवन बिताती है।

बुधेन कलावती ।।६२।।

यदि उक्त सप्तम स्थान में बुध की स्थिति या दृष्टि हो तो मनुष्य की स्त्री गीत, वाद्य आदि ललित कलाओं में कुशल होती है।

चापे चन्द्रेणानावृते देशे ।।६३।।

कारकांश लग्न से चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा हो तो मनुष्य खुले आकाश के नीचे प्रथम बार स्त्री संगम करता है।

कारकांश से तृतीय स्थान व स्वभाव

कर्मणि पापे शूरः ।।६४।।

शुभे कातरः ।।६५।।

मृत्युचिन्तयोः पापे कर्षकः ।।६६।।

कारकांश लग्न में तृतीय स्थान (कर्म) में पापग्रह हों तो मनुष्य शूर स्वभाव अर्थात् निडर होता है।

यदि इस स्थान में शुभग्रह हो तो मनुष्य डरपोक होता है।

यदि कारकांश लग्न में तृतीय व षष्ठ स्थान में पापग्रह स्थित हो तो मनुष्य कृषिकार्य करने वाला होता है।

कर्म—क=१, म=५, ५१÷१२। शेष ३ (तृतीय भाव)
मृत्यु—म=५, य=१, १५÷१२। शेष ३ (")
चिन्त—च=६, त=६, ६६÷१२। शेष ६ (षष्ठ भाव)

सामान्यतः तृतीय स्थान से भुजा, पराक्रम आदि का विचार किया जाता है जो यहाँ संगत है, परन्तु षष्ठ भाव के संयोग से जीविका का विचार अनोखा है।

नवम भाव व जीविका

समे गुरौ विशेषेण ।।६७।।

कारकांश लग्न में नवम स्थान (सम) में यदि बृहस्पति स्थित हो तो विशेषतया उक्त फल कहना चाहिए। अर्थात् व्यक्ति निश्चित रूप से कृषि कार्य से जीविकोपार्जन करेगा।

कारकांश का द्वादश भाव व परलोकगति

उच्चे शुभे शुभलोकः ।।६८।।

कारकांश लग्न में द्वादश भाव में यदि शुभ ग्रह स्थित हो तो मनुष्य मृत्यु के पश्चात् शुभ लोकों में जाता है।

केतौ कैवल्यम् ।।६९।।

कारकांश से बारहवें स्थान में यदि केतु स्थित हो तो मनुष्य को मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

इस सूत्र की दो प्रकार से व्याख्या की जाती रही है। एक प्रकार

ऊपर बता चुके हैं। दूसरे प्रकार से केतु शब्द का अर्थ कटपयादि से लेकर क=१, त=६, ६१÷१२। शेष १। अर्थात् कारकांश लग्न में शुभग्रह हो तो मनुष्य मोक्ष पा जाता है। इस व्याख्या में सूत्र ६९ का अन्वय सूत्र ७० के साथ होता है। प्राचीन टीकाकारों ने इस सूत्र का यह दूसरा अर्थ ही अधिक सम्मत माना हैं। उचित भी है। कारण यह है कि जैमिनीय मत में केवल चरदशा को छोड़कर कहीं भी केतु शुभ नहीं होता है। अस्तु, अगले सूत्र में बताया गया है कि बारहवें स्थान में मीन या कर्क राशि में केतु हो (वैकल्पिक अर्थ, कारकांश लग्न में मीन या कर्क राशि हो) तो विशेषतया मोक्षप्रद योग होता है।

इस प्रकार सूत्र ६९-७० की व्याख्या विवादास्पद है। हमारे विचार से बारहवें स्थान में केतु होने पर मोक्षप्रद मानना और केतु उन्नत राशि में हो तो विशेषतया मोक्षप्रद योग मानना अधिक संगत लगता है: केतु के पक्ष में कहा जा सकता है कि—

(i) केतु मोक्ष का स्थिर कारक है। **उत्तरकालामृत** में कहा गया है:

श्वानः कुक्कुटगृध्रमोक्षसकलैश्वर्यक्षयार्तिज्वराः ॥

गंगास्नानमहातपौ···ब्रह्मवेतृत्वता···वैराग्यं च···॥ (श्लो. ५३-५५)

(ii) केतु वेदान्त दर्शन, महान तपस्या, ब्रह्मज्ञान, वैराग्य आदि तथा समस्त आध्यात्मिक शक्तियों के उत्थान का प्रतीक है।

(iii) केतु का अर्थ ध्वजा, झंडा अर्थात् उच्चता, प्रभुसत्ता व आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा होना संगत है। **महर्षि पराशर** ने भी द्वादशस्थ केतु को मोक्षप्रद माना है।

कारकांशाद् व्यये केतौ शुभखेटयुतेक्षिते।
तदा तु जायते मुक्तिः सायुज्यपदमाप्नुयात् ॥
मेषे धनुषि वा केतौ कारकांशाद् व्यये स्थिते ॥
शुभखेटेन संदृष्टे सायुज्यपदमाप्नुयात् ॥

(पा. हो., कारकांश०, श्लो. ६५-६६)

महर्षि पराशर के मत में यह विशेषता है कि वहाँ द्वादश केतु पर शुभग्रहों की दृष्टि को मोक्ष के लिए आवश्यक माना है। वे अकेले केतु को पापदृष्ट होने पर मोक्षप्रद नहीं मानते। (देखें श्लोक ६७)।

अस्तु, इससे हमारे केतुपरक अर्थ की पुष्टि तो होती ही है। साथ ही

केतु परक अर्थ न मानकर यदि कारकांश लग्न का अर्थ मानते हैं जैसा कि प्रायः टीकाकारों ने माना है तो इसी पाद के सूत्र १४ से सूत्र ३८ तक एक ही प्रसंग की पुनरावृत्ति माननी पड़ेगी। हम जैमिनि मुनि से इतनी अस्तव्यस्तता की अपेक्षा तो नहीं कर सकते। अतः हमारा मत है कि इन सूत्रों का अर्थ केतु ग्रह परक ही लें।

क्रियचापयोर्विशेषेण ॥७०॥

यदि क्रिय (मीन) या चाप (कर्क) में यदि केतु उक्त स्थान में हो तो मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है।

पापैरन्यथा ॥७१॥

यदि कारकांश लग्न में द्वादश स्थान में केतु को छोड़कर पापग्रह हो तथा वहाँ पापदृष्टि हो तो मनुष्य को शुभलोक व मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

इस सूत्र का अन्वय सूत्र ६८-७० के साथ है। पराशर के मत से भी द्वादशस्थ पापग्रह असद्गति देते हैं। (देखें पूर्वोक्त प्रकरण, पारा. हो.)।

द्वादशस्थ ग्रह व देवताओं की भक्ति

रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः ॥७२॥
चन्द्रेण गौर्याम् ॥७३॥
शुक्रेण लक्ष्म्याम् ॥७४॥
कुजेन स्कन्दे ॥७५॥
बुधशनिभ्यां विष्णौ ॥७६॥
गुरुणा साम्बशिवे ॥७७॥
राहुणा तामस्यां दुर्गायां च ॥७८॥
केतुना गणेशे स्कन्दे च ॥७९॥

कारकांश लग्न से बारहवें स्थान में केतु के साथ यदि सूर्य हो तो मनुष्य शंकर का भक्त होता है।

वहाँ चन्द्रयुक्त केतु हो तो गौरी में, शुक्रयुक्त केतु हो तो लक्ष्मी में, मंगलयुक्त केतु हो तो कार्तिकेय में, बुध व शनि युक्त केतु हो तो विष्णु में, गुरु युक्त हो तो शंकर पार्वती में, राहु हो तो महाकाली, दुर्गा आदि में और अकेला केतु हो तो गणेश और कार्तिकेय में मनुष्य की भक्ति होती है।

यदि केतु का अन्वय सब जगह न मानें तब भी हमारे विचार में अकेले सूर्य चन्द्रादि ग्रह उक्त फल को तारतम्य से दिखाएंगे।

पापर्क्षे मन्दे क्षुद्रदेवतासु ।।८०।।

शुक्रे च ।।८१।।

अमात्यदासे चैवम् ।।८२।।

कारकांश लग्न से द्वादश स्थान में यदि पापग्रह की राशि में शनि हो तो मनुष्य क्षुद्रदेवता अर्थात् यक्षिणी, पिशाचिनी, डाकिनी भैरव आदि का भक्त होता है।

यदि शुक्र वहाँ पापराशि में हो तो भी यही फल होता है। अतः पीछे शुक्र से लक्ष्मी में जो भक्ति बताई है वह शुभराशि में स्थित होने पर ही सिद्ध होती है।

इसी प्रकार अमात्यदास ग्रह भी यदि पापग्रह की राशि में हो तो मनुष्य क्षुद्र देवताओं का भक्त होता है।

आत्मकारक से कम अंशादि वाला ग्रह अमात्यकारक होता है। अमात्यकारक ग्रह से वारक्रम से गिनने पर छठा ग्रह अमात्यदास होता है, ऐसा पं० नीलकण्ठ ने कहा है। ऐसा अर्थ भी सम्भव है कि अमात्यकारक से दास (षष्ठ) स्थान में भी यदि उक्त प्रकार से शनि शुक्रादि से भक्ति का विचार करना चाहिए। हमें यह दूसरा अर्थ ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। दास शब्द का अर्थ छठा भाव ही होगा, छठा ग्रह नहीं। उक्त तीनों ग्रहों में से कोई एक भी यदि उक्त स्थिति में हो तो मनुष्य क्षुद्रदेवता का भक्त होता है। यह बात अलग-अलग सूत्र लिखने से प्रमाणित हो रही है। नहीं तो जैमिनि मुनि तीनों को एकत्र करके **'पापर्क्षे मन्दे शुक्रेऽमात्यदासे च क्षुद्रदेवतासु'** इस प्रकार सूत्र लिख सकते थे।

कारकांश त्रिकोण व यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र

त्रिकोणे पापद्वये मान्त्रिकः ।।८३।।

पापदृष्टे निग्राहकः ।।८४।।

शुभदृष्टेऽनुग्राहकः ।।८५।।

कारकांश लग्न से त्रिकोण स्थानों में यदि दो पापग्रह हों अर्थात् दोनों त्रिकोणों (५,९) में एक-एक पापग्रह हो तो मनुष्य मन्त्र प्रयोग करने वाला अर्थात् यान्त्रिक-तान्त्रिक होता है।

यदि दोनों त्रिकोण स्थानों में पापग्रहों की दृष्टि हो तो वह भूत

प्रेतों को वश में करने वाला होता है।

यदि वहाँ शुभग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य लोगों का उपकार करने वाला होता है।

कारकांश लग्न व चिकित्सा का व्यवसाय

शुक्रेन्दौ शुक्रदृष्टे रसवादी ॥८६॥

बुधदृष्टे भिषक् ॥८७॥

कारकांश लग्न में यदि शुक्र व चन्द्रमा हों अथवा वहाँ स्थित चन्द्रमा को शुक्र देखता हो तो मनुष्य चिकित्सा सम्बन्धी रसायनों का निर्माता अर्थात् दवा बनाने वाला होता है।

यदि वहाँ स्थित चन्द्रमा को बुध देखता हो तो मनुष्य डॉक्टर होता है।

चतुर्थ पंचम स्थान व कुष्ठ रोग

चापे चन्द्रे शुक्रदृष्टे पाण्डुश्वित्री ॥८८॥

कुजदृष्टे महारोगः । ८९॥

केतुदृष्टे नीलकुष्ठम् ॥९०॥

कारकांश लग्न से चतुर्थ स्थान में स्थित चन्द्रमा को यदि शुक्र देखता हो तो मनुष्य को सफेद दाग या सफेद कोढ़ होता है।

यदि वहीं स्थित चन्द्रमा को मंगल देखता हो तो मनुष्य को रक्त-पित्त विकार से उत्पन्न गम्भीर कोढ़ होता है।

यदि वहीं स्थित चन्द्रमा को केतु देखता हो तो मनुष्य को काला कोढ़ होता है।

कुष्ठरोग के कुछ प्रामाणिक योग **जातकालंकार** व **होरारत्नम्** से देखें। वहाँ चन्द्र, मंगल, शुक्र, शनि आदि के स्थानयुति आदि सम्बन्धों से विविध कुष्ठ रोगों के योग दिए गए हैं।

क्षय रोग (टी० बी०) के योग

तत्र मृतौ वा कुजराहुभ्यां क्षयः ॥ ९१ ॥

चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन ॥ ९२ ॥

कारकांश लग्न से चतुर्थ या पंचम स्थान में मंगल व राहु स्थित हों तो मनुष्य को क्षय रोग होता है।

यदि वहाँ स्थित मंगल व राहु को चन्द्रमा देखता हो तो निश्चय से क्षयरोग होता है। अर्थात् चन्द्र यदि न देखता हो तो नियन्त्रण योग्य क्षय होता है। दृष्टि होने पर रोग का स्वरूप भयंकर होगा। इस प्रकार तारतम्य समझ लेना चाहिए।

फोड़े-फुंसी का योग

कुजेन पिटिकादिः ॥ ९३ ॥

कारकांश लग्न से चतुर्थ या पंचम स्थान में मंगल स्थित हो तो मनुष्य को बहुत से फोड़े-फुंसियों का रोग होता है।

संग्रहणी व जलोदर का योग

केतुना ग्रहणी जलरोगो वा ॥ ९४ ॥

यदि उक्त चतुर्थ या पंचम स्थान में केतु स्थित हो तो मनुष्य को संग्रहणी रोग या जलरोग होता है। जलरोगों में शरीर के किसी भाग में जलवृद्धि होने या जल में कमी आने से उत्पन्न विकृतियों को लिया जा सकता है। जैसे—अण्डकोष वृद्धि, पतले दस्त, सूखा रोग (Dehydration) जलोदर (Dropsy) आदि।

विषरोग योग

राहुगुलिकाभ्यां क्षुद्रविषाणि ॥ ९५ ॥

कारकांश से चतुर्थ या पंचम स्थान में यदि राहु व गुलिक स्थित हों तो मनुष्य को हल्के विष से उत्पन्न विकृतियां होती हैं। जैसे बन्दर, चूहे आदि का जहर अथवा कम जहरीले साँप का काटना आदि।

चतुर्थ स्थान व कला-कौशल

तत्र शनौ धानुष्कः ॥ ९६ ॥

केतुना घटिकायन्त्री ॥ ९७ ॥

बुधेन परमहंसो लगुडी वा ॥ ९८ ॥

राहुणा लोहयन्त्री ॥ ९९ ॥

रविणा खड्गी ॥ १००॥

कुजेन कुन्ती ॥ १०१ ॥

कारकांश से चतुर्थ स्थान मे यदि शनि स्थित हो तो मनुष्य धनुष-बाण चलाने अथवा अन्य युद्धोपयोगी हथियार चलाने में कुशल होता है।

यदि वहाँ केतु स्थित हो तो मनुष्य घड़ियों का विशेषज्ञ या निर्माता होता है।

यदि वहाँ बुध स्थित हो तो मनुष्य परमहंस अर्थात् सर्वोच्च आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न अथवा दण्डधारी संन्यासी होता है। यदि वहाँ चतुर्थ स्थान में राहु स्थित हो तो मनुष्य लोहे की मशीनों का निर्माता, विशेषज्ञ होता है।

यदि वहां पर सूर्य स्थित हो तो मनुष्य तलवार चलाने की कला में निपुण होता है।

यदि वहाँ पर मंगल स्थित हो तो मनुष्य भाला चलाने की कला में निपुण होता है।

कारकांश लग्न व ग्रन्थों की रचना

मातापित्रोश्चन्द्रगुरुभ्यां ग्रन्थकृत् ॥ १०२॥

शुक्रेण किञ्चदूनम् ॥ १०३ ॥

बुधेन ततोऽपि ॥ १०४ ॥

यदि कारकांश लग्न मे अथवा उससे पंचम स्थान में चन्द्रमा व बृहस्पति स्थित हों तो मनुष्य ग्रन्थों की रचना करने वाला होता है।

यदि उक्त दोनों स्थानों में चन्द्रमा व शुक्र हों तो पहले योग की अपेक्षा कुछ कम प्रभावशाली ग्रन्थकार योग बनता है।

यदि कारकांश लग्न व उससे पंचम स्थान में चन्द्रमा व बुध हों तो तृतीय श्रेणी का ग्रन्थकार योग होता है।

ये तीनों योग उत्तरोत्तर निर्बल हैं।

कवि, वाक्पटु व काव्यज्ञ योग

शुक्रेण कविर्वाग्मीकाव्यज्ञश्च ॥ १०५ ॥

गुरुणा सर्वविद्ग्रन्थिकश्च ॥ १०६ ॥

न वाग्मी ॥ १०७ ॥

कारकांश लग्न में अथवा उससे पंचम नवांश में यदि चन्द्ररहित शुक्र स्थित हो तो मनुष्य कवित्व शक्ति से युक्त, बोलने की कला में निपुण तथा काव्यशास्त्र को जानता है।

यदि इन्हीं स्थानों में अकेला बृहस्पति स्थित हो तो मनुष्य बहुत से शास्त्रों को जानने वाला तथा ग्रन्थों की रचना करने वाला होता है।

अकेला बृहस्पति होने पर मनुष्य बहुज्ञ व विद्वान् होने पर भी बोलने में कुशल नहीं होता।

वैयाकरण व वेदवेत्ता योग

विशिष्यवैयाकरणो वेदवेदाङ्गविच्च ॥ १०८ ॥

कारकांश, लग्न या उससे पंचम में अकेला बृहस्पति स्थित हो तो मनुष्य व्याकरण शास्त्र व वेद-वेदांगों को जानने वाला होता है। अर्थात् वह इन विषयों का विशेषज्ञ होता है।

विविध विषयज्ञ योग

सभाजडः शनिना ॥ १०९ ॥

बुधेन मीमांसकः ॥ ११० ॥

कुजेन नैयायिकः ॥ १११ ॥

चन्द्रेण सांख्ययोगज्ञः साहित्यज्ञो गायकश्च ॥ ११२ ॥

रविणा वेदान्तज्ञो गीतज्ञश्च ॥ ११३ ॥

केतुना गणितज्ञः ॥ ११४ ॥

उक्त दोनों स्थानों में यदि अकेला शनि स्थित हो तो मनुष्य जन समुदाय के समक्ष बोलने में घबराहट अनुभव करता है। अर्थात् उसकी वाणी जड़ हो जाती है।

यदि अकेला बुध इन स्थानों में स्थित हो तो मनुष्य मीमांसा शास्त्र को जानने वाला होता है।

यदि मंगल हो तो मनुष्य न्यायदर्शन को जानने वाला अथवा विधि-विशेषज्ञ, तर्कशास्त्री होता है।

यदि यहाँ चन्द्रमा स्थित हो तो मनुष्य सांख्ययोग का विशेषज्ञ, साहित्य शास्त्र को जानने वाला और गायक होता है।

यदि उक्त स्थानों में सूर्य स्थित हो तो मनुष्य वेदान्त दर्शन का जानने वाला और गायन में निपुण होता है।

यदि इन्हीं स्थानों में केतु हो तो मनुष्य गणितज्ञ, ज्योतिषी, कम्प्यूटर विशेषज्ञ आदि होता है।

आज के युग में अध्ययन योग्य विषय पूर्वापेक्षा अधिक हैं। कुछ प्राचीन विषयों का आजकल चलन नहीं रहा है। जैसे मीमांसा आदि। अतः हमारे विचार मे इन ग्रहों के स्थित होने पर कुछ इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र समझ लेने चाहिएं।

सूर्य

ऊर्जा संसाधन (विद्युत, जल आदि), परमाणु सम्बन्धी क्षेत्र, चिकित्सा विज्ञान, पशुचिकित्सा, आकाशीय उपग्रह आदि, अस्थिचिकित्सा, वनस्पति शास्त्र, जीव विज्ञान, वन्यविज्ञान, पर्वतारोहण, मनोविज्ञान, नेत्रचिकित्सा, मस्तिष्क चिकित्सा, वस्त्रोद्योग, वस्त्रविन्यास, फेब्रिक डिजायनिंग, पत्थर विशेषज्ञता, जल-जन्तुविज्ञान, उच्चाधिकार देने वाले क्षेत्र आदि।

चन्द्रमा

चिकित्साविज्ञान (मनोरोग, हृदयरोग, तन्त्रिका विज्ञान आदि), अध्यापन, काव्य, गायन, स्त्री विषय, जलीय विषय, वाग्मिता, दन्त-विशेषज्ञता, कृषिविज्ञान, औषधि निर्माण, विदेश सेवा, नृत्य, वाद्य, ललित कलाएँ, अभिनय आदि।

मंगल

प्रशासनिक क्षेत्र (नागरिक प्रशासन, सैन्य प्रशासन, वैधानिक प्रशासन), वकालत, विधिवेत्ता, भवन-निर्माण, कृषि कर्म, खनिज विज्ञान, भूगर्भविज्ञान, भूगोल, युद्धकौशल, क्रीड़ा, चिकित्सा (सर्जरी, कैंसर, रक्त-चाप, उदररोग, रति रोग आदि), पशुपालन, वाहनविशेषज्ञता, शस्त्रनिर्माण, पुलिस सेवा, आभूषण-निर्माण, अश्वारोहण, वास्तुकला, स्थापत्यकला, प्राचीन कलाकृति विशेषज्ञता, भू-उत्खनन, इत्यादि।

बुध

कवित्व, काव्यशास्त्र, व्यापार, पुस्तक लेखन, संशोधन, सम्पादन, विशेषज्ञता, चिकित्साविज्ञान (धमनी, हृदय, छाती के रोग, त्वचा रोग, नपुंसकता आदि), गणित, बैंक, जीवन बीमा आदि के क्षेत्र, कोषरक्षा, लेखापरीक्षक (चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट आदि), मुनीमगिरी, कर्मकाण्ड, ज्योतिष, पौरोहित्य, टाइप, शार्टहैण्ड, नेतृत्व, भाषणकला, जनसम्पर्क अधिकारी, आभूषण विक्रय व निर्माण, हलवाई, होटल प्रबन्ध, पाककला, अभिनय, गायन, वाद्य, संगीत, नृत्य, तन्त्र-मन्त्र, अध्यापन, भक्ति, पुराण, व्याकरण, वेद, साहित्य आदि ।

बृहस्पति

व्याकरण, वेद, वेदांग, अध्यापन, कुलपतित्व, तर्क, मीमांसा न्याय, वेदान्त आदि लगभग सभी प्राचीन भारतीय विषय, भाषाविज्ञान, ज्योतिष राजमान्य कार्य, धर्मोपदेश, भाषणकला, मन्त्र, पूजा-पाठ, काव्यशास्त्र, ऊंचे पदाधिकार, शिक्षण संस्थाओं का प्रबन्ध, दण्डाधिकारी, आयकर आदि ।

शुक्र

वाक्चातुर्य, कवित्व, अभिनय, नृत्याभिनयादि ललित-कलाएँ, व्यापार, वस्त्र-निर्माण, वाटिका विज्ञान, चिकित्सा (रतिजन्य रोग, स्त्री रोग, बालरोग आदि), व्यापार, लेखन, पुस्तक व्यवसाय, पत्र-पत्रिका, पत्रकारिता, वाद्ययन्त्रों का निर्माण व विशेषज्ञता, विदूषकता, हास्य-व्यंग्य, गन्धपूर्ण वस्तुओं का निर्माण व व्यापार, फैशन की वस्तुओं का निर्माण, तैराकी, पानी के अन्य खेल, गोताखोरी, समुद्र यात्राएँ, मणि व्यापार, डाकघर बैंक आदि का कार्य, छापाखाना, केशविन्यास आदि ।

शनि

कारीगरी, हस्तकला, दासकर्म, दौड़ना, लोहे के यन्त्र, यन्त्रनिर्माण, भट्ठियों का काम, ताप बिजली, प्लास्टिक उद्योग, रबर उद्योग, जूट ऊन आदि के उद्योग, कालीन निर्माण, वस्त्र बुनने की छोटी मशीनें, ड्राइविंग, चिकित्सा (पादरोग, अस्थिरोग, हृदयरोग, वायुप्रकोप, कैंसर, टी० वी० तथा सभी संक्रामक रोग), शल्यक्रिया, पुस्तकालय, विज्ञान, जिल्दसाजी,

कागज उद्योग, भवन निर्माण सामग्री का निर्माण और व्यवसाय, ट्रांसपोर्ट, सामान का भेजना, पोस्टमैन, कुली, सेवक, जेल के अधिकार, शस्त्रनिर्माण, शीशा, रांगा, अल्युमीनियम आदि विविध धातु की वस्तुओं का निर्माण, भैंस, बकरी, पशुपालन, मद्य निर्माण, शिकार, वनजन्तु-रक्षा आदि।

राहु

मनोविज्ञान, विविध भाषा, दलाली, लाटरी उद्योग, पदयात्रा, सर्प पालना या उनसे जीविका चलाना, जन्तु पालन, मांस विक्रय, कबाड़ी का कार्य, गणित, हिसाब-किताब की विद्या, मद्यनिर्माण व व्यवसाय, श्मशान रक्षक, अस्पतालों में मुर्दाघरों का अधिकार, विशेषतया उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाएँ, तन्त्र-मन्त्र, ज्योतिष, जादुई कार्य आदि।

केतु

गणित, संन्यास, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान, चिकित्सा (क्षयरोग, बुखार पशुओं के जहर की चिकित्सा, [बेहोशी आदि), शिकार, पाषाणकला, सींगों वाले पशुओं का व्यापार, दलाली, सम्पत्ति का आदान-प्रदान आदि।

गुरुसम्बन्धेन सम्प्रदायसिद्धिः ॥ ११५ ॥

यदि उक्त ग्रहों पर गुरु का दृष्टि सम्बन्ध, वर्ग सम्बन्ध आदि हो तो मनुष्य उक्त क्षेत्रों में ऊँची उपलब्धियां प्राप्त करता है।

भाग्ये चैवम् ॥ ११६ ॥

सदाचैवमित्येके ॥ ११७ ॥

जिस प्रकार कारकांश लग्न और पंचम भाव में स्थित ग्रहों से पूर्वोक्त फल कहा है उसी स्थिति में यदि ग्रह कारकांश लग्न से द्वितीय भाव (भाग्य) व तृतीय भाव (सदा) में भी हों तो पूर्वोक्त प्रकार से ही फल कहना चाहिए।

तृतीय भाव में तत्तद् ग्रहों की स्थिति से उक्त फल कुछ लोगों ने माना है।

भाग्ये केतौ पापदृष्टे स्तब्धवाक् ॥ ११८ ॥

कारकांश में द्वितीय स्थान में यदि केतु को पापग्रह देखते हों तो मनुष्य अटक कर बोलने वाला, बोलने में घबरा जाने वाला अर्थात् वाक्शक्ति से हीन होता है।

जैमिनिमत से केमद्रुम योग (निर्धन योग)

स्वपितृपदाद् भाग्यरोगयोः पापे साम्ये केमद्रुमः ।। ११६ ।।

जिस मनुष्य के जन्म लग्न से द्वितीय व अष्टम स्थान में पाप ग्रह स्थित हों तो केमद्रुम योग होता है।

यदि केवल शुभ ग्रह हों तो केमद्रुम योग नहीं होता।

यदि पाप व शुभ ग्रह दोनों भावों में समान संख्या में हों तो भी केमद्रुम योग होता है। अर्थात् एक-एक शुभ ग्रह व एक-एक पापग्रह या अधिक समान संख्या में हों तो केमद्रुम योग होता है। असमान संख्या होने पर केमद्रुम योग नहीं होगा।

इसी प्रकार लग्न के पद से भी द्वितीय व अष्टम स्थान में उक्त प्रकार से ग्रह हों तो भी केमद्रुम योग होता है।

यदि दोनों (लग्न व लग्न पद) से ही केमद्रुम योग सिद्ध हो रहा हो तो इसका प्रभाव बहुत व्यापक होता है।

केमद्रुम योग रेका योग अर्थात् दारिद्र्य योगों में अन्यतम है। इस योग के होने पर मनुष्य उच्च श्रीमन्त परिवार में पैदा होने पर भी धनहीन व अकिंचन होता है।

कुछ लोग 'स्व' शब्द से कारकांश लग्न का अर्थ मानकर–व्याख्या करते हैं। किन्तु तब वहाँ जन्म लग्न परक अर्थ नहीं निकल सकता।

यद्यपि कारकांश लग्न से भी विचार कर लेने में हानि नहीं है। इसका कारण यह है कि जैमिनि मुनि ने लग्न, पद व कारकांश को समान महत्त्व दिया है। ऐसा आशय यहाँ तक के विवेचन से भी आपको स्पष्ट हो गया होगा। अस्तु वृद्ध परम्परा कारकांश लग्न से उक्त प्रकार से केमद्रुम विचार करने की अनुमति नहीं देती है। वृद्ध मत से इसका विचार केवल जन्म लग्न व लग्न के पद से ही करना चाहिए—

आरूढाज्जन्मलग्नाद् वा पापौ स्वीहानिगौ यदि ।।
केवलौ संग्रहत्वेऽपि समसंख्यौ शुभाशुभौ ।।
चन्द्रदृष्टौ विशेषेण योगः केमद्रुमो मतः ।। (वृ० का०)

इससे एक बात और स्पष्ट हो गई है कि उक्त ग्रहों की स्थिति में यदि उन पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो केमद्रुम योग अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

वृद्ध परम्परा के आधार पर तो कारकांश लग्न को केमद्रुम विचार से बाहर करना ही चाहिए। क्योंकि तब 'स्व' शब्द का अन्वय पद के साथ करके कारकांश के पद से भी उक्त विचार करना आवश्यक हो जाएगा; किन्तु कारकांश कुण्डली में पद-विचार का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। केवल लग्न कुण्डली व लग्न पद से ही केमद्रुम योग बनेगा। चन्द्रमा की दृष्टि के विषय में अगले सूत्र में बताया जा रहा है :

चन्द्रदृष्टौ विशेषेण ॥ १२० ॥

उक्त योग में लग्न या पद से द्वितीय व अष्टम स्थानों में स्थित ग्रहों पर यदि चन्द्रमा की दृष्टि हो तो केमद्रुम योग विशेष बली हो जाता है।

सर्वेषां चैवं पाके ॥ १२१ ॥

इस पाद में बताए गए सभी योगों का फल तत्तत् ग्रहों व राशियों की दशा अन्तर्दशा में प्राप्त होता है।

दशा आरम्भ होने के समय भी यदि उक्त केमद्रुमादि योग दशारम्भ लग्न के आधार पर बनते हों तो इन योगों का पूर्ण फल मिलता है।

दशा प्रवेश के समय का लग्न साधन करने का प्रकार हमने अपने आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य (पृ० ३७४-७७) में उदाहरण सहित बताया है। यह एक लम्बी गणितीय प्रक्रिया है। विशेष जिज्ञासु पाठक कृपया वहीं से देख लें।

इति पं० सुरेशमिश्रविरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीय सूत्रभाष्ये प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

तृतीयः पादः

पद (आरूढ़) से फलादेश का प्रकार

अथ पदम् ।।१।।

अब पद अर्थात् आरूढ़ के फल के विषय में इस पाद में बताया जा रहा है। पद के विषय में पीछे प्रथम पाद के सूत्र २९ में भी बताया जा चुका है।

आरूढ़ लग्न व आर्थिक स्थिति

व्यये सग्रहेग्रहदृष्टे श्रीमन्तः ।।२।।

लग्न पद से ग्यारहवें स्थान में यदि कोई भी ग्रह स्थित हो अथवा उस स्थान पर किसी ग्रह की दृष्टि हो तो मनुष्य धनवान होता है। यहां अधिकाधिक ग्रहों की स्थिति या दृष्टि अधिक धन प्रदान करने वाली होगी।

शुभैर्न्याय्यो लाभः ।।३।।

पापैरमार्गेण ।।४।।

यदि उक्त एकादश स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या स्थिति हो तो मनुष्य को न्यायोचित मार्ग से धन प्राप्त होता है।

यदि वहाँ पाप ग्रह हों या पापी ग्रह उसे देखते हों तो कुमार्ग से धनार्जन होता है।

उच्चादिभिर्विशेषात् ।।५।।

यदि उक्त एकादश स्थान में स्थित ग्रह अथवा दृष्टिकारक ग्रह उच्च, मूलत्रिकोण, स्व, मित्र आदि के गृह में स्थित हों तो तारतम्य से उत्तरोत्तर कम फल होता है। अर्थात् उच्चस्थ होने पर विशेष धन, मूल-त्रिकोणी होने पर उससे कम, स्वक्षेत्री होने पर उससे कम, इस प्रकार फल

समझना चाहिए।

यदि शुभाशुभ मिश्र ग्रह उक्त भाव को देखें तो मिश्रित मार्ग से धनागम कहना चाहिए। इस विषय में वृद्धों ने कुछ विशेष कहा है—

आरूढाल्लाभभवनं ग्रहः पश्येत्तु न व्ययम्।
यस्य जन्मनि सोऽपि स्यात् प्रबलो धनवानपि॥
द्रष्टृग्रहाणां बाहुल्य तदा द्रष्टरि तुङ्गगे।
सार्गले चापि तत्रापि बहवर्गल समागमे॥
शुभग्रहार्गले तत्र तत्राप्युच्चग्रहार्गले।
सुखानि स्वामिना दृष्टे लग्नभाग्याधिपेन वा॥
जातस्य पुंसः प्राबल्यं निर्दिशेदुत्तरोत्तरम्॥ (वृ. का.)

(i) पद से एकादश स्थान को देखने वाला ग्रह यदि पद से द्वादश स्थान को न देखता हो तो मनुष्य अधिक धनी होता है तथा उसका धनार्जन निर्विघ्न होता रहता है।

(ii) दृष्टिकारक ग्रह कई हों तो और प्रबल धनी योग है।

(iii) यदि दृष्टिकारक ग्रह स्वोच्चगत हो तो और अधिक धनी योग होता है।

(iv) यदि दृष्टिकारक ग्रह अर्गला सहित हो तो और अधिक धनी योग है।

(v) यदि उक्त द्रष्टा ग्रह के साथ कई अर्गलाएं हों तो और अधिक धन मिलता है।

(vi) उक्त अर्गला कारक यदि शुभ या उच्च हो तो क्रमशः अधिक धनी योग होता है।

(vii) यदि उक्त एकादश स्थान शुभ स्वामी ग्रह से दृष्ट हो अथवा वह स्वामी ग्रह या लग्न, भाग्येश से दृष्ट हो तो क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक-अधिक प्रभावशाली धनी योग जानना चाहिए। अर्गला के लिए पीछे प्रथम पाद सूत्र ५-१० का भाष्य देखें।

पद लग्न से व्यय का विचार

नीचे ग्रहदृग्योगाद् व्ययाधिक्यम्॥६॥

पद लग्न अर्थात् आरूढ़ से बारहवें स्थान में यदि कोई ग्रह स्थित हो अथवा वहाँ ग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य को बहुत धन व्यय करना पड़ता है।

यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से शुभग्रहों की दृष्टि या योग होने पर सत्कार्यों में व्यय और अशुभ ग्रहों की दृष्टि या योग होने पर असत्कार्यों में व्यय होता है।

इसी प्रकार अधिक ग्रहों की दृष्टि या योग से, क्रमशः अधिक व्यय समझना चाहिए।

रविराहुशुक्रैर्नृपात् ॥७॥
चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन ॥८॥
बुधेन ज्ञातिभ्यो विवादाद् वा ॥६॥
गुरुणा करमूलात् ॥१०॥
कुजशनिभ्यां भ्रातृमुखात् ॥११॥

पद से द्वादश स्थान में सूर्य, शुक्र व राहु एकत्र हों या इनमें से एक या दो भी स्थित हों तो मनुष्य का धन राजा के कारण व्यय होता है। अर्थात् वह व्यक्ति मुकदमे, दण्ड देने आदि में सरकार को रुपया देता है।

यदि उक्त स्थिति में द्वादश स्थान पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो उक्त फल निश्चित रूप से होता है। चन्द्रमा की दृष्टि न होने पर फल प्राप्ति संदिग्ध समझनी चाहिए।

यदि उक्त द्वादश स्थान में बुध स्थित हो तो मनुष्य अपने बन्धु-बान्धवों के कारण अथवा झगड़े आदि के कारण अपना धन गँवाता है।

यदि उक्त स्थान में बृहस्पति स्थित हो तो मनुष्य को भारी करों (Tax) को चुकाने में अपने धन का व्यय करना पड़ता है। मंगल व शनि वहां (दोनों या कोई एक) स्थित हों तो मनुष्य भाइयों के कारण धन गँवा देता है। यहाँ उक्त ग्रहों की पूर्ण दृष्टि होने पर भी यही फल समझना चाहिए।

एतैर्व्यय एवं लाभः ॥१२॥

पद से द्वादश स्थान में बताए गए ग्रह यदि पद से एकादश स्थान में क्रमशः स्थित हों तो मनुष्य को उक्त स्थानों से राजा, बन्धु, मित्र, भाई आदि से लाभ समझना चाहिए।

पेट में रोग का योग

लाभे राहुकेतुभ्यामुदररोगः ।।१३।।

पद से सातवें स्थान में यदि राहु या केतु स्थित हों तो मनुष्य को उदर-रोग होते हैं।

पद लग्न व शीघ्र बुढ़ापा

तत्र केतुना झटिति ज्यानिलिङ्गानि ।।१४।।

पद लग्न से द्वितीय स्थान में यदि केतु स्थित हो तो मनुष्य के शरीर पर वृद्धत्व के चिह्न जल्दी ही आ जाते हैं। ऐसे बहुत से व्यक्ति होते हैं जो अपनी अवस्था से अधिक प्रतीत होते हैं।

पद लग्न का धन-स्थान व धन-सम्पदा

चन्द्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्तः ।।१५।।

चन्द्रमा, गुरु अथवा शुक्र अथवा इनमें से कोई दो या ये तीनों यदि पद लग्न से द्वितीय स्थान में स्थित हों तो मनुष्य श्रीमान् अर्थात् सुनाम, प्रतिष्ठा व धन से युक्त होता है।

हमारे विचार से तीनों ग्रहों के एकत्र होने पर धन-सम्पदा अधिक होनी चाहिए। अन्यथा मेरे समक्ष ऐसी कई कुण्डलियां आई हैं जिनमें एक ग्रह उक्त स्थिति में था और वे सामान्य से कुछ ठीक आर्थिक स्थिति के ही व्यक्ति थे। परन्तु प्रतिष्ठित थे।

अतः विशेष श्रीमन्त योग तभी मानना चाहिए जब ये द्वितीय स्थान में एकत्रित हों या उसे पूर्ण दृष्टि से देखते हों। उदाहरणार्थ राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद की कुण्डली देखिए। इनकी आर्थिक स्थिति सामान्य थी। ये राष्ट्रपति पद का पूरा वेतन भी नहीं लेते थे। इस कुण्डली में पद लग्न से द्वितीय स्थान में अकेला चन्द्रमा स्थित है।

इसी प्रकार मुहम्मद अली जिन्ना की कुण्डली में भी अकेला चन्द्रमा मीन राशि में पद से द्वितीय स्थान में स्थित है, परन्तु वे धनाढ्य व्यक्ति थे।
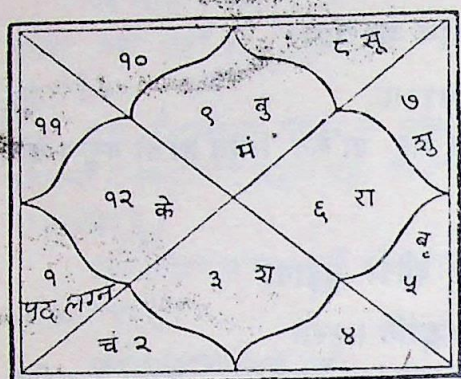
जन्म तिथि—३-१२-१८८४ स्थान—पटना के निकट जीरादेई गांव में पौष कृष्ण प्रतिपदा इष्टकाल ५-१४ घट्यादि

अ० २ पा० १ में प्रदत्त उदाहरण में भी चन्द्र पद से द्वितीय है। परन्तु ये महोदय सामान्य आर्थिक स्थिति के व्यक्ति हैं।

उच्चेन वा ॥१६॥

पद से द्वितीय स्थान में यदि कोई भी ग्रह (शुभ या पाप) अपनी उच्च राशि में हो तो भी मनुष्य श्रीमन्त होता है।

स्वांशवदन्यत्प्रायेण ॥१७॥

शेष धनप्रद ग्रहों का फल पूर्वोक्त कारकांश कुण्डली के अनुसार समझना चाहिए। आशय यह है कि कारकांश फल के प्रसंग में जो ग्रह स्थितियाँ धनप्रद मानी गई हैं, वे ही यदि आरूढ़ लग्न में हों तो भी व्यक्ति को धनी बताना चाहिए।

सप्तम स्थान का पद व श्रीमन्तता

लाभपदे केन्द्रे त्रिकोणे वा श्रीमन्तः ॥१८॥

सप्तम स्थान का पद यदि पद लग्न से केन्द्र या त्रिकोण स्थानों में पड़ता हो तो मनुष्य धनाढ्य होता है।

यहाँ पर उपचय स्थानों का भी ग्रहण करना चाहिए, ऐसा हमारा विचार है। तब १,३,४,५,६,७,९,१०,११ स्थानों में सप्तम पद पड़ने पर व्यक्ति को धनाढ्य माना जाएगा।

अन्यथा दुःस्थे ॥१९॥

यदि सप्तम स्थान का पद लग्न-पद से दुष्ट स्थानों में पड़ता हो अर्थात् ६,८,१२ स्थानों में हो तो मनुष्य निर्धन होता है।

पद लग्न व दाम्पत्य सुख

केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु द्वयोर्मैत्री ॥२०॥

सप्तम स्थान का पद यदि लग्न-पद से केन्द्र (१,४,७,१०) त्रिकोण (५,९) या उपचय (३,६,१०,११) स्थानों में पड़ता हो तो दोनों की परस्पर मत्री होती है। पति व पत्नी में आपसी तालमेल बना रहता है।

इसी सूत्र के आधार पर आप अन्य सम्बन्धियों का भी विचार कर सकते हैं। जैसे पुत्र स्थान का पद यदि पद से उक्त स्थानों में हो तो पुत्र से अच्छे सम्बन्ध रहेंगे। इसी प्रकार पिता, माता, भाई, मित्र आदि के पद का भी विचार किया जा सकता है।

रिपुरोगचिन्तासु वैरम् ॥२१॥

यदि सप्तम स्थान का पद, पद लग्न से षष्ठ, अष्टम या द्वादश में पड़े तो दोनों पक्षों में शत्रुता या मनमुटाव समझना चाहिए। रिपु २१ =१२वाँ स्थान, रोग २३=३२÷१२=शेष ८वाँ स्थान, चिन्ता ६६= ६६÷१२=शेष छठा स्थान।

भाग्यशाली योग

पत्नीलाभयोर्दिष्ट्या निराभासार्गलया ॥२२॥

लग्न पद और लग्न पद से सप्तम स्थान इन दोनों की अर्गला यदि बाधा अर्थात् प्रतिबन्ध से रहित हो तो मनुष्य भाग्यशाली होता है।

पत्नी=प १, न ०=०१ अर्थात् लग्न।

'दिष्ट्या' शब्द का अर्थ यहाँ भाग्यशाली व्यक्ति से है। देखिए व्युत्पत्ति—

दिष्टम् एव दिष्ट्यं अर्थात् भाग्यम्।

दिष्ट्यं भागधेयं येषां ते दिष्ट्याः अर्थात् भाग्यवन्त इति।

अतः इसे तृतीयान्त मानने की आवश्यकता नहीं है।

अर्गला से धन-लाभ

शुभार्गले धनसमृद्धिः ॥२३॥

लग्न व सप्तम के पदों की अर्गला यदि शुभ ग्रहों द्वारा बनाई गई

हो तो धन की खूब वृद्धि होती है।

आशय यह है कि सामान्यतः प्रतिबन्ध-रहित अर्गला व्यक्ति को भाग्यशाली बनाती है। वही प्रतिबन्ध-रहित अर्गला यदि पापग्रहों की हो तो धन की स्थिति मध्यम होगी और वह अर्गला यदि शुभग्रहों की हो तो प्रभूत धन समृद्धि देगी। (अर्गला के लिए पीछे देखें : पाद १, सूत्र ५-१०)।

एक विशेष राजयोग

जन्मकालघटिकास्वकेदृष्टासु राजानः ॥२४॥

जिस मनुष्य के जन्म लग्न, होरा लग्न व घटिका लग्न को एक ही ग्रह देखता हो अर्थात् तीनों लग्नों पर किसी एक ही ग्रह की पूर्ण दृष्टि हो तो इस योग में राजाओं का जन्म होता है।

होरा लग्न के विषय में पहले बताया जा चुका है (सू० ३२, १-१)। भाव लग्न, होरा लग्न व घटी लग्न क्रमशः ५, २॥ और १ घड़ी के बराबर होते हैं। भाव लग्न व होरा लग्न के विषय में प्रचलित मत पीछे बता चुके हैं। साथ ही वहाँ समीक्षात्मक दृष्टिकोण भी हमने पाठकों के समक्ष रखा है। अब घटी लग्न को देखिए। इसका संकेत तो पीछे किया ही जा चुका है। इस विषय में वृद्धमत है—

'लग्नादेकघटीमात्रं याति लग्नं दिनेदिने।
परं तु घटिकालग्नं निर्दिशेत्कालवित्तमः ॥' (बृ. का.)

'लग्न (सूर्य लग्न) से १-१ घड़ी अवधि वाला घटी लग्न होता है। इस प्रकार अहोरात्र में १२ लग्नों की पाँच आवृत्ति हो जाएंगी। यह भाव, होरा लग्नों की अपेक्षा सूक्ष्म घटिका लग्न है। इसका साधन भी कालगति पर्यवेक्षक दैवज्ञ को अवश्य करना चाहिए।

आशय यह है कि जन्मकालिक इष्ट की घड़ियों को १२ से भाग देकर, शेष को राशि मानें। इष्ट काल के पलों को २ से भाग देकर शेष को अंश मानें। इन राश्यंशों को सूर्यराश्यादि में जोड़ने से घटिका लग्न प्राप्त हो जाएगा।

इस घटी लग्न में समस्त ग्रहों की अधिष्ठित राशियाँ जन्म लग्न की तरह ही होती हैं। इसी प्रकार पूर्वोक्त भाव, होरा लग्नों में भी ग्रह स्थिति जन्म लग्नवत् ही होती है।

राशि कुण्डली (चन्द्र लग्न) अंश कुण्डली (नवांश) व द्रेष्काण कुण्डली, इन तीनों में भी प्रथम व सप्तम स्थानों को देखने वाला कोई एक ही ग्रह हो तो भी व्यक्ति महाराज तुल्य होता है।

पत्नीलाभयोश्च राश्यंशकदृक्काणैर्वा ॥२५॥

तेष्वेकस्मिन् न्यूने न्यूनम् ॥२६॥

जन्म लग्न, होरा लग्न व घटिका लग्नों को एक ग्रह देखे तो राजयोग होता है। परन्तु दो लग्नों को भी देखे तो अपेक्षाकृत अल्पबली राजयोग समझना चाहिए।

इसी प्रकार चन्द्र लग्न, नवांश व द्रेष्काण के प्रथम सप्तम भावों को (कुल ६ भाव) एक ग्रह देखे तो श्रेष्ठ राजयोग है, परन्तु कुछ कम भावों को देखने से भी पूर्वापेक्षा अल्प बली राजयोग समझना चाहिए।

इस विषय में वृद्ध मत की भी समीक्षा आवश्यक है—

'विलग्नघटिकालग्नहोरालग्नानि पश्यति।
उच्चगृहे राजयोगो लग्नद्वयमथापि वा॥
राशेर्दृक्काणतोऽशाच्च राशेरंशादथापि वा।
यद्वा राशिदृक्काणाभ्यां लग्नद्रष्टा तु योगदः॥
प्रायेणायं जातकेषु प्रभूणामेव दृश्यते॥
उच्चारूढे तु सम्प्राप्ते चन्द्राक्रान्ते विशेषतः।
क्रान्ते वा गुरुशुक्राभ्यां केनाप्युच्चग्रहेण वा॥
दुष्टार्गलग्रहाभावे राजयोगो न संशयः॥' (वृ.का.)

(i) पूर्वोक्त तीनों लग्नों को देखने वाला ग्रह अथवा दो लग्नों को देखने वाला ग्रह उच्चस्थ हो तो विशेष राजयोग होगा। स्पष्ट है, यदि द्रष्टा ग्रह नीचगत, हीनबली हो सामान्य योग ही बनेगा।

(ii) चन्द्रमा, नवांश व द्रेष्काण को अथवा इनमें से किन्हीं दो लग्नों को एक ही ग्रह देखे तो राजयोग है। यहाँ सप्तम भाव पर भी दृष्टि हो तो विशेष व पूर्ण राजयोग समझना चाहिए।

(iii) यदि उक्त द्रष्टाग्रह उच्चगत होकर चन्द्रमा के साथ हो अथवा उच्चगत न होकर भी चन्द्रयुक्त हो तो विशेष राजयोग बनता है।

(iv) यदि द्रष्टा ग्रह के साथ कोई अन्य उच्चगत ग्रह हो अथवा गुरु व शुक्र से वह युक्त हो तो भी विशेष राजयोग समझना चाहिए।

(v) इन दृष्टिकारक व युतिकारक ग्रहों की पाप अर्गला न हो तो निःसन्दिग्ध राजयोग होता है।

एवमंशतो दृक्काणतश्च ।।२७।।

इसी प्रकार यदि नवांश कुण्डली, होरा लग्न व घटिका लग्न इन तीनों को एक ही ग्रह देखता हो तो भी राजयोग समझना चाहिए।

इसी राजयोग प्रसंग में वृद्धों ने विशेष कहा है—

'निशार्धाच्च दिनार्धाच्च परं सार्धद्विनाडिका।
शुभा तदुद्भवो राजा धनी वा तत्समो भवेत् ।।' (वृ. का.)

स्थानीय स्पष्ट दिनमान व रात्रिमान के आधार पर स्पष्ट मध्याह्न व स्पष्ट रात्र्यर्ध से ढाई घड़ी अर्थात् एक घंटा आगे तक यदि किसी का जन्म हो तो मनुष्य राजा व धनी अथवा राजतुल्य होता है।

इस विषय में **उत्तरकालामृत** में भी कुछ विशेष बताया गया है—

(i) वहाँ दिनार्ध व रात्र्यर्ध से आगे केवल दो घड़ी का समय ही राजयोग कारक माना गया है।

(ii) इसी समय द्वितीय भाव में कोई उच्चग्रह हो तथा उसे दूसरा उच्चगत ग्रह देखे तो व्यक्ति करोड़ों रुपये की सम्पत्ति का स्वामी होता है।

(iii) यदि उस उच्चगत ग्रह को कोई स्वराशिगत ग्रह देखे तो व्यक्ति विपुल लक्षाधीश होता है। (देखें उत्तर काल० अध्याय ४, श्लो० ३०)।

विशेष वाहन सुख योग

शुक्रचन्द्रयोर्मिथो दृष्टयोः सिंहस्थयोर्वा यानवन्तः ।।२८।।

जन्म लग्न या पद में शुक्र व चन्द्रमा परस्पर पूर्ण दृष्टि से देखते हों अथवा ये दोनों तृतीय भाव में स्थित हों अथवा ये दोनों एक-दूसरे से ३-११ स्थानों में स्थित हों तो विशेष वाहन-सुख होता है। ऐसा व्यक्ति धनी होने के कारण कई वाहनों वाला अथवा वाहनों से जीविका चलाने

वाला होता है।

यहाँ 'सिंह' शब्द का अर्थ तृतीय स्थान है। स ७, ह ८=८७ ÷१२=शेष ३।

राजसी सुखोपभोग योग

शुक्रकुजकेतुषु वैतानिकाः ॥२६॥

यदि शुक्र, मंगल व केतु ये तीनों आपस में देखते हों,

यदि तीनों एक-दूसरे से तृतीय-एकादश स्थानों में स्थित हों

तो इन योगों में मनुष्य राजचिह्नों से युक्त अर्थात् राजकीय सम्मान प्राप्त राजसी ठाट-बाट वाला होता है।

इस योग की ये स्थितियां हो सकती हैं—

(i) केतु व मंगल को शुक्र देखे।

(ii) केतु व शुक्र को मंगल देखे।

(iii) मंगल व शुक्र को केतु देखे। अथवा तीनों ही परस्पर दृष्टि रखते हों।

(iv) शुक्र से तृतीय में केतु व केतु से तृतीय में मंगल हो।

(v) केतु से या मंगल से तृतीय या तृतीय स्थानों में शेष दोनों हों।

(vi) किसी एक ग्रह से तृतीय में दो ग्रह हों।

(vii) किन्हीं दो ग्रहों से तृतीय में एक ग्रह हो। इत्यादि।

कुछ अन्य राजयोग

स्वभाग्यदारमातृभावसमेषु शुभे राजानः ॥३०॥

आत्मकारक ग्रह से २,४,५ भावों में जो राशियाँ पड़ें वे यदि शुभ ग्रहों की राशियाँ हों अथवा इन भावों में शुभ ग्रह स्थित हों तो मनुष्य राजा होता है।

यह विचार जन्म लग्न से भी किया जाना चाहिए।

कर्मदासयोः पापयोश्च ॥३१॥

आत्मकारक से तृतीय व षष्ठ स्थान का स्वामित्व यदि पापग्रहों को मिला हो अथवा वहाँ दो पापग्रह स्थित हों तो भी राजयोग होता है।

पितृलाभाधिपाच्चैवम् ॥३२॥

लग्नेश और सप्तमेश से २,४,५ भावों में शुभराशि हों अथवा इनसे ३,६ स्थानों में पाप राशि हों तो भी राजयोग समझना चाहिए।

मिश्रेसमाः ॥३३॥

यदि लग्नेश व सप्तमेश से इन पूर्वोक्त भावों में शुभ पापमिश्रित ग्रह हों तो मनुष्य राजा के समान होता है।

दरिद्रा विपरीते ॥३४॥

यदि उक्त स्थानों में आत्मकारक से २,४,५ व ३,६ स्थानों में एवं पूर्वोक्त लग्नेश व सप्तमेश से भी उक्त भावों में विपरीत प्रकार के ग्रह स्थित हों तो मनुष्य दरिद्र होता है। अर्थात् जहाँ शुभ ग्रह बताए हों वहाँ अशुभ ग्रह और जहां अशुभ बताए हैं वहाँ शुभ ग्रह स्थित हों तो उक्त फल समझना चाहिए।

हमारे विचार से सूत्र ३० से आगे जो राजयोग बताए हैं उनमें मनुष्य को धनी ही समझना चाहिए। व्यवहार में ऐसी पचासों कुण्डलियाँ हमने देखी हैं जहाँ ये योग घटते थे पर वे राजा या राजसत्ता प्राप्त व्यक्ति न होकर अच्छी आर्थिक स्थिति वाले लोग थे।

राजमान्य योग

मातरि गुरौ शुक्रे चन्द्रे वा राजकीयाः ॥३५॥

यदि लग्नेश और सप्तमेश से पंचम स्थान में शुक्र या चन्द्रमा स्थित हो तो मनुष्य राजाधिकारी किसी उच्च राजकीय पद पर प्रतिष्ठित होता है।

सेनानायक योग

कर्मणि दासे वा पापे सेनान्यः ॥३६॥

लग्नेश व सप्तमेश से तृतीय स्थान में कोई पापग्रह स्थित हो तो मनुष्य अच्छा सेनापति होता है।

आजकल पुलिस अथवा अन्य अर्द्धसैनिक बलों के अधिपतियों का ग्रहण भी यहाँ करना चाहिए।

महाबुद्धिमान् योग

स्वपितृभ्यां कर्मदासस्थदृष्ट्या तदीशदृष्ट्या मातृनाथदृष्ट्या च धीमन्तः ॥३७॥

इन योगों में मनुष्य बुद्धिमान् होता है—

(i) आत्मकारक से ३,६ स्थानों में स्थित ग्रह आत्मकारक को देखे।

(ii) आत्मकारक से ३,६ स्थानों के स्वामी ग्रह आत्मकारक को देखें।

(iii) आत्मकारक से पंचम स्थान का स्वामी आत्मकारक को देखे।

(iv) इसी प्रकार लग्न से ३,६ भावों में स्थित ग्रह या इनके स्वामी और पंचमेश लग्न को देखें।

(v) आत्मकारक से उक्त भावेश लग्न को या लग्न से उक्त भावेश आत्मकारक को देखे। तब मनुष्य को बुद्धिमान् समझना चाहिए।

सुखी योग

दारेशदृष्ट्या च सुखिनः ॥३८॥

आत्मकारक और लग्न से चतुर्थ स्थान का स्वामी यदि कारक या लग्न को देखे तो मनुष्य सुखी होता है।

दरिद्र योग

रोगेशदृष्ट्या दरिद्राः ॥३९॥

रिपुनाथदृष्ट्या व्ययशीलाः ॥४०॥

आत्मकारक व लग्न से अष्टमेश की दृष्टि इन पर हो तो मनुष्य गरीब होता है।

इनसे द्वादश स्थान के स्वामी की दृष्टि यदि इन पर हो तो मनुष्य खूब व्यय करने वाला होता है।

स्वामिदृष्ट्या प्रबलाः ॥४१॥

लग्न पर लग्नेश की दृष्टि व कारक पर कारकेश की दृष्टि हो तो बताए गए बुद्धिमान् आदि योग अधिक बली हो जाते हैं।

कारावास योग

पश्चाद्रिपुभाग्ययोर्ग्रहसाम्यं बन्धः कोणयो रिपुजाययोः

कीटयुग्मयोर्दाररि:फयोश्च ।।४२।।

लग्न से द्वितीय और द्वादश, पंचम और नवम, षष्ठ और द्वादश, तृतीय और एकादश तथा चतुर्थ और दशम—इन स्थानों में ग्रहों की समान संख्या हो। अर्थात् द्वितीय में एक तो द्वादश में भी एक हो या समान अधिक संख्या वाले हों तो मनुष्य को बन्धन होता है। यहाँ दो-दो भावों के जो युग्म बताए हैं उन्हीं में ग्रह हों तो फल होगा।

इस विषय में हमारा विचार व अनुभव है कि उक्त भाव युग्मों में स्थित ग्रह यदि पापी हों तभी बन्धन योग घटित होता है। हमने अपने **जातकतत्त्व (अखिलाक्षरा)** में वन्धन योगों के प्रसंग में इस सूत्र से सम्बन्धित कई कुण्डलियाँ देकर, अपनी बात को सिद्ध करने का प्रयास किया है। जिज्ञासु पाठक वहाँ से अवश्य अवलोकन कर लें।

नेत्रहानि योग

शुक्राद् गौणपदस्थो राहु : सूर्यदृष्टो नेत्रहा ।।४३।।

लग्न से पंचम स्थान का पद जिस भाव में पड़ता हो, वहीं पर यदि राहु स्थित हो और उसे सूर्य देखता हो तो मनुष्य के नेत्रों का नाश हो जाता है।

इस सूत्र में शुक्र श=५, र=२=२५÷१२=शेष १ (लग्न) का वाचक है। गौण शब्द का अर्थ इसी पद्धति से पंचम भाव है।

श्री एस. एन. राव महोदय ने इस सूत्र की अंग्रेजी टीका में लिखा है कि लग्न के पद से पंचम स्थान में यदि राहु सूर्य से दृष्ट हो तो नेत्र-नाश होता है। यह अर्थ असंगत है। सीधा अर्थ है कि लग्न से पंचम पद अर्थात् लग्न से पाँचवें भाव के पद में राहु हो और उसे सूर्य देखे तो नेत्र-नाश होगा। अतः हम श्री राव साहब के अभिमत अर्थ को संगत नहीं मानते।

एक बात और कहना चाहते हैं। शुक्र शब्द का अर्थ यदि लग्नपरक न लेकर ग्रह वाचक मानें तो इसका अर्थ होगा—

'जन्म लग्न में शुक्र जहाँ स्थित हो उससे पंचम स्थान का पद यदि

राहु युक्त व सूर्य से दृष्ट हो तो मनुष्य के नेत्र नष्ट हो जाते हैं।'

हम इस अर्थ को भी वैकल्पिक रूप में स्वीकार करते हैं। कारण यह है कि शुक्र नेत्र विचार में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। शुक्र को स्वरूप से काना माना गया है। साथ ही **उत्तरकालामृत** के अनुसार शुक्र का कारकत्व नेत्रों में भी होता है।

ज्योतिस्तत्त्व प्रकरण २४ का श्लोक २१२ भी देखिए। यहाँ ग्रन्थकार ने अन्धयोगों की सूची में बताया है—

'...अथांगतोऽच्छादुत पन्नगे मतौ मार्तण्डदृष्टे ॥' (ज्यो. तत्त्व)

'अंग (लग्न) और शुक्र (अच्छ) से मति (पंचम) में यदि राहु (पन्नग) हों और सूर्य से दृष्ट हो तो अन्धयोग होता है।'

अतः इस सूत्र के योग का विचार लग्न व शुक्र से पंचम स्थान व पंचम पद में स्थित राहु से करना चाहिए, ऐसा विचार तर्कसम्मत है।

राजसी ठाट-बाट के योग

स्वदारगयोः शुक्रचन्द्रयोरातोद्यं राजचिह्नानि च ॥४४॥

आत्मकारक से चतुर्थ स्थान में यदि शुक्र व चन्द्रमा स्थित हों तो मनुष्य के पास आतोद्य (गाजे-बाजे) व अन्य राजसी चिह्न (शाही सवारी, मेडल अथवा राजकीय प्रशस्ति आदि) होते हैं।

इति पं. सुरेशमिश्र विरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्र भाष्ये प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥

चतुर्थः पादः

उपपद (द्वादश स्थान का पद) से फल विचार

उपपदं पदं पित्रनुचरात् ।।१।।

लग्न से द्वादश स्थान का पद ही उपपद कहलाता है। यहाँ पितृ शब्द से लग्न भाव का आशय है और लग्न का अनुचर अर्थात् पिछला भाव द्वादश भाव होता है।

सामान्यतः लग्न का पद मुख्य होता है तथा यह द्वादश भावपद गौण अथवा उपपद कहलाता है।

उपपद के विषय में **पाराशर होरा** में भी कहा गया है—

'तनोरनुचराद्यत् स्यादुपारूढं प्रचक्षते ।
तदेवोपपदं नाम तथा गौणपदं स्मृतम् ।। (बृ. पा. उपपद. श्लोक २)

लेकिन लग्न का अनुचर भाव कौन-सा है? इस विषय में मतभेद है। पाराशर के व्याख्याकारों ने अनुचर शब्द का अर्थ पंचम भाव किया है। हमें इसका कोई आधार प्रतीत नहीं होता है। पितृ शब्द से तो जैमिनीय सूत्रों में प्रायः लग्न का ही ग्रहण है। यही बात पाराशर होरा के 'तनो' पद से भी स्पष्ट है। शेष बचा अनुचर शब्द। इसकी व्याख्या कटपयादि से यदि लें तो—

अ=०, न=७, च=६, र=२=००६२ अर्थात् २६००÷१२= शेष ८ आता है। यदि दोनों शून्यांकों को छोड़ दें तो शेष २ अर्थात् द्वितीय स्थान आता है। इन दोनों भावों के पदों को सीधे किसी ने भी उपपद नहीं माना। यदि व्युत्क्रम मानकर विषभ लग्न में पिछला भाव वास्तविक द्वितीय भाव को मानें तो ऐसा हो सकता है।

जैमिनीय सूत्रों के प्राचीन टीकाकारों ने लग्न का अनुचर अर्थात्

पिछला भाव अर्थात् १२वाँ भाव माना है।

और प्राचीनतर टीकाकारों ने 'सप्तमात्पदमुपपदं' कहकर सप्तम के पद अर्थात् जायापद को उपपद माना है। अस्तु, विवादास्पद विषय बन गया है।

पाराशर के व्याख्याकारों ने पित्रनुचरात् का शब्दार्थ लिया है पिता का अनुचर अर्थात् पुत्र।

सप्तम भाव वाले आशय को तो इस आधार पर हम ग्रहण नहीं करते कि यही अर्थ सूत्रकार को अभीष्ट होता तो वे सूत्र शैली के अनुरूप 'पित्रनुचर' पद के स्थान पर 'लाभ' पद का प्रयोग करते।

पंचम भाव वाले अर्थ को हम पाराशर के व्याख्याकारों का भ्रम मानते हैं। अतः हमारे विचार से बारहवें भाव के पद को ही उपपद मानना चाहिए।

गौण शब्द का अर्थ कटपयादि से पंचम भाव हो जाता है लेकिन तब जैमिनिमुनि **'उपपदं पदं पितृगौणात्'** कहते। यह सूत्र पूर्वपेक्षा संक्षिप्त व स्पष्ट होता। किन्तु जैमिनि को पंचम या सप्तम भाव वाला अर्थ अभीष्ट ही नहीं है।

इस सब विवाद से पाठकों को भ्रमित नहीं होना चाहिए। जैमिनि मुनि का स्पष्ट मत है कि प्रत्येक भाव के पद हो सकते हैं। इन सब में लग्न का पद मुख्य होता है। इसी प्रकार किसी भी भाव का उपपद हो सकता है। उपपद का विचार प्रत्येक भाव के व्ययभाव से करें। जैसे लग्न का उपपद व्ययेश के आधार पर, धनभाव का उपपद उससे बारहवें अर्थात् लग्न के स्वामी के आधार पर, स्त्रीभाव का पद षष्ठेश के आधार पर इत्यादि प्रकार से जाना जाएगा।

पद 'किसी भी विचारणीय भाव के भावेश की अधिष्ठित राशि से उतने ही भाव आगे होता है, जितने भाव आगे भाव से भावेश होता है।'

इसी प्रकार किसी भी विचारणीय भाव से पिछले (बारहवें) भाव का स्वामी उस व्यय भाव से जितने आगे हो, भावेश से उतने आगे ही उपपद होगा। यह सिद्धान्त निर्भ्रान्त है। इस विषय में **उत्तरकालामृत** का उद्धरण देखिए—

'एवं रिःफगृहाद् भवेद् उपपदं तत्रैव सौम्ये तदा ।'
तज्जाया हि सुरूपिणी गुणवती सा स्याच्चिरं जीविनी ।।'

(अ. ४. श्लोक ३९-४०)

'जिस भाव का उपपद जानना हो तो उसके रिःफ भाव (द्वादश भाव) का विचार करना चाहिए । इस उपपद में यदि शुभग्रह हो तो मनुष्य की पत्नी गुणवती, सुन्दर व लम्बी आयु वाली होती है । इसी के श्लोक ३९ के अनुसार स्त्री का विचार सप्तम भाव के पद व लग्न के उपपद से करना चाहिए । जिस प्रकार लग्न के पद को संक्षेप में पद कहते हैं उसी तरह लग्न के उपपद को भी संक्षेप में केवल उपपद कहते हैं । जब इनके साथ भाव विशेष का नामग्रहण हो तो उस भाव से सम्बन्धित पद या उपपद समझना चाहिए । विषम राशि लग्न हो तो उसका पिछला भाव लग्न से द्वितीय भाव होगा । सम लग्न में वास्तविक द्वादश भाव का ग्रहण करना अभीष्ट है ।

उपपद से स्त्री का विचार

तत्र पापस्य पापयोगे प्रव्रज्या दारनाशो वा ।।२।।

उपपद में या उपपद से द्वितीय स्थान में पापग्रह की राशि दृष्टि, युति या स्थिति हो तो मनुष्य संन्यासी होता है अथवा इसकी स्त्री की शीघ्र ही असमय में मृत्यु हो जाती है ।

नात्र रविः पापः ।।३।।

इस प्रसंग में सूर्य को पापग्रह नहीं माना जाएगा । यदि सूर्य उपपद से द्वितीय स्थान में या उपपद में पापराशि में भी स्थित हो तो भी उक्त फल नहीं होगा ।

शुभदृग्योगान्न ।।४।।

उपपद से यदि पूर्वोक्त योग बनता भी हो परन्तु उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि युति हो तो भी उक्त पत्नी-नाश आदि फल नहीं होता है ।

पत्नीनाश का एक अन्य योग

नीचे दारनाशः ।।५।।

उपपद में या इससे द्वितीय स्थान में कोई ग्रह स्व नीच राशि में स्थित

हो तो पत्नी का नाश हो जाता है।

उत्तरकालामृतकार इस स्थिति में दो पत्नियों का नाश मानते हैं। पाराशर होरा में नीचराशि के साथ नीच नवांश का भी ग्रहण है।

बहुपत्नी योग

उच्चे बहुदारः ॥६॥

उपपद में या इससे द्वितीय स्थान में उच्चराशि या उच्च नवांश में ग्रह स्थित हो तो मनुष्य की कई पत्नियाँ होती हैं।

युग्मे च ॥७॥

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में मिथुन राशि स्थित हो तो भी मनुष्य को कई पत्नियाँ होती हैं।

बुढ़ापे में विधुर होने का योग

तत्र स्वामियुक्ते स्वर्क्षे वा तद्धेतावुत्तरायुषि निर्दारः ॥८॥

उस उपपद में यदि उपपद का स्वामी ग्रह स्थित हो तो मनुष्य प्रौढ़ावस्था के उपरान्त पत्नी से रहित हो जाता है। यदि उपपद भाव का स्वामी ग्रह कहीं भी स्वक्षेत्र में हो तो भी मनुष्य की पत्नी का मरण वृद्धावस्था में हो जाता है।

उपपद से ससुराल का विचार

उच्चे तस्मिन्नुत्तमकुलाद् दारलाभः ॥९॥
नीचे विपर्ययः ॥१०॥

उपपद या उससे द्वितीय स्थान के स्वामी ग्रह यदि अपनी उच्च राशि में स्थित हों तो मनुष्य का विवाह उत्तम कुल में होता है। यदि उक्त दोनों ग्रहों में से कोई नीच राशि में स्थित हो तो मनुष्य का विवाह अच्छे कुल की कन्या से नहीं होता है।

सुन्दर स्त्री का योग

शुभसम्बन्धात् सुन्दरी ॥११॥

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में शुभग्रहों की दृष्टि, युति आदि से सम्बन्ध हो तो मनुष्य की पत्नी सुन्दर होती है।

बदनामी से पत्नी-त्याग का योग

राहुशनिभ्यामपवादात्यागो नाशो वा ।।१२।।

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में राहु-शनि का योग या दृष्टि हो तो लोकापवाद के कारण मनुष्य अपनी पत्नी का त्याग कर देता है अथवा इसी कारण उसकी पत्नी का नाश हो जाता है।

इस विषय में **भगवान श्रीराम** की जन्म-कुण्डली जो ज्योतिष जगत् में बहुत प्रसिद्ध है, यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। इनकी जन्मकुण्डली जितनी प्रसिद्ध है, उससे कहीं अधिक यह तथ्य सुविदित है कि इन्हें लोकापवाद के कारण अपनी पत्नी सीता का परित्याग करना पड़ा था। इस कुण्डली में यह योग पूर्णतया विद्यमान है।
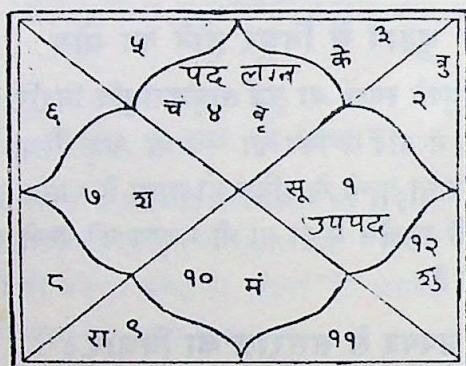
लग्न से द्वादश स्थान का स्वामी बुध, द्वादश से द्वादश में स्थित है। अतः बुध से द्वादश स्थान तक गिनने पर 'उपपद' दशम स्थान में पड़ता है। उपपद से द्वितीय स्थान में बुध की स्थिति व वहाँ सूर्य की शुभ स्थिति (उपपद में रवि शुभ होने के कारण) इनकी पत्नी की सुन्दरता की द्योतक है।

साथ ही उपपद पर शनि की पूर्ण दृष्टि है। राहु की पंचम पूर्ण दृष्टि भी उपपद पर है। अतः सूत्र में बताया गया योग यहाँ पूर्णतः घटित होता है। किन्तु राशि दृष्टि से योग घटित नहीं होता है।

स्त्री रोग विचार

शुक्रकेतुभ्यां स्वतप्रदरः ।।१३।।

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में शुक्र व केतु की दृष्टि व स्थिति आदि हो तो मनुष्य की पत्नी को रक्त प्रदर (Leucorrhoea) का रोग होता है।

हड्डी में रोग का योग

अस्थिस्रावो बुधकेतुभ्याम् ॥१४॥

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में बुध व केतु की दृष्टि या स्थिति हो तो मनुष्य की पत्नी की हड्डियों में स्राव हो जाता है। अर्थात् हड्डियों की टी० बी० या कैंसर के कारण हड्डियों का पिल-पिला हो जाना अथवा हड्डियों की मज्जा (Bone Marrow) के विकार आदि रोग हो जाते हैं।

अस्थिज्वर का योग

शनिरविराहुभिरस्थिज्वरः ॥१५॥

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में शनि, सूर्य व राहु की दृष्टि या युति हो तो जातक की पत्नी को हड्डियों का बुखार होता है। कदाचित् पोलियो पूर्व बुखार तथा अन्य विषाणु संक्रमणजन्य बुखार (Virus Fever) अथवा (Dengue) आदि से तात्पर्य है।

मोटापा होने के योग

बुधकेतुभ्यां स्थौल्यम् ॥१६॥

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में बुध और केतु की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य की पत्नी को मोटापा होता है।

नाक में रोग के योग

बुधक्षेत्रेमन्दाराभ्यां नासिकारोगः ॥१७॥

कुजक्षेत्रे च ॥१८॥

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में मेष, वृश्चिक, मिथुन या कन्या राशि में शनि और मंगल हों तो मनुष्य की पत्नी को नाक में रोग होता है।

नासिका रोगों में जुकाम, नजला, पीनस, नकसीर आदि का ग्रहण करना चाहिए।

कर्णरोग का योग

गुरुशनिभ्यां कर्णरोगो नरहका च ॥१९॥

उपपद या उससे द्वितीय स्थान में बुध या मंगल की राशि में बृहस्पति और शनि की दृष्टि या युति हो तो मनुष्य की स्त्री को दाँतों में रोग होता है और नाड़ी विकार (अर्थात् गुदाद्वार से आँत के मुंह का बाहर आना) होता है।

दंतरोग का योग

गुरुराहुभ्यां दन्तरोगः ॥२०॥

इसी प्रकार पूर्वोक्त स्थानों में बुध या मंगल की राशि में बृहस्पति और राहु की दृष्टि या युति हो तो मनुष्य की पत्नी को दाँतों में रोग होता है।

लँगड़ापन और वायुविकार का योग

शनिराहुभ्यां कन्यातुलयोः पंगुर्वातरोगो वा ॥२१॥

इन्हीं पूर्वोक्त स्थानों में कन्या या तुला राशि में शनि और राहु स्थित हों तो मनुष्य की पत्नी को लँगड़ापन होता है अथवा वह वायुरोग से पीड़ित होती है।

शुभदृग्योगान्न ॥२२॥

इन पूर्वोक्त रोग योगों में यदि रोगकारक ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो उक्त रोगादि नहीं होते हैं।

सप्तमांशग्रहेभ्यश्चैवम् ॥२३॥

जिन शुभ या अशुभ योगों का उल्लेख पहले इस पाद में किया गया है उन सभी योगों का विचार इनसे भी करना चाहिए—

(i) उपपद से सप्तम राशि (ii) उपपद से अष्टम राशि (iii) उपपद से सप्तम भावगत नवांश (iv) उपपद से सप्तमेश (v) उपपद से सप्तम भावगत नवांशेश।

पाराशर होरा शास्त्र में उक्त विषय का निरूपण करते हुए बताया गया है कि यह मत ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य नारद आदि ने प्रकट किया है—

एवमेव फलं ज्ञेयमित्याहुर्नारदादयः ।। (पा० हो० उपपद० श्लो० २४)

सन्तानहीन योग

बुधशनिशुक्रे चानपत्यः ।।२४।।

उपपद से सप्तम, अष्टम भाव में, सप्तमगत नवांश में बुध शनि और शुक्र की राशि या योग हो तो दम्पति सन्तानहीन होते हैं।

बहुत पुत्रों का योग

पुत्रेषु रविराहुगुरुभिर्बहुपुत्रः ।।२५।।

उक्त पांचों भाव व ग्रहों से नवम स्थानों में यदि कहीं सूर्य, राहु व बृहस्पति की दृष्टि या युति हो तो मनुष्य को बहुत से पुत्र होते हैं।

जैमिनीय सूत्रों के प्राचीन टीकाकार पं० नीलकण्ठ दैवज्ञ एवं अंग्रेजी टीकाकार श्री सूर्यनारायण राव महोदय ने इस सूत्र में पुत्र शब्द से पंचम भाव का ग्रहण किया है, यह अर्थ भ्रमपूर्ण है। मुनिसम्मत अर्थ नवम भाव है। पुत्र शब्द का अर्थ कटपयादि से नवम भाव ही आता है तथा पाराशर होरा में भी उक्त स्थिति में नवम भाव का ही ग्रहण है—

'उक्तेभ्यो नवमे विप्र ! शनि शुक्र (चंद्र) बुधा यदि ।
अपुत्रता तथार्कज्य राहुभिर्बहुपुत्रता ।। (पा० हो० वही श्लोक)

एक पुत्र होने का योग

चन्द्रेणैकपुत्रः ।।२६।।

उपपद से सप्तम, अष्टम भाव से, सप्तम गत नवांश से, सप्तमेश व सप्तम नवांशेश से नवम स्थान में यदि चन्द्रमा स्थित हो, और किसी ग्रह की युति या दृष्टि न हो तो मनुष्य को एक ही पुत्र प्राप्त होता है।

विलम्ब से पुत्र-प्राप्ति योग

मिश्रे विलम्बात्पुत्रः ।।२७।।

उपपद से सप्तम, अष्टम, सप्तमगत नवांश, सप्तमेश, सप्तमगत नवांश और इन पाँचों से नवम स्थानों में यदि पूर्वोक्त योगों में से सन्तान हीन योग भी हों और साथ में सन्तान होने के योग भी हों तब इस स्थिति में एक ही पुत्र होता है तथा वह भी विलम्ब से प्राप्त होगा, ऐसा फलादेश करना चाहिए।

दत्तक पुत्र का योग

कुजशनिभ्यां दत्तपुत्रः ॥२८॥

पूर्वोक्त पाँचों से नवम स्थानों में यदि मंगल व शनि की स्थिति हो तो मनुष्य को किसी दूसरे की सन्तान को गोद लेना पड़ता है।

ओजे बहुपुत्रः ॥२९॥

युग्मेऽल्पप्रजः ॥३०॥

पूर्वोक्त पाँचों से नवम में यदि विषम राशि पड़ती हो तो मनुष्य को बहुत से पुत्र होते हैं।

इन सब नवम स्थानों में यदि सम राशियाँ पड़ें तो कम सन्तान होती है।

गृहक्रमात्कुक्षितदीशपंचमांशग्रहेभ्यश्चैवम् ॥३१॥

जिस प्रकार जन्म-कुण्डली के बारह भावों का विचार किया ज़ाता है, उसी प्रकार उपपद कुण्डली, उपपदेश कुण्डली, उपपद से पंचम भाव कुण्डली, उपपद से पंचम भावगत नवांश कुण्डली एवं पंचमेश व पंचनवांशेश कुण्डली से भी पुत्रादि का विचार व स्त्री विषयों का विचार करना चाहिए।

भ्रातृनाश योग

भ्रातृभ्यां शनिराहुभ्यां भ्रातृनाशः ॥३२॥

उपपद से व उपपद स्वामी ग्रह से तृतीय व एकादश स्थानों में यदि शनि व राहु की स्थिति आदि हो तो भाइयों का नाश हो जाता है।

शुक्रेण व्यवहिते गर्भनाशः ॥३३॥

यदि उक्त तृतीय व एकादश स्थान में शुक्र हो तो मनुष्य के जन्म से पहले व बाद के गर्भों का नाश होता है।

पितृभावे शुक्रदृष्टेऽपि ।।३४।।

लग्न या लग्न से अष्टम स्थान में भी शुक्र की दृष्टि हो अथवा उपपद व उपपद से अष्टम में शुक्र की दृष्टि हो तो भी मनुष्य की माता के पूर्व व पश्चात् वाले गर्भ नष्ट हो जाते हैं।

बहुत से भाइयों का योग

कुजगुरुचन्द्रबुधैर्बहुभ्रातरः ।।३५।।

उपपद व उपपद स्वामी से तृतीय-एकादश भावों में मंगल, बृहस्पति, चन्द्रमा व बुध स्थित हों तो मनुष्य के कई भाई होते हैं।

कुछ अन्य भ्रातृनाशक योग

शन्याराभ्यां दृष्टे यथा स्वभ्रातृनाशः ।।३६।।

उपपद व उपपद स्वामी से तृतीय में शनि व मंगल की दृष्टि हो तो छोटे भाई का नाश होता है।

इसी प्रकार उक्त दोनों से एकादश स्थान में यदि मंगल व शनि की दृष्टि हो तो बड़े भाई का नाश हो जाता है।

शनिना स्वमातृशेषश्च ।।३७।।

उपपद व उपपद स्वामी से तृतीय व एकादश स्थानों में केवल शनि की दृष्टि हो तो मनुष्य के छोटे व बड़े सभी भाइयों का नाश हो जाता है और वह अकेला ही बचता है।

कई बहनों का योग

केतौ भगिनी बाहुल्यम् ।।३८।।

उपपद व उपपदेश से तृतीय व एकादश स्थानों में यदि केतु स्थित हो तो कई बहनें होती हैं।

उपपद से दाँतों का आकार ज्ञान

लाभेशाद् भाग्यभे राहौ दंष्ट्रावान् ।।३९।।

उपपद से सप्तम स्थान का स्वामीग्रह जहाँ हो उससे द्वितीय स्थान में राहु स्थित हो तो मनुष्य बड़े दाँतों वाला व दाढ़ों वाला होता है।

अटक कर बोलने का योग

केतौ स्तब्धवाक् ॥४०॥

उपपद से सप्तमेश ग्रह की अधिष्ठित राशि से द्वितीय स्थान में यदि केतु स्थित हो तो मनुष्य की वाणी बोलते समय अटक जाया करती है।

इस द्वितीय स्थान में राहु व केतु की स्थिति में वृद्ध वचन विशेष प्रकाश डालता है—

'सप्तमेशाद् द्वितीयस्थे राहौ मूकः खले स्थिते ।
अदन्तोऽधिकदन्तो वा दंष्ट्रायुक्तोऽथवा भवेत् ।।
पवनव्याधिमान् केतौ यद्वा स्यादस्फुटोक्तिमान् ।
तत्र नानाग्रहैर्योगे मिश्रं फलमुदाहृतम् ।' (वृ० का०)

उपपद से सप्तमेश के द्वितीय स्थान में राहु हो तो मनुष्य गूँगा होता है, और कोई पापीग्रह यदि वहाँ स्थित हो तो मनुष्य अधिक दाँतों वाला या दन्तरहित अथवा बड़ी दाढ़ों वाला होता है।

वहीं पर केतु स्थित हो तो मनुष्य को वायु रोग होता है अथवा वह अटक कर बोलने वाला होता है।

इस स्थान में दोनों प्रकार अर्थात् राहु या केतु के साथ अन्य पापग्रह भी स्थित हों तो मिश्रित फल बताया गया है।

कुरूप योग

मन्दे कुरूपः ॥४१॥

उपपद से सप्तमेश के द्वितीय स्थान में शनि होने पर मनुष्य कुरूप होता है।

जातक के शरीर का वर्ण

स्वांशवशाद् गौरनीलपीतादि वर्णाः ॥४२॥

आत्मकारक के नवांश के आधार पर मनुष्य का गौर, कृष्ण व अति गौर आदि वर्ण जानना चाहिए।

इसी प्रकार पुत्र, स्त्री, माता आदि के कारक ग्रह द्वारा अधिष्ठित नवांश के वर्णानुसार इनका वर्ण समझना चाहिए।

वराहमिहिर के मतानुसार लग्न के नवांशेश तुल्य मनुष्य का शरीर वर्ण होता है।

'लग्न नवांशप तुल्य तनुः स्याद् वीर्ययुतग्रहतुल्य तनुर्वा ।
चन्द्रसमेत नवांशक वर्णः कादि विलग्न विभक्तगात्रः ।।'

(बृ० जा० जन्मविधि २३)

'लग्न के नवांशाधिपति के अनुसार अथवा जन्म समय में सर्वाधिक बली ग्रह के वर्णानुसार अथवा चन्द्रमा के नवांशेश के समान जातक का वर्ण जानना चाहिए ।'

जैमिनिमुनि ने आत्मकारक के नवांश के अनुसार वर्ण-निर्णय का निर्देश दिया है । इस विषय में ग्रहों व राशियों के वर्णों का उल्लेख यहाँ पाठकों की सुविधा के लिए कर रहे हैं ।

मेषादि राशियों के वर्ण क्रमशः इस प्रकार हैं—

लाल, सफेद. हरा, श्वेतरक्त, धूम्रपाण्डु (श्वेत-कृष्ण व पीत का मिश्रण) चित्रवर्ण, काला, सोने के समान, पिंगल (भूरा, यूरोपीय देशवासी तुल्य) कर्बुर (कई वर्णों का मिश्रण), पिंगल व स्वच्छकान्ति ।

ग्रहों के वर्ण क्रमशः इस प्रकार हैं—

रक्तश्याम, गौर, रक्तगौर, दूर्वाश्याम, गौर, साँवला व काला । विज्ञ पाठक लग्न, चन्द्र, आत्मकारक व बली ग्रह की नवांश राशि व नवांशेश के वर्णों की तुलना कर जातक के वर्ण का निर्णय कर लें ।

भ्रातृकारक या देवताकारक

अमात्यानुचराद्देवताभक्तिः ।।४३।।

अमात्यकारक से कम अंशादि वाला ग्रह (भ्रातृकारक) देवताकारक कहलाता है । उससे ही मनुष्य के इष्टदेव का निर्णय करना चाहिए । यदि उक्त ग्रह पापी हो तो क्रूर देवता (काली, रुद्र, भैरव आदि) में और शुभ ग्रह हो तो सौम्यदेवता (दुर्गा, विष्णु, कृष्ण) में भक्ति समझनी चाहिए ।

यदि उक्त ग्रह, स्वग्रह स्वोच्च में स्थित हो तो देवता में दृढ़ भक्ति और नीच शत्रु राशिगत हो तो भक्ति के विषय में उसे अस्थिर चित्त वाला बताना चाहिए ।

परजात (जारज) योग

स्वांशे केवलं पापसम्बन्धे परजातः ॥४४॥

नात्र पापात् ॥४५॥

कारकांश लग्न में यदि शुभग्रहों का सम्बन्ध न हो और केवल पापग्रह वहाँ हों तो मनुष्य जार से उत्पन्न होता है।

यदि आत्मकारक ग्रह स्वयं पापी हो तो उससे यह फल नहीं समझना चाहिए।

आशय यह है कि आत्मकारक नवांश में आत्मकारक के अतिरिक्त अन्य पापग्रहों का सम्बन्ध हो तथा शुभग्रहों का सम्बन्ध सिद्ध न होता हो तो मनुष्य को जारजात कहना चाहिए। सम्बन्धी ग्रह इस प्रकार होते हैं—

(i) उक्त स्थान पर पूर्ण दृष्टि रखना।

(ii) उक्त स्थान में स्थित होना।

(iii) आत्मकारक ग्रह की पाप वर्गों में स्थिति।

(iv) आत्मकारक नवांश से केन्द्र त्रिकोण में पापग्रहों की स्थिति।

शनिराहुभ्यां प्रसिद्धिः ॥४६॥

गोपनमन्येभ्यः ॥४७॥

उक्त जारज योग बनाने वाले यदि शनि व राहु हों तो मनुष्य के अवैधानिक जन्म को सब लोग जान जाते हैं। यदि इनके अतिरिक्त पापग्रह योग बनाते हों तो मनुष्य की माता के व्यभिचार को लोग नहीं जान पाते हैं।

शुभवर्गेऽपवादमात्रम् ॥४८॥

उक्त योग कारक ग्रह यदि शुभग्रहों के वर्ग में हों तो मनुष्य की व्यभिचार से उत्पत्ति का झूठा प्रचार होता है, वास्तव में वह अपने सामाजिक मान्यता प्राप्त पिता की ही सन्तान होता है।

कुलमुख्य योग

द्विग्रहे कुलमुख्यः ॥४९॥

कारकांश लग्न में यदि दो ग्रह स्थित हों तो मनुष्य अपने कुल में अग्रणी होता है।

एक तो आत्मकारक रहेगा ही, साथ में यदि दो ग्रह और भी हों तो यह योग होगा। अथवा आत्मकारक के साथ एक ग्रह और हो तो भी पूर्वापेक्षा कम बली योग अवश्य होगा।

इति पं० सुरेश मिश्र कृते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्रभाष्ये प्रथमाध्यायस्य चतुर्थ पादः समाप्तः ॥

॥ समाप्तश्चायं प्रथमोऽध्याय ॥

द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

जातक की आयु का विचार

आयुः पितृदिनेशाभ्याम् ।।१।।

आयु का विचार करते समय मनुष्य के जन्म लग्नेश व अष्टम स्थान से विचार करना चाहिए ।

इस सूत्र में आयु जानने के उपकरणों का निर्देश किया गया है । सूत्र १ एवं सूत्र ५-६ में बताया गया है कि आयु विचार में जन्म लग्नेश व अष्टमेश, जन्म लग्न व होरा लग्न और शनि व चन्द्रमा इन छहों से विचार करना चाहिए ।

दीर्घायु योग

प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम् ।।२।।

लग्नेश व अष्टमेश अथवा शनि-चन्द्र अथवा जन्म होरेश, ये दोनों चर राशि में हों तो दीर्घायु होती है ।

अथवा ये दोनों पर्याय क्रम से स्थिर व द्विस्वभाव राशि में हों अर्थात् स्थिर में लग्नेश और द्विस्वभाव में अष्टमेश अथवा द्विस्वभाव में लग्नेश और स्थिर में अष्टमेश हो तो दीर्घायु समझनी चाहिए ।

मध्यायु योग

प्रथमद्वितीययोरन्त्ययोर्वा मध्यम् ।।३।।

लग्नेश व अष्टमेश दोनों चर व स्थिर में स्थित हों अथवा ये दोनों द्विस्वभाव राशि में स्थित हों तो मनुष्य की मध्यायु होती है ।

अल्पायु योग

मध्ययोराद्यन्तयोर्वा हीनम् ॥४॥

लग्नेश व अष्टमेश ये दोनों स्थिर राशियों में हों अथवा एक चर-राशि में व दूसरा द्विस्वभाव राशि में हो तो अल्पायु समझनी चाहिए।

एवं मन्दचन्द्राभ्याम् ॥५॥

पितृकालतश्च ॥६॥

इसी प्रकार शनि-चन्द्र व लग्न, होरालग्न से भी पूर्वोक्त प्रकार से विचार करना चाहिए। एक प्राचीन टीकाकार ने यहाँ मन्द शब्द से लग्न का भी ग्रहण किया है, अतः लग्न चन्द्र से भी आयु विचार करना चाहिए। ऐसा ही पराशर ने भी कहा है। इस विषय में वृद्ध वाक्य भी है—

'लग्नेशरन्ध्रपत्योश्च लग्नेन्द्वोर्लग्नहोरयोः।
सूत्राण्येवं प्रयुञ्जीत संवादादायुषां त्रये ॥' (वृ. का)

यहाँ 'लग्नेन्द्वो' पद से शनि चन्द्र का भी ग्रहण है। ऐसा प्राचीन मत है। कटपयादि से मन्द शब्द लग्न का वाचक है।

संवादात्प्रामाण्यम् ॥७॥

लग्नेश-अष्टमेश, शनि-चन्द्र, जन्मलग्न-होरालग्न इन तीनों युग्मों से पूर्वोक्त प्रकार से आयुखण्ड का विचार करने पर यदि आयुखण्ड अलग आए अर्थात् किन्हीं दो से एक खण्ड व तीसरे युग्म से अलग खण्ड आया हो तो बहुमत पक्ष को प्रामाणिक समझना चाहिए अर्थात् जो खण्ड दो युग्मों से प्राप्त हो उसका ही ग्रहण करना चाहिए।

विसंवादे पितृकालतः ॥८॥

यदि तीनों युग्मों से तीन अलग-अलग खण्ड प्राप्त होते हों तो लग्न व होरा लग्न से प्राप्त आयुखण्ड को प्रामाणिक समझना चाहिए। लेकिन चन्द्रमा लग्न या सप्तम स्थान में नहीं होना चाहिए।

पितृलाभगे चन्द्रे चन्द्रमन्दाभ्याम् ॥९॥

तीनों प्रकार से तीन खण्ड आते हों और चन्द्रमा लग्न या सप्तम स्थान में हो तो लग्न चन्द्र या शनि-चन्द्र से प्राप्त आयुखण्ड को

प्रामाणिक मानें। यदि चन्द्रमा अन्यत्र हो तो सूत्र ८ के अनुसार आयुखण्ड का निर्णय करें।

यह विषय चक्र द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है—

(लग्नेश-अष्टमेश या शनि-चन्द्र या लग्न-होरा)

दीर्घायु	चर	स्थिर	द्विस्वभाव
	चर	द्विस्वभाव	स्थिर
	चर	स्थिर	द्विस्वभाव
मध्यायु	स्थिर	चर	द्विस्वभाव
	चर	स्थिर	दिस्वभाव
अल्पायु	द्विस्वभाव	स्थिर	चर

यहाँ पर हम अपने पाठकों को एक विशेष बात बताना चाहते हैं। **जैमिनीय पद्यामृत** के रचयिता श्री दुर्गाप्रसाद जी ने दीर्घ, मध्य व अल्प खण्ड में भी क्रमशः श्रेणीनिर्धारण किया है। यह श्रेणीनिर्धारण वृद्धमत व पाराशरमत से अनुमोदित है।

यदि तीनों से एक ही आयुखण्ड आए तो क्रमशः पूर्णमध्याल्प का मान १२० वर्ष, ८० वर्ष व ४० वर्ष होगा।

यदि दो प्रकार से निर्धारण किया हो तो क्रमशः १०८ वर्ष, ७२ वर्ष व ३६ वर्ष होगा।

यदि किसी एक प्रकार से ही आयुनिर्धारण किया हो तो ९६ वर्ष, ६४ वर्ष व ३२ वर्ष होगा। देखिए वृद्धों का वचन है—

'द्वात्रिंशात्पूर्वमल्पायुर्मध्यायुस्ततो भवेत्।
चतुष्षष्ट्या पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम्॥
षट्त्रिंशात्पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततो भवेत्।
द्विसप्तत्याः पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम्॥
चत्वारिंशत्पुरस्तात्तु हीनायुः परिकीर्तितम्।

अशीत्यब्दात् पुरस्तात्तु मध्यायुः परिकीर्तितम् ।।

ततोदीर्घं भवेत्तत्र विंशोत्तर शतात्मकम् ।।' (वृ. का.)

आयु की ये तीन श्रेणियाँ हैं—

(i) अल्पायु ३२ वर्ष, मध्यायु ६४ वर्ष, दीर्घायु ९६ वर्ष या अधिक ।

(ii) क्रमशः ३६ वर्ष, ७२ वर्ष, १०८ वर्ष ।

(iii) क्रमशः ४० वर्ष, ८० वर्ष, १२० वर्ष ।

इस विषय को हमने सविस्तार व सोदाहरण अपने **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य पृ० ३४७ से ३६२** में स्पष्ट किया है। आयु विचार के समस्त प्रकारों का सोदाहरण विवेचन (जैमिनीय मत सहित) हम उक्त अभिनव भाष्य में कर चुके हैं। विशेष व्युत्पत्ति के लिए पाठक उसे देख सकते हैं।

शनि से कक्ष्याह्रास का विचार

शनौ योगहेतौ कक्ष्याह्रासः ।।१०।।

विपरीतमित्यन्य ।।११।।

यदि उपर्युक्त निर्णायक उपकरणों में शनि भी हो तो कक्ष्या का ह्रास हो जाएगा। तब दीर्घायु को मध्य, मध्यायु को अल्प व अल्पायु को हीन समझकर शेष प्रक्रिया करनी चाहिए। अन्य मत से शनि के कारण ह्रास नहीं होता है। तब शनि से प्राप्त खण्ड को ही प्रामाणिक मानना चाहिए। जैमिनि मत आगे सूत्र १२-१३ में बताया गया है।

पहले हमने आयु खण्ड का निर्धारण कर लिया है। अब देखना है कि जिन दो या तीन या एक युग्म के आधार पर खण्ड का निर्णय किया है उनमें शनि है या नहीं। यदि शनि भी होगा तो कक्ष्याह्रास हो जाएगा। तब एक पग पीछे वाली आयु स्वीकार की जाएगी।

इस गहन आयु विषय को समझने के लिए एक उदाहरण लेकर चलते हैं।

जन्म कुण्डली

सो.—९.११°.१५'.००"
मं.—७.१४.१२.००
बु.—९.१५.५४.०० व०
गु.—४.६.०.२५ व०
शु.—१०.१६.२५.००
श.—७.७.४५.००
रा.—७.२३.२०.००
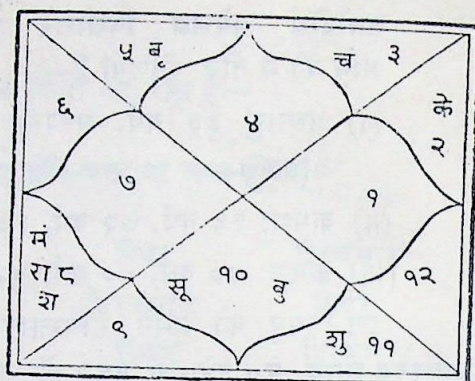
जन्म तिथि—२५.१.१९५६
स्थान—२८°.३९'.उ०.७७°.१४' पू०
समय—५.२४ P.M. भा. स्टै. टा.
लग्न—३.५°.४८'.००"
चन्द्र—२.११°.३०'००"
होरा लग्न—७.१४°.५'.००"
आतमकारक— शुक्र, कुम्भ, नवांश

लग्नेश चन्द्र द्विस्वभाव राशि में व अष्टमेश शनि स्थिर राशि में है। अतः दीर्घायु योग हुआ।

इस कुण्डली में लग्नेश चन्द्र व अष्टमेश शनि होने के कारण शनि-चन्द्र से भी दीर्घायु योग प्राप्त हुआ।

लग्न चर राशि में व होरा लग्न स्थिर राशि में है। अतः मध्यायु योग प्राप्त होता है। यहाँ दो प्रकार से दीर्घायु व एक प्रकार से मध्यायु योग मिला। हमने नियमानुसार बहुमत पक्ष अर्थात् दीर्घायुं खण्ड निर्धारित कर लिया। इस खण्ड में १०८ वर्ष परमायु मानी जाएगी।

लेकिन यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि दोनों युग्मों में शनि का ग्रहण है। अतः कक्ष्याह्रास के नियम सूत्र १० के अनुसार एक पग पीछे चलकर मध्यायु योग माना जाएगा।

अस्तु, कक्ष्याह्रास प्रथम दृष्टि में जितना सरल प्रतीत होता है, वैसा है नहीं; अतः सावधानी से समझना चाहिए। सूत्र ११ के अनुसार

मतान्तर से शनि योग होने पर भी ह्रास नहीं होता। हम सूत्र १० को लेकर ही चलते हैं।

इस विषय को निश्चित करने के लिए हम आगामी अध्याय ३ के पाद २ से सूत्रों का उल्लेख करेंगे।

इस उदाहरण में अन्य ढंग से भी कक्ष्याह्रास सिद्ध होता है—

(i) यहाँ बृहस्पति से चतुर्थ केन्द्र स्थान में शनि व मंगल स्थित हैं। अतः कक्ष्याह्रास होगा। (सू० ३. २. ३.)

(ii) बारहवें स्थान में चन्द्रमा है, अतः कक्ष्याह्रास होगा।
(वही सू० ४)

(iii) चन्द्र से षष्ठ में शनि है, अतः कक्ष्याह्रास होगा। (सू० १७)

अतः कई प्रकार से कक्ष्या-हानि प्राप्त होने पर मध्यायु खण्ड माना जाना चाहिए।

आयु का मूल खण्ड (हानि-वृद्धि के बिना) निर्धारित करने में मुनि ने अ०३, पा०२, सू० ११-१४ में भी एक प्रकार बताया है तथा उसे पराशर का अनुमोदन प्राप्त है। देखिए—

आत्मकारक, लग्न व चन्द्र से जो सप्तम स्थान है, उस सप्तम के त्रिकोण स्थानों को देखें। अर्थात् आत्मकारक आदि से ३-११ भावों को देखें। दोनों में चर राशि हों तो दीर्घ, दोनों में स्थिर हों तो मध्यायु व द्विस्वभाव हों तो अल्पायु होगी।

चर-स्थिर से दीर्घ, स्थिर-द्विस्वभाव से मध्य व चर-द्विस्वभाव से अल्प आयु खण्ड माना जाएगा।

देखिए, लग्न से ३-११ भावों में स्थिर-द्विस्वभाव राशि हैं। अतः मध्यायु खण्ड है।

आत्मकारक शुक्र से तृतीय-एकादश में चर-द्विस्वभाव राशि हैं, अतः अल्पायु खण्ड है।

चन्द्र से तृतीय-एकादश में चर-स्थिर राशि हैं, अतः दीर्घायु योग बना।

यहाँ पर विसंवाद की स्थिति में निर्णय कैसे होगा, इस विषय में मुनि ने कुछ नहीं कहा है। हमारे विचार से इस पाद में बताया गया नियम

ही प्रमुख है। तदनुसार प्रस्तुत उदाहरण में कक्ष्याह्रास के बाद मध्यायु योग स्थिर हुआ।

सूत्राभ्यां न स्वर्क्षतुङ्गगे सौरे ॥१२॥

केवल पापदृग्योगिनि च ॥१३॥

शनि यदि स्वराशि, उच्चराशि में स्थित हो तथा केवल पाप ग्रह उसे देखते हों तो कक्ष्याहानि नहीं होती है।

यदि शनि शत्रुराशि, नीचराशि में पापयुक्त या दृष्ट हो तो कक्ष्या-हानि होगी। ये सूत्र पूर्वोक्त सूत्रों के अपवाद हैं।

प्रकृत उदाहरण में शनि मंगल की राशि में पापयुक्त व केतु से दृष्ट है। अतः कक्ष्याहानि का समर्थन हो जाता है। सब साधक-बाधक प्रमाणों का निरूपण करने से मध्यायु खण्ड निर्णीत होता है।

कक्ष्यावृद्धि ज्ञान

पितृलाभगे गुरौ केवल शुभदृग्योगिनि च कक्ष्यावृद्धिः ॥१४॥

यदि बृहस्पति सप्तम या लग्न में स्थित हो तथा केवल शुभयुक्त या दृष्ट हो, पापी ग्रहों से युत या दृष्ट न हो तो कक्ष्या-वृद्धि होती है।

कक्ष्यावृद्धि की स्थिति में अल्पायु को मध्यायु, मध्यायु को दीर्घायु व दीर्घायु को उत्तमायु मानना चाहिए। इस विषय में श्री दुर्गा प्रसाद ने **जैमिनीयपद्यामृत** में कहा है—

'प्रयत्रयोगकृत्सौरिस्तदा कक्ष्याक्षयो भवेत्।
दीर्घे मध्यं मध्यमे तु हीनमायुरिति स्थितः।
हीने तु तदधो विद्यात् कक्ष्यावृद्धौ तदुत्क्रमः॥

अर्थात् कक्ष्याहानि से ठीक विपरीत कक्ष्या वृद्धि होती है। यदि ह्रास व वृद्धि दोनों प्राप्त हों तो पहले हानि करके बाद में वृद्धि कर ग्रहण करना चाहिए।

इस हानि और वृद्धि के अतिरिक्त भी हानि मुनि ने अगले पाद में बताई है। उदाहरण को समझने के लिए यहाँ उसका संदर्भ भी लिया जा रहा है।

उदाहरण में वृद्धि प्राप्त नहीं है। पाद २ सूत्र २३ के अनुसार लग्न व सप्तम स्थान इस उदाहरण में पापकर्त्तरी में नहीं हैं। अतः कक्ष्याहानि

नहीं है। यह कक्ष्याहानि पूर्वोक्त हानि के अतिरिक्त होगी। सब हानि व वृद्धि को बराबर-बराबर लिखकर देखिए। जो अधिक हो उसे ही मानना चाहिए। ध्यान रखिए, हानि या वृद्धि एक ही बार होगी। ऐसा नहीं होगा कि तीन बार हानि प्राप्त हुई हो तो तीन बार अलग-अलग हानि कर आप दीर्घायु खण्ड को हीनायु या नष्टायु में बदल लें।

अस्तु, लग्न से त्रिकोण व सप्तम से त्रिकोण में पापग्रह हैं। अतः कक्ष्याहानि प्रमाणित हो गई। इस प्रकार ऊहापोह के बाद मध्यायु निश्चित होती है।

इस मध्यायु में निचली सीमा अर्थात् खण्ड ३२ वर्ष है। श्री दुर्गाप्रसाद के मतानुसार (अधिक तर्कसंगत) यहाँ न्यूनतम सीमा ३६ वर्ष होगी। अब ३६ से ७२ वर्षों तक की मध्यायु में जातक को कितनी आयु मिलेगी? इसके लिए स्पष्टीकरण प्रक्रिया अपनायी जाती है। इसका सोदाहरण विवेचन हम **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य** में कर चुके हैं। यहाँ उदाहरण समझने के लिए उपपत्ति प्रदर्शित करते हैं।

लग्नेशचन्द्र (भोग्यांश)	१८°३०००" -
अष्टमेश शनि (")	+२२°१५००"
	४०°४५००"

यहाँ कारक २ होने के कारण इसे २ से भाग दिया तो लब्धि २०°२३'००" आयी। इसे ३२ से गुणा किया तो ६५२"१६' गुणनफल हुआ। इसे पुनः १२ से गुणा किया तो ७८२७ दिन व १२ घड़ी मिली। इनको वर्षादि बनाया तो २१ वर्ष ८ मास २७ दिन व १२ घड़ी फल प्राप्त हुआ। इसे ३२ वर्ष में जोड़ देने पर आयु स्पष्ट ५३ वर्ष ८ मास २७ दिन व १२ घड़ी इस उदाहरण वाले जातक की आयु हुई। यदि दुर्गाप्रसादीय मत से करना हो तो ३६ से गुणाकर ३६ में ही जोड़ना चाहिए। तब इस उदाहरण में स्पष्टायु ६० वर्ष ५ मास १५ दिन ३६ घड़ी सिद्ध होती है। हमारे विचार से यही मत अधिक उपादेय है, क्योंकि पीछे वृद्धमत बता चुके हैं। इस विषय की विशेष व्युत्पत्ति **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य** में देख लें। विषय बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगा। यह स्पष्टीकरण की प्रक्रिया हमने उपलब्ध वृद्ध-वचन के आधार पर बताई है।

'पूर्णमादौ हानिरन्तेऽनुपातो मध्यतो भवेत् ।
राशिद्वयस्य योगार्धं वर्षाणां स्पष्टमुच्यते ।।' (वृ. का.)

मरणकारक दशा का निश्चय

मलिने द्वारबाह्ये नवांशे निधनं द्वारद्वारेशयोश्च मालिन्ये ।।१५।।

'ग्रहराशि के प्रारम्भ में पूर्ण खण्ड व राशि के अन्त में शून्य वर्ष आयु देता है। जब राशि के बीच में ग्रह हो तो अनुपात से आयु निकालें। योगकारक ग्रहों के भोग्यांशों का आधा करने पर वर्षादि स्पष्टायु होती है।

यदि योगकारक चार ग्रह हों तो चौथाई भाग से स्पष्टीकरण होगा।

द्वारराशि और बाह्यराशि—ये दोनों ही यदि पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो इनकी नवांश दशा में मरण हो जाता है।

यदि द्वारराशि और द्वारराशीश ये दोनों स्वयं पापी हों अथवा पापयुक्तदृष्ट हों तो द्वारराशि और द्वारेश की अधिष्ठित राशि के नवांश की दशा में मृत्यु हो जाती है

यहाँ मरण-समय-निर्धारण का एक प्रकार बताया गया है। लेकिन सूत्र का अर्थ बहुत गूढ़ है। इसे समझने के लिए ये पारिभाषिक शब्द समझना आवश्यक है।

द्वारराशि पाकराशि को कहते हैं। जिस समय उक्त प्रकार से आयु की दीर्घमध्यालपता निश्चय कर ली हो तब आयु समाप्ति के आस-पास जिस दशा में दशेशराशि अर्थात् पाकराशि अर्थात् वह राशि जिसकी दशा वर्तमान हो, वह पापयुक्त या दृष्ट हो तो उसकी नवांश दशा में मरण होगा। निष्कर्ष यह है कि जिस राशि की दशा चल रही हो वही राशि द्वारराशि होती है। अर्थात् 'दशाश्रयो द्वारम्' सूत्र के अनुसार दशाधीश राशि को द्वारराशि कहेंगे। द्वारेश पापयुक्तदृष्ट हो तो भी उक्त फल होगा।

बाह्यराशि क्या है ? जन्म समय में वर्तमान सबसे पहली दशा जिस राशि की हो, उस आद्यदशेश राशि से उक्त द्वारराशि तक गिनें। फिर उतनी ही राशि आगे द्वारराशि से गिनें। जहाँ गणना समाप्त हो, वही राशि बाह्य राशि है। माना, जन्म समय कर्क दशा थी। द्वारराशि अर्थात् वर्तमान दशा तुला की है। कर्क से तुला तक गिनने पर चार हुआ, तब

तुला से गिना तो चौथी राशि मकर है। यही मकर राशि बाह्यराशि कहलाएगी।

नवांशदशा भी चरदशा, स्थिरदशा आदि की तरह एक दशाभेद है। लग्न में विषम राशि हो तो लग्न से और समराशि हो तो सप्तम भावगत राशि से इस दशा का प्रारम्भ होता है। इसमें समस्त राशियों के ९-९ वर्ष होते हैं।

द्वारराशि व बाह्यराशि का निर्णय चरदशा या स्थिरदशा के अनुसार करके नवांश दशा-चक्र बना लें। नवांश दशा में जब द्वारराशि आदि की दशा आए तो मारक समय जानना चाहिए।

शुभदृग्योगान्न ॥१६॥

द्वार, बाह्य राशि पर और द्वारेश पर यदि शुभग्रहों की दृष्टि या योग हो तो मृत्यु नहीं होती है।

उक्त नियम का अपवाद

रोगेशे तुंगे नवांशवृद्धिः ॥१७॥

जन्म लग्न से अष्टमेश यदि अपनी उच्चराशि में हो तो सूत्र १५ में बताए गए मृत्यु समय में भी मृत्यु नहीं होती है।

इस स्थिति में नौ वर्ष की आयु और अधिक मिल जाती है।

आशय यह है कि पापयुक्त या पापदृष्ट द्वारराशि और बाह्यराशि की नवांशदशा के प्रारम्भ समय से आगे ९ वर्ष और जीवन शेष रहता है।

तत्रापि पदेशदशान्ते पदनवांशदशायां पितृदिनेशत्रिकोणे वा ॥१८॥

उक्त अपवाद के लागू होने पर पद लग्न के स्वामी की अधिष्ठित राशि की दशा के अन्त में मृत्यु होती है। अथवा लग्नेश और अष्टमेश से त्रिकोण (१,५,९) स्थानों में स्थित राशि की दशा या अन्तर्दशा में मृत्यु होती है। अथवा पद लग्नगत राशि की नवांश दशा में मृत्यु होती है।

प्रकारान्तर से आयु विचार

पितृलाभरोगेशे प्राणिनि कण्टकादिस्थे स्वतश्चैवं त्रिधा ॥१९॥

जन्म लग्न से या आत्मकारक से या अष्टमेशों में से बली ग्रह का

निर्णय कर लें। इन दोनों में से बली ग्रह यदि केन्द्र (१,४,७,१०) स्थानों में स्थित हो तो दीर्घायु होगी।

यदि उक्त बली ग्रह पणफर (२,५,८,११) स्थानों में स्थित हो तो मध्यायु होती है।

यदि उक्त बली ग्रह आपोक्लिम (३,६,९,१२) स्थानों में स्थित हो तो अल्पायु होती है।

यहाँ गणना का क्रम समराशि में उत्क्रम से और विषम में क्रम से होगा।

लग्न में चरराशि है। अतः उत्क्रम से गिनने पर अष्टम स्थान में धनु राशि व स्वामी गुरु है।

सप्तम में चरराशि होने के कारण उत्क्रम गणना से अष्टम स्थान में मिथुन राशि व स्वामी बुध है।

आत्मकारक विषम राशि में है अतः क्रम गणना से अष्टम स्थान में कन्या राशि व स्वामी बुध है।

इनमें से बुध के साथ एक ग्रह है व गुरु अकेला है। गुरु स्थिर राशि में है व बुध चरराशि में है, अतः गुरु बली हुआ। गुरु पणफर में है, अतः मध्यायु योग सिद्ध होता है।

योगात्समे स्वस्मिन् विपरीतम् ॥२०॥

सूत्र १९ से आयुविचार करते समय यह देखना आवश्यक है कि आत्मकारक जन्म लग्न से सप्तम स्थान से नवम स्थान अर्थात् तृतीय में स्थित है या नहीं ? यदि आत्मकारक तृतीय स्थान में हो तो आयु योग को विपरीत समझना चाहिए।

अर्थात् सूत्र १९ से प्राप्त दीर्घायु को उक्त स्थिति में अल्पायु व अल्पायु को दीर्घायु एवं मध्यायु को मध्यायु ही मानकर आगे क्रिया करनी चाहिए।

पूर्वोक्त उदाहरण में आत्मकारक शुक्र जन्म लग्न से अष्टम स्थान में स्थित है। अतः यह अपवाद यहाँ लागू नहीं हुआ। इसी कारण मध्यायु-योग ही सिद्ध हुआ।

बल-विचार

राशितः प्राणः ॥२१॥

इस प्रसंग में अंशादिक बल का ग्रहण न होकर राशि के आधार पर बली ग्रह का निर्णय करना चाहिए।

(i) ग्रहरहित राशि से ग्रहयुक्त राशि को बली समझना चाहिए।

(ii) कम ग्रहयुक्त राशि से अधिक ग्रहयुक्त राशि बली होगी।

(iii) दोनों स्थानों पर समान ग्रह हों तो उच्चादि राशिगत ग्रहों से अधिष्ठित राशि बली होगी।

(iv) चर, स्थिर, द्विस्वभाव राशियाँ उत्तरोत्तर अधिक बली होंगी।

अतः अष्टम भाव की राशि उक्त प्रकार से बली समझी जाएगी। जो राशि बली हो उसके स्वामी से उक्त प्रकार से आयुयोग का निर्धारण करना चाहिए।

अन्य प्रकार से मध्यायु योग

रोगेशयोः स्वत ऐक्ये योगे वा मध्यमम् ॥२२॥

लग्न कारक या सप्तम स्थान से अष्टमेश के साथ यदि आत्मकारक हो अथवा अष्टमेश ही स्वयं आत्मकारक हो तो मध्यायु ही समझनी चाहिए। पूर्वोक्त उदाहरण में एक बुध व अष्टमेश गुरु या शनि हैं। इन दोनों के साथ आत्मकारक नहीं है। अतः यह सूत्र यहाँ लागू नहीं होता है।

कक्ष्याहानि योग

पितृलाभयोः पापमध्यत्वे कोणपापयोगे वा कक्ष्याह्रासः ॥२३॥

लग्न या सप्तम स्थान में यदि पापग्रहों की कर्त्तरी हो, अर्थात् इनके अगले और पिछले भावों में पापी ग्रह हों तो कक्ष्याहानि होती है।

अथवा लग्न या सप्तम से सभी त्रिकोण स्थानों में यदि पापग्रह स्थित हों तो कक्ष्याहानि होती है।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न शुभमध्यगत है। सप्तम स्थान भी पाप-मध्यगत नहीं है। अतः हानि नहीं होगी।

त्रिकोण स्थानों में से केवल पंचम स्थान में पापग्रह हैं। अतः दोनों

त्रिकोणों में पापग्रह न होने के कारण कक्ष्याहानि नहीं होगी। यहाँ भी त्रिकोण स्थान जानने के लिए क्रम व उत्क्रम गणना का नियम लागू होगा।

स्वस्मिन्नप्येवम्। ।२४।।

इसी प्रकार आत्मकारक से भी देखना चाहिए। आत्मकारक की अधिष्ठित राशि या उससे सप्तम राशि पापमध्यगत हो अथवा आत्मकारक से त्रिकोण स्थानों में पापीग्रह हों तो कक्ष्याहानि समझनी चाहिए।

प्रस्तुत उदाहरण में आत्मकारक शुक्र अष्टम स्थान में है। अष्टम स्थान, द्वितीय स्थान एवं अष्टम के त्रिकोण स्थानों में पापग्रह नहीं हैं। इसी प्रकार आत्मकारक से त्रिकोणों में भी कोई पापग्रह नहीं है। अतः कक्ष्याहानि नहीं होगी।

तस्मिन्पापे नीचेऽतुंगेऽशुभसंयुक्ते च ।।२५।।

आत्मकारक ग्रह यदि स्वयं पापी हो या अपनी नीच राशि में हो अथवा अपनी नीच व उच्चराशि के अतिरिक्त राशि में पापयुक्त हो तो भी कक्ष्याहानि होगी।

उदाहरण में आत्मकारक शुक्र शुभ है, नीचगत नहीं है और पापयुक्त भी नहीं है। अतः कक्ष्याहानि नहीं होगी।

कक्ष्याहानि का अपवाद (कक्ष्यावृद्धि)

अन्यदन्यथा ।।२६।।

इन स्थितियों में कक्ष्याहानि न होकर कक्ष्यावृद्धि होती है—

(i) लग्न या सप्तम स्थान शुभमध्यत्व में हो।

(ii) लग्न से सप्तम स्थान से त्रिकोण स्थानों में शुभग्रह हों।

(iii) आत्मकारक शुभमध्यगत हो।

(iv) आत्मकारक से सप्तम स्थान शुभमध्यगत हो।

(v) आत्मकारक व तत्सप्तम स्थान के त्रिकोणों में शुभग्रह हों।

प्रस्तुत उदाहरण में लग्न शुभमध्यगत है, अतः कक्ष्यावृद्धि प्राप्त है। परन्तु कक्ष्या-हानि के नियम भी अंशतः लागू हो रहे हैं। अतः न हानि और न वृद्धि ही की जाएगी।

ध्यान रखें, यदि कोई नियम पूर्णतः घटित नहीं होता अथवा उक्त भाव ग्रहशून्य हों तो हानि या वृद्धि कुछ भी नहीं होगी। अतः मध्यायु निर्विवाद है।

बृहस्पति से हानि-वृद्धि-विचार

गुरौ च ॥२७॥

बृहस्पति से भी पूर्वोक्त भावों में पापग्रह होने पर कक्ष्याहानि व शुभग्रह होने पर कक्ष्यावृद्धि समझनी चाहिए।

उदाहरण में बृहस्पति के आधार पर हानि या वृद्धि प्राप्त नहीं है।

पूर्णेन्दुशुक्रयोरेकराशिवृद्धिः ॥२८॥

लग्न, आत्मकारक व बृहस्पति से उक्त भावों में यदि पूर्ण चन्द्र या शुक्र स्थित हों तो इन्हें शुभग्रह मानकर कक्ष्यावृद्धि नहीं करनी चाहिए। तब केवल राशि के दशा वर्षों के तुल्य वृद्धि होगी।

प्रस्तुत उदाहरण में यदि त्रिकोण स्थानों में से कुछ में पाप योग होने पर कक्ष्याहानि भी मान लें तो भी शुक्र से पंचम में चन्द्रमा है और शुक्र से नवम स्थान खाली है, अतः शुक्र की राशि के दशा वर्ष तुल्य वृद्धि अर्थात् ९ वर्ष प्राप्त है, क्योंकि शनि कुम्भ से दशम स्थान में है।

बृहस्पति से ११वें स्थान में चन्द्रमा होने व तृतीय स्थान खाली होने के कारण बृहस्पति की राशि के दशावर्ष ५ प्राप्त होते हैं। अतः १४ वर्ष की वृद्धि प्राप्त होती है। तब अल्पायु + १४ वर्ष = ५० वर्ष तक आयुमान होगा। लेकिन हमारे विचार से अंशतः हानि प्राप्त है तथा अंशतः ही वृद्धि प्राप्त है। अतः मध्यायु निश्चित है।

शनि की विशेषता

शनौ विपरीतम् ॥२९॥

लग्न, आत्मकारक व बृहस्पति से उक्त स्थानों में यदि शनि स्थित हो तो कक्ष्या-हानि नहीं होती है। तब राशि दशा वर्ष तुल्य हानि होती है।

प्रस्तुत उदाहरण में लग्न से त्रिकोण में शनि है। शनि की दोनों राशियों में तीन ग्रह हैं, अतः शनि मंगल की अपेक्षा राशि बली है। इसी कारण कक्ष्याहानि सिद्ध नहीं होती है। तब लग्न की राशि दशावर्ष अर्थात् केवल ११ वर्ष की हानि प्राप्त है। सूत्र २८ से १४ वर्ष की वृद्धि प्राप्त है। अतः मध्यम योग मानने में कोई कठिनाई नहीं है।

स्थिर दशा से मरण समय विचार

स्थिरदशायां यथाखण्डं निधनम् ॥३०॥

पूर्वोक्त प्रकार से दीर्घ, मध्य या अल्प आयु खण्ड निश्चित कर लें। यदि आयुखण्ड से पूर्व मरण लक्षणों से युक्त (देखें सूत्र १५-१००) राशि की स्थिर दशा आ जाए तो मृत्यु न होकर केवल कष्ट होता है।

यदि आयुखण्ड के भीतर मरण-लक्षणयुक्त राशि की स्थिर दशा आ जाए तो उस दशा में मृत्यु हो जाती है।

इसके लिए एक सरल प्रकार बता रहे हैं। जन्म कुण्डली में जिस राशि के आगे-पीछे या जिस राशि में पाप ग्रह हों उसे और जिस राशि से ५,६,८,१२ स्थानों में पापग्रह हों उसे एकत्र लिख लें। तब उन राशियों की स्थिर दशा आयुखण्ड में जब आए तब मृत्यु कहनी चाहिए। जैमिनि-मुनि ने मरण समय का विचार ब्रह्मग्रह, महेश्वरग्रह व रुद्रग्रह के आधार पर भी किया है जो आगे यथाप्रसंग बताया जाएगा।

प्रस्तुत उदाहरण में वृश्चिक, मकर व वृष– ये तीन राशियाँ पापयुक्त हैं। इनमें से वृश्चिक व वृष पर क्रमश: बृहस्पति व शुक्र की त्रिपाद दृष्टि है। इन दोनों में शनि की स्थिति व दृष्टि भी है और आयु विचार में शनि को विशेष अशुभ नहीं माना जाता है। अत: निश्चय हुआ कि मकर राशि मरण लक्षण युक्त है।

चर दशा का साधन हम अ० १ पा० १ में बता चुके हैं। स्थिरादि दशा का ज्ञान आगे बताया जाएगा। यहाँ केवल संकेत मात्र कर रहे हैं। ब्रह्मग्रह की अधिष्ठित राशि से शुरू कर १२ राशियों की स्थिर दशा होती है। इसमें-चर-स्थिर द्विस्वभाव भेद से क्रमश: ७,८,९ वर्ष दशा के होते हैं। ब्रह्मग्रह क्या है ?

(i) लग्न या सप्तम से ६,८,१२ स्थानों के राशीशों में जो विषम राशि में हो।

(ii) अथवा लग्न से सप्तम एवं सप्तम से द्वादश इन दोनों खण्डों में जो विषम राशिगत हो।

(iii) कई ब्रह्मग्रह सिद्ध हों तो बली का ग्रहण करें।

प्रस्तुत उदाहरण में बुध ब्रह्मा सिद्ध होता है। अत: स्थिर दशा मकर (बुधाधिष्ठित राशि) से चलेगी। आगे देखें सूत्र २/१/५२ का भाष्य।

स्थिरदशा चक्र (उदाहरण)

दशेश	म.	धनु.	वृ.	तु.	कन्या	सि.	कर्क	मि.	वृ.	मेष.	मीन	कुम्भ
वर्ष	७	९	८	७	९	८	७	९	८	७	९	८
जन्मतिथि २५-१-१९५६	२५-१-१९६३	२५-१-१९७२	२५-१-१९८०	२५-१-१९८७	२५-१-१९९६	२५-१-२००४	२५-१-२०११	२५-१-२०२०	२५-१-२०२८	२५-१-२०३५	२५-१-२०४४	२५-१-२०५२

यहां वृश्चिक व मकर में पापग्रह हैं। सिंह में गुरु पापतुल्य है। कुम्भ में शुक्र भी पापवत् है। मिथुन में चन्द्र भी पापवत् है। अतः मकर, वृश्चिक, सिंह, कुम्भ, मिथुन, कन्या मरण-लक्षण युक्त हुईं।

आयु योग पहले निश्चित हो चुका है। उसकी ऊपरी सीमा ७२ वर्ष है। अतः १९५६ + ७२ = २०२८ ई० से पूर्व मृत्यु होगी। आयु स्पष्ट ५३ वर्ष थी। अतः १९५६ + ५३ = २००९ के बाद मृत्यु होगी। अतः २००९ से २०२८ के बीच जो मारक राशि हो उसमें जव मारक अन्तर्दशा होगी तो मृत्यु समझी जाएगी। ऐसी दशा मिथुन व वृष की सिद्ध होती है। मिथुन में चन्द्रमा पाप है। इससे अष्टम में पापग्रह हैं। वृष से द्वादश व त्रिकोण में पाप ग्रह हैं। अतः मिथुन के पक्ष में अधिक बल हुआ।

इससे पूर्व की मारक दशाओं में कष्ट बताना चाहिए। वृश्चिक दशा के पूर्वार्ध में यह व्यक्ति काफी शारीरिक कष्ट भोग चुका है।

मृत्युकारक दशा के निश्चयात्मक विवेक के लिए हमारे **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य का पृ० ३९६-४४७** का भाग भी पढ़ें।

तत्रर्क्षविशेषः ॥३१॥

मृत्यु समय का निर्धारण करने में राशि की ही विशेष महत्ता होती है। अर्थात् राशियोग से प्राप्त कष्टयोग अवश्य फलित होता है।

मरण-लक्षणयुक्त राशि का ज्ञान

पापमध्ये पापकोणे रिपुरोगयोः पापे वा ॥३२॥

जो राशि पाप मध्य में हो अथवा जिस राशि से त्रिकोण, अष्टम व द्वादश स्थानों में पाप ग्रह हों उस राशि की दशा में मृत्यु होती है।

क्षीण चन्द्र व शुक्र का योगदान

तदीशयोः केवलक्षीणेन्दुशुक्रदृष्टौ वा ॥३३॥

द्वादशेश और अष्टमेश पर यदि क्षीण चन्द्र और शुक्र की दृष्टि हो तथा अन्य ग्रह उन्हें न देखते हों तो द्वादश व अष्टम स्थानगत राशि ही मारक होती है।

मरणदशा में मृत्यु समय परिज्ञान

तत्राप्याद्यर्क्षारिनाथदृश्य नवभागाद् वा ॥३४॥

पूर्वोक्त प्रकार से मरण लक्षणयुक्त राशि का निर्णय कर आयुखण्ड को दृष्टि में रखकर मृत्युकारक दशा का निर्देश करना चाहिए। लेकिन एक राशि की दशा के वर्षों का मान तो अधिकतम बारह वर्ष हो सकता है, तब मरण समय का निर्णय करने के लिए सूत्र लिखा है।

जितनी राशियों में मरण लक्षण मिलते हों, उनमें सबसे प्रथम दशा वाली राशि का स्वामी ग्रह और उस दशा राशि से अष्टम राशि का स्वामी ग्रह—ये दोनों नवांश कुण्डली में जिस राशि को देखते हों, उसी राशि की अन्तर्दशा जब मरण कारण दशा में आएगी तो मृत्यु कहनी चाहिए।

मरणदशा निर्णय का दूसरा प्रकार (रुद्रग्रह)

पितृलाभभावेशप्राणी रुद्रः ॥३५॥

जन्म लग्न से अष्टम और सप्तम भाव से अष्टम का विचार करें। अर्थात् जन्म लग्न विषम हो तो जन्म कुण्डली के २,८ भावों को देखें। इन भावों के स्वामी ग्रहों में जो ग्रह जैमिनिमत से बली हो, वही ग्रह रुद्र संज्ञक होता है। यदि लग्न समराशि हो तो ६,१२ स्थानों को देखें।

अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥३६॥

उक्त द्वितीयेश और अष्टमेशादि में से जो ग्रह निर्बल हो परन्तु उसे पापीग्रह देखते हों तो वह निर्बल होता हुआ भी रुद्र संज्ञक होगा।

आशय यह है कि उक्त दोनों भावेशों में से जो बली हो वह निर्विवाद रूप से रुद्र ग्रह है। यदि निर्बल को पापग्रह देखते हों तो वह भी रुद्र ग्रह बन जाएगा। इस प्रकार दो रुद्र हो सकते हैं।

रुद्रग्रह से मृत्यु समय का निर्णय

प्राणिनि शुभदृष्टे रुद्रशूलान्तमायुः ॥३७॥

बलवान् रुद्रग्रह को यदि शुभग्रह देखते हों तो उस रुद्रग्रह की अधिष्ठित राशि से १,५,९ राशियों की दशा में मृत्यु होती है। आशय यह है कि अल्पायु योग हों तो प्रथम दशा, मध्यायु हो तो पंचम दशा, व दीर्घायु हो तो नवम दशा मरणकारक होगी। क्रम व उत्क्रम गणना का अवश्य ध्यान रखें। अथवा इनमें से कोई भी दशा मारक होगी।

तत्रापि शुभयोगे ॥३८॥

द्वितीय निर्बल रुद्र के साथ यदि शुभ ग्रह हों तो भी इस रुद्र से १,५,९ राशि-दशा मरणकारक होगी।

बली रुद्र शुभदृष्ट होकर तथा निर्बल रुद्र शुभयुक्त होकर अपनी अधिष्ठित राशि से १,५,९ राशि-दशा में मृत्यु देते हैं।

प्रस्तुत उदाहरण में चर लग्न में सप्तम से द्वितीयेश गुरु व अष्टमेश बुध है। गुरु की अपेक्षा बुध की राशि में अधिक ग्रह होने के कारण बुध बली है। अतः बुध बली रुद्र है।

बलवान् रुद्र ग्रह पर केवल शुभ बृहस्पति की दृष्टि है। यहाँ दृष्टि राशियों के आधार पर ली गई है। अतः बुध की अधिष्ठित मकर से पाँचवी (उत्क्रम) राशि कन्या की दशा में मृत्यु सम्भावित है।

निर्बल रुद्र बृहस्पति के ऊपर बुध की दृष्टि है। अतः सिंह से पंचम अर्थात् धनु राशि की दशा में मृत्यु सम्भव है। यह बात घटित होती प्रतीत नहीं होती, क्योंकि पहले मध्यायु योग आ चुका है। अतः नवीं मेष दशा मारक होगी। लेकिन यह समय बीत चुका है।

व्यर्क पापयोगेन ॥३९॥

यहाँ रुद्र ग्रह के साथ पाप ग्रह होने पर मृत्यु नहीं बताई है, अर्थात् रुद्र को शुभग्रह देखें तो मृत्यु होती है। इस प्रसंग में सूर्य को शुभ माना जाएगा। अर्थात् सूर्य यदि रुद्र पर दृष्टि रखे या उसके साथ हो तो सूर्य यहाँ शुभ होने के कारण तदनुसार मारक दशा का निर्णय होगा।

उदाहरण में बुध के साथ सूर्य है, अतः बुध से पंचम दशा में मृत्यु सम्भावित होगी। वह कन्या दशा है।

मन्दारेन्दुदृष्टे शुभयोगाभावे पापयोगेऽपि वा शुभदृष्टौ वा परतः ।।४०।।

यहाँ तीन योग बताए जा रहे हैं—

(i) रुद्र ग्रह को शनि, मंगल व चन्द्र देखें और रुद्र के साथ कोई भी शुभ ग्रह न हो।

(ii) रुद्र को मंगल, चन्द्र, शनि देखें और उसके साथ पापयोग हो।

(iii) रुद्र को मंगलादि ये तीनों ग्रह देखें और उस पर शुभग्रहों की दृष्टि भी हो।

यदि इनमें से एक भी सम्पूर्ण योग हो तो रुद्रशूल से आगे आयु जाती है। सूर्य, मंगल, शनि, राहु क्रूर व गुरु, केतु, शुक्र, बुध शुभ हैं। इनमें भी शुभ राशिगत या अशुभ राशिगत भेद से शुभाशुभत्व का विवेक होता है। इनमें से कोई भी एक सम्पूर्ण योग होने पर आयु रुद्रशूल से अधिक होती है। अर्थात् तब रुद्राधिष्ठित राशि से १,५,९ राशि की दशा में मृत्यु न होकर और आगे तक जीवन रहता है।

उदाहरण कुण्डली में यह नियम लागू नहीं होता है।

प्रथम राशि दशा में मृत्यु योग

रुद्राश्रयेऽपि प्रायेण ।।४१।।

क्रिये पितरि विशेषेण ।।४२।।

कभी-कभी रुद्र से अधिष्ठित राशि की दशा में भी मृत्यु हो जाती है। अर्थात् किन्हीं कारणों से रुद्राश्रित राशि प्रायः बली मारक होती है। परन्तु अन्यथा अधिक आयु सिद्ध होती हो तो रुद्राश्रित राशि से आगे या पहले भी मृत्यु हो सकती है।

यह नियम मीन लग्न में जन्म होने पर अधिक तीव्रता से लागू होता है। शेष लग्नों में ऐसा निश्चय नहीं है।

हमारे विचार से रुद्राश्रित राशि की त्रिकोण राशियों (१,५,९) की दशा को क्रमशः अल्प-मध्य-दीर्घायु योगों में सदैव मृत्युदायक नहीं मानना चाहिए। यद्यपि उक्त क्रिय शब्द सामान्यतः मेष का वाचक है, परन्तु यहाँ कटपयादि से मीन अर्थ लगेगा। इस विषय में वृद्धों ने कुछ अलग ही कहा है।

पापमात्रस्य शूलत्वे प्रथमर्क्षे मृतिर्भवेत् ।
मिश्रे मध्यम शूलर्क्षे शुभमात्रेऽन्त्यभे मृतिः ॥ (वृ० का०)

यदि दोनों रुद्र पापी हों तो प्रथम दशा, दोनों शुभ हों तो नवम दशा और मिश्रित हों तो पंचम दशा मारक होती है।

आयु विचार के इस प्रसंग में शुभ-पाप ग्रह कौन से हैं, इस विषय में वृद्धवचन उपलब्ध है—

अर्कार मन्दफणिनः क्रमात्क्रूरा यथाश्रयम् ।
चन्द्रोऽपिक्रूर एवात्र क्वचिदंगारकाश्रये ॥
गुरुध्वजकविज्ञाः स्युर्यथापूर्वं शुभग्रहाः ॥ (वृ० का०)

शूले चेत् तदन्तशूले ॥४३॥

द्वन्द्वे रुद्रे तदन्तं प्रायः ॥४४॥

शूल राशि रुद्रशूल में से जिसमें मृत्यु सम्भव हो, उस दशा में भी जब शूल राशि की ही अन्तर्दशा आएगी, तो मृत्यु का समय समझना चाहिए।

यदि दोनों रुद्रग्रह द्विस्वभाव राशि में हों अथवा कोई बली रुद्र मिथुन राशि में हो तो रुद्र शूल पर्यन्त ही आयु होती है।

अन्यथा सामान्यतः रुद्रशूलान्तमायुः इत्यादि सूत्र से जो बताया गया है, उससे आगे या पीछे भी मृत्यु होती है।

अनुभव में भी यही आया है कि 'रुद्रशूलान्तमायु' वाली बात प्रायः खरी नहीं उतरती। विशेषतया अल्पादि आयुयोगों में जो क्रमशः प्रथम, पंचम, नवम राशि को मारक माना है वह अधिक प्रामाणिक नहीं है। जैमिनि ने भी स्वयं इस बात को वैकल्पिक रूप से ही स्वीकार किया है।

प्रथममध्यमोत्तमेषु वा तत्तदायुषाम् ॥४५॥

अथवा अल्पायु में प्रथम, मध्यायु में पंचम व दीर्घायु में नवम दशा मारक होती है।

यह वैकल्पिक मत है तथा हमारे विचार से यह मत भी अधिक समीचीन नहीं है।

आयुर्निर्णय का अन्य प्रकार (महेश्वर ग्रह)

स्वभावेशो महेश्वरः ॥४६॥

स्वोच्चे स्वगृहे रिपुभावेशः प्राणी ॥४७॥
पाताभ्यां योगे स्वस्य तयोर्वा रोगे ततः ॥४८॥

(i) आत्मकारक से अष्टमेश महेश्वर होता है।

(ii) आत्मकारक यदि उच्च या स्वगृह में हो तो अष्टमेश व द्वादशेश में से जो बली होता है, वही महेश्वर होगा। यदि ये दोनों बली हों तो दोनों ही महेश्वर होंगे।

(iii) अथवा यदि कारक से अष्टमेश, यदि कारक की उच्च राशि में या कारक की राशि में हो तो द्वादशेश व अष्टमेश में बली ग्रह महेश्वर होगा।

(iv) आत्मकारक के साथ या आत्मकारक में राहु या केतु हो तो आत्मकारक से षष्ठेश महेश्वर होता है।

पं० नीलकण्ठ ने अपनी प्राचीन संस्कृत टीका में सूत्र ४७ के संदर्भ में कहा है कि आत्मकारक से अष्टमेश यदि उच्च या स्वगृही हो तो अष्टमेश व द्वादशेश में से बली महेश्वर होता है।

इसी प्रकार सूत्र ५८ की टीका में वे कहते हैं कि आत्मकारक से सूर्यादि क्रम से छठा ग्रह लेना होगा।

इन दोनों प्रसंगों के विषय में हमारा विनम्र निवेदन है कि सूत्र ४७ में 'स्वोच्चे स्वगृहे कारके इति शेषः' इत्यादि प्रकार से अर्थ करना होगा।

सूत्र ४८ में ततः शब्द का अर्थ उन्होंने कटपयादि से लेकर सूर्यादि क्रम से छठा ग्रह कहा है जबकि यहां ग्रहों के लिए कटपयादि का प्रयोग नहीं हुआ है। अतः त—६, तः—६ = ६६ ÷ १२ = शेष ६। अर्थात् छठा भाव ही युक्तियुक्त अर्थ है। इसी भ्रम के कारण उन्होंने सूत्र १-२-८२ में भी शुद्ध अर्थ नहीं लिखा था।

पूर्वोक्त उदाहरण में आत्मकारक शुक्र से अष्टमेश बुध है। अतः वही महेश्वर है। शेष उपनियम वहाँ लागू नहीं होते।

ब्रह्मग्रह का निरूपण

प्रभुभाव वैरीश प्राणी पितृलाभप्राण्यनुचरो विषमस्थो ब्रह्मा ॥४९॥

लग्न व सप्तम में से बली भाव का निर्णय करें। उस बली भाव से

६,८,१२ भावों के स्वामियों में से जो विषम राशि से पृष्ठस्थ हो वही ब्रह्मा होता है।

लग्न से विचार करने पर स्थूल रूप से १२, ११, १०, ९, ८, ७ भाव एवं सप्तम से विचार करने पर ६, ५, ४, ३, २, १ भाव पृष्ठस्थ कहलाते हैं। जो पृष्ठ भावों में विषम राशिगत हो वही ब्रह्मा होता है। स्पष्टतया लग्न भोग्य से सप्तम भुक्त व सप्तम भोग्य से लग्नभुक्त क्रमशः सप्तम व लग्न के पृष्ठ होते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में सप्तम बली है उससे ६, ८, १२ भावेश क्रमशः बुध, सूर्य व शनि हैं। इनमें से शनि सप्तम के पृष्ठ में सम राशि में है अतः वह ब्रह्मा नहीं है। शेष दोनों बुध व सूर्य सप्तम से आगे अर्थात् लग्न पृष्ठ में हैं। सप्तम से हम विचार कर रहे हैं, अतः ये भी ब्रह्मा नहीं हो सकते।

शनि, राहु, केतु का निषेध

ब्रह्मणि शनौ पातयोर्वा ततः ॥५०॥

यदि शनि, राहु या केतु ब्रह्मा सिद्ध हो रहे हों तो इनसे षष्टेश ग्रह ब्रह्मा होता है। अर्थात् शनि, राहु व केतु ब्रह्मा होने की योग्यता नहीं रखते।

आशय यह है कि इन्हें ब्रह्मत्व प्राप्त होने पर इनसे षष्ठेश ग्रह को ब्रह्मा माना जाएगा।

कुछ लोगों का मत है कि शनि आदि तीनों ग्रहों में अंशों की न्यूनता के आधार पर जो ग्रह छठे नम्बर पर हो उसे ब्रह्मा मानना चाहिए। परन्तु इस द्वितीय मत में एक कमी है। केतु तो कारकों में लिया नहीं जाता, तब केतु से छठा कारक कैसे मान लेंगे। यदि मुनि को कारकानुसार षष्ठ ग्रह अभीष्ट होता तो वे केतु का भी ग्रहण सूत्र में न करते। अतः हमारा विचार है कि लग्न या सप्तम से ६, ८, १२ भावों के अधिपतियों में से यदि शनि, राहु या केतु हों तो उनसे षष्ठेश ग्रह को भी ब्रह्मा मानना चाहिए। पीछे वृश्चिक व कुम्भ के क्रमशः दो-दो स्वामी मंगल-केतु व शनि-राहु बताए जा चुके हैं। इनमें से कब किसे स्वामी माना जाएगा, इस विषय में पीछे चर दशा प्रकरण में बताया जा चुका है।

षष्ठ के अर्थ का एक विकल्प और हो सकता है। अर्थात् जन्म लग्न

में इनसे षष्ठ स्थान में स्थित ग्रह को ब्रह्मा माना जाय। लेकिन इस विषय में कुछ स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं। फिर भी इस तीसरे विकल्प का अनुभव विद्वान पाठक स्वयं करें। प्रस्तुत उदाहरण में शनि से षष्ठेश बुध ब्रह्मा होगा।

प्रकारान्तर से ब्रह्मग्रह का परिज्ञान

ब्रह्मा स्वभावेशो भावस्थः ।।५१।।

कारक अर्थात् आत्मकारक से अष्टम स्थान का स्वामी ग्रह या वहाँ स्थित ग्रह ब्रह्मा होता है।

उदाहरण में अष्टमेश सूर्य व अष्टमस्थ गुरु भी ब्रह्मा हो सकते हैं।

बहूनां योगे स्वजातीयः ।।५२।।

राहुयोगे विपरीतम् ।।५३।।

यदि कई ग्रह ब्रह्मा सिद्ध हो रहे हों तो उनमें से जो ग्रह अधिक अंशों पर स्थित हो, उसे ब्रह्मा माना जाएगा।

राहु के विषय में विपरीत समझना चाहिए। अर्थात् राहु यदि सबसे कम अंशों पर हो तो उसे ही ब्रह्मा मानना चाहिए।

आशय यह है कि जिस ग्रह के भुक्तांश सबसे अधिक हों, वही ब्रह्मा होगा। राहु के भुक्तांश जानने के लिए राहु स्पष्ट के अंशों को ३०° में से घटाकर शेष का ग्रहण करना चाहिए।

विवादे बली ।।५४।।

यदि आत्मकारक से अष्टमस्थ व अष्टमेश दोनों ग्रह ब्रह्मा हों तो बलवान् को ब्रह्मा समझना चाहिए।

यह स्थिति तभी सम्भव है जब आत्मकारक से अष्टम स्थान में कोई ग्रह स्थित हो। यदि वहाँ कोई ग्रह नहीं है तब तो निर्विवाद रूप से अष्टमेश ब्रह्मा हो जाएगा। यदि अष्टम भाव में भी कोई ग्रह स्थित हो तो दोनों में से बलवान् को ब्रह्मा स्वीकार करें। लेकिन इस स्थिति मे ब्रह्मा व महेश्वर के एक होने के अवसर होंगे। अतः हमारे विचार से सूत्र ५१ के अनुसार ही ब्रह्मा का निश्चय करना चाहिए।

प्रस्तुत उदाहरण में बुध, सूर्य, बृहस्पति में से बुध ही अधिक अंशों वाला है अतः वही निर्विवाद ब्रह्मा होगा।

ब्रह्मा व महेश्वर से आयु विचार

ब्रह्मणोयावन्माहेश्वरर्क्षदशान्तमायुः ।।५५।।

स्थिर दशा ब्रह्मा द्वारा अधिष्ठित राशि से शुरू होती है। अतः उस आद्य स्थिर दशा से महेश्वराधिष्ठित राशि की दशा तक आयु होती है।

इस उदाहरण में बुध ही ब्रह्मा व रुद्र दोनों है।

इसकी अधिष्ठित राशि मकर में मृत्यु होनी चाहिए यह एक प्रबल बालारिष्ट हो सकता था, परन्तु फलित नहीं हुआ।

मारकदशा का ज्ञान

तत्रापिमहेश्वरभावेश त्रिकोणाब्दे ।।५६।।

इन पूर्वोक्त दशाओं में भी महेश्वर ग्रह से अष्टमेश की अधिष्ठित राशि दशा में, महेश्वर ग्रह से अष्टमेश की अधिष्ठित राशि दशा में और अष्टमेश से त्रिकोण भावस्थ राशियों की दशा में मृत्यु होनी चाहिए।

प्रस्तुत उदाहरण में महेश्वर से अष्टमेश स्वयं बुध ही है।

अतः अष्टमेश बुध से त्रिकोण राशियाँ कन्या व वृष एवं अष्टमस्थ राशि मिथुन इनमें मृत्यु सम्भावित है।

मारक दशा में भी मारक राशि की अन्तर्दशा विशेष मारक होती है।

मारक ग्रह का निर्णय

स्वकर्मचित्तरिपुरोगनाथप्राणिमारकः ।।५७।।

चित्तनाथः प्रायेण ।।५८।।

आत्मकारक से ३, ६, ८, १२ स्थानों के स्वामी ग्रहों में जो बलवान् हो वही ग्रह मारक होता है। विशेषतः षष्ठेश बली मारक होता है।

उदाहरण में आत्मकारक से उक्त स्थानों में क्रमशः मेष, कर्क, कन्या व मकर राशियाँ स्थित हैं। अतः इनके स्वामी क्रमशः मंगल, चन्द्रमा, बुध व शनि हैं। इनमें सर्वाधिक अंश बुध के हैं, अतः अंश बली हुआ। परन्तु यहाँ राशिबल का विचार भी आवश्यक है। मंगल की राशि में तीन ग्रह हैं। शनि की राशि में भी तीन ग्रह हैं। चन्द्रमा की राशि में

कोई ग्रह नहीं है। बुध की राशि में एक भी ग्रह नहीं है। अतः राशि बल से शनि व मंगल में विवाद है।

मंगल की राशि में मंगल वर्गोत्तम स्वक्षेत्री है। राहु भी स्वनवांश में है। शनि की राशियों में सूर्य उच्चनवांश में है, बुध मित्र नवांश में है व शुक्र वर्गोत्तम नवांश में है। अतः शनि ही प्रबल मारक सिद्ध होता है। शनि की अधिष्ठित वृश्चिक या षष्ठेश की अधिष्ठित मिथुन दशा में मृत्यु सम्भावित है।

मारक ग्रह से मृत्यु समय का निर्धारण

तदृक्षदशायां निधनम् ॥५६॥

मारकग्रह की अधिष्ठित राशि की दशा में मारक की अपनी राशियों की दशा में मृत्यु होती है।

प्रस्तुत उदाहरण में शनि वृश्चिक राशि में है तथा वृश्चिक की दशा बीत चुकी है। किन्तु पहले मध्यायु योग सिद्ध हो चुका है। अतः कुम्भ की दशा मारक होनी चाहिए।

मारक अन्तर्दशा निर्णय

तत्रापि कालाद्रिपुरोगचित्तनाथापहारे ॥६०॥

आत्मकारक के सप्तम से ६, ८, १२ स्थानों के स्वामियों में से बली ग्रह की अन्तर्दशा जब पूर्वोक्त मारक दशा में आएगी, तब मृत्यु समझनी चाहिए।

मारक के निरूपण में वृद्धों ने विशेष कहा है—

चरे चरस्थिरद्वन्द्वा इति यो राशिरागतः।
स एव मारको राशिर्भवतीति विनिर्णयः॥
बहुराशि समावेशे बलवान्मारकः स्मृतः॥ (वृ. का.)

'लग्नेश-अष्टमेश, शनि-चन्द्र एवं लग्न-होरा ये जिन राशियों पर स्थित हों, वे मारक होती हैं। यदि ये कई राशियां हों तो ग्रहरहित से ग्रहसहित को बली मानना चाहिए। तब बली राशि ही मारक होगी। उस राशि की दशा में अथवा उस राशि की अधिष्ठित राशि की दशा में मृत्यु होती है।

इस प्रकार से उदाहरण में मिथुन, वृश्चिक, कर्क व धनु राशि मारक सिद्ध हुईं। इन सबमें वृश्चिक राशि ही बली है। अतः वृश्चिक राशि ही मारक होती है।

"षष्ठाष्टमेशौ भवतो मारकावष्टमेश्वरः।
प्रायेण मारको राशिदशास्वत्राविशेषतः॥
षष्ठभे पापभूयिष्ठे षष्ठेशो मुख्यमारकः।
षष्ठात् त्रिकोणगो वापि मुख्यमारक इष्यते॥
मध्यायुषि मृतिः षष्ठदशायामष्टमस्य वा।
षष्ठ त्रिकोणस्य पुनर्दीर्घाल्प विषये भवेत्॥
षष्ठे बलयुते तस्य त्रिकोणे मृतिमादिशेत्।
षष्ठेशश्चेद् बलाढ्यः स्यात् तत् त्रिकोणे मृतिं वदेत्॥
व्यवस्थेयं समस्तापि कारकादिदशास्वपि।
बलिनः शुक्रशशिनोग्राह्यं षष्ठाष्टमादिकम्॥"

आत्मकारक सप्तम से ६-८ भावों के स्वामियों में से प्रायः अष्टमेश मारक होता है। अतः उसकी राशि या अधिष्ठित राशि की दशा में मृत्यु होती है।

यदि षष्ठ स्थानगत राशि में कई पापग्रह हों तो षष्ठेश ही मुख्य-कारक हो जाता है।

अथवा षष्ठ स्थान से त्रिकोण स्थानगत ग्रह भी मारक होते हैं। मध्यायु योग होने पर षष्ठेश या अष्टमेश की राशि दशा में मृत्यु हो जाती है।

यदि दीर्घायु हो तो षष्ठ स्थान से नवम राशि और अल्पायु योग हो तो १-५ राशि दशा मारक होती है।

षष्ठ स्थान या षष्ठेश में से जो बली हो उससे ही त्रिकोण राशियों का ग्रहण करना चाहिए।

यह व्यवस्था कारकादि दशाओं में भी समझनी चाहिए।

लग्न व सप्तम बली हों तो उनसे षष्ठ व अष्टमगत राशि का विचार कर लेना चाहिए।

प्रस्तुत उदाहरण में आत्मकारक से षष्ठेश चन्द्रमा व अष्टमेश बुध

है। षष्ठ में पापग्रह नहीं हैं। अतः अष्टमेश की अधिष्ठित राशि मकर अथवा इसकी स्वराशि मिथुन, कन्या दशा में मृत्यु सम्भव है।

यहां मारक दशा निर्णय में चर-स्थिर, कारक, शूलादि सभी दशाओं से विचार करना चाहिए।

इस पाद में आयु-निर्धारण सम्बन्धी विशेष नियम बताए गए हैं। पीछे दिया गया उदाहरण एक जीवित व्यक्ति का है। अतः इन नियमों की प्रामाणिकता की परीक्षा के लिए कुछ ऐसे लोगों का उदाहरण लेना संगत होगा, जिनके जीवन का अन्त हो चुका हो।

(i) सर्वप्रथम स्व० **पं० जवाहरलाल नेहरू** जी की कुण्डली देखें।
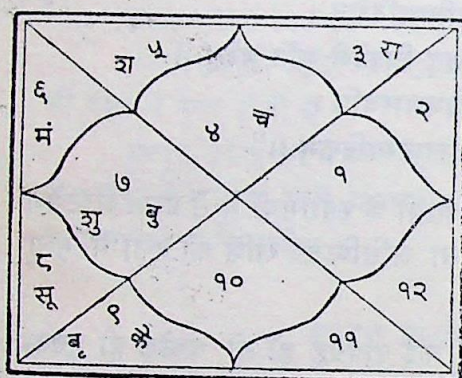
जन्मतिथि—१४-११-१८८९
सूर्य—७ ०° १८′
चन्द्र—३ २०° ००′
इष्टकाल—४१ ३८ २०
होरा लग्न—११ १९° ५४′ ००′
मृत्यु—१९६४

लग्नेश व अष्टमेश क्रमशः चर स्थिर राशि में है अतः मध्यायु हुई। शनि चन्द्र से भी यही निष्कर्ष मिला और होरा लग्न से अल्पायु आयी। अतः बहुमत पक्ष मध्यायु का है। शनि योगकारक होने से कक्ष्याह्रास होना चाहिए। लग्न चन्द्र के सप्तम भाव के त्रिकोणों में स्थिर द्विस्वभाव राशि है, अतः मध्यायु हुई। शनि लग्न-चन्द्र से त्रिकोण में नहीं है, अतः हानि नहीं होगी। अस्तु, पूर्वोक्त नियमों के अनुसार मध्यायु प्रमाणित होती है। यद्यपि हानि योग पड़े हैं तथापि विरोधी सिद्धान्त भी हैं। इन्हें ७५ वर्ष मध्यायु द्वितीय खण्ड के लगभग आयु मिली।

(ii) **स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी** की कुण्डली पर दृष्टिपात कीजिए—

लग्नेश-अष्टमेश व शनि चन्द्र से दीर्घायु योग है। लेकिन शनि के

कारण हानि करने पर मध्यायु हुई। कई प्रकार से हानि प्राप्त है। लग्न पाप कर्त्तरी में है। बृहस्पति से केन्द्र में मंगल है।

जन्मतिथि—१९-११-१९१७
मृत्यु—३१-१०-१९८४
आतमकारक—शनि
कारकांश लग्न—मकर
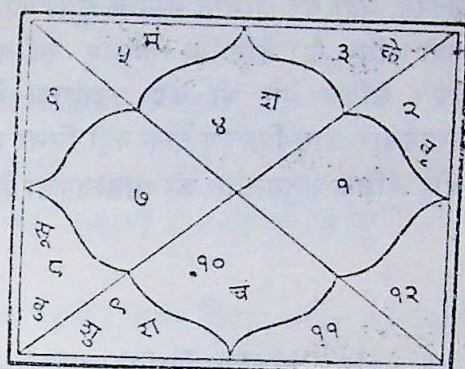
लग्न व सप्तम के त्रिकोणों में स्थिर द्विस्वभाव राशि होने के कारण भी मध्यायु ही आ रही है। अतः हम मध्यायु मान लेते हैं। मध्यायु-खण्ड (ऊपरी सीमा) ७२ वर्ष है। इन्होंने ६८ वर्ष आयु प्राप्त की।

(iii) **पं० मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'** की इस कुण्डली में दीर्घायु योग है।
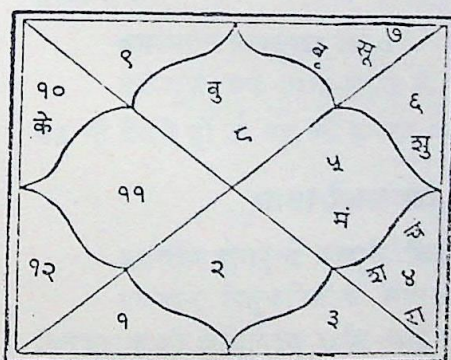
जन्म – सं० १९४४ कार्तिक गते २४ मंगलवार, कृष्णपक्ष, अष्टमी तिथि, आश्लेषा नक्षत्र, इष्ट ३।५७
स्थान–देव प्रयाग के निकट
मृत्यु—३०-९-१९७८
(सं० २०३५)
आयु—९१ वर्ष
होरा लग्न—८ ११° २४′ ००″

लग्नेश व अष्टमेश से अल्पायु शनि चन्द्र से दीर्घायु व लग्न होरा से दीर्घायु प्राप्त है। अतः दीर्घायु हुई। हानि-वृद्धि नहीं है। बलवान अष्टमेश भी केन्द्रगत है, अतः दीर्घायु है। इसकी ऊपरी सीमा यहाँ १०८ वर्ष मानी जाएगी व न्यूनतम सीमा ७२ वर्ष रहेगी। पाठकों को आयु स्पष्टीकरण

करके नियम की सत्यता की जाँच करनी चाहिए। अनुभव में हमने पाया है कि पराशरोक्त निसर्गाद्यायु प्रकार जहाँ व्यवहार में उतने खरे नहीं उतरते, वहीं पर जैमिनि मुनि के सूत्रों की सफलता का अनुपात पराशर से कहीं अधिक है। जैमिनीय स्पष्टायु कई सन्दर्भों में अधिक प्रामाणिक सिद्ध हुई। लेकिन ऐसे भी कई उदाहरण देखने को मिले जहाँ जैमिनीय मतानुसार आयु-विवरण ठीक नहीं मिला। आयु के गहन विषय को अभी और अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है।

इति पं. सुरेशमिश्र विरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीय सूत्रभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥

द्वितीय: पाद:

स्थिर कारकों का परिज्ञान

रविशुक्रयोः प्राणी जनकः ।।१।।

सूर्य और शुक्र में से जो ग्रह बलवान् हो, वही जातक के पिता का कारक होता है।

ये स्थिर कारक बताए जा रहे हैं। इनसे पिता, माता, भाई आदि की मृत्यु का समय जाना जा सकेगा। ये स्थिरकारक पाराशर होरा के कारकाध्याय में भी बताए गए हैं।

मातृकारक ज्ञान

चन्द्रारयोर्जननी ।।२।।

चन्द्रमा व मंगल में से जन्म लग्न में जो बली हो, वह मातृकारक होता है।

अप्राण्यपि पापदृष्टः ।।३।।

सूर्य-शुक्र एवं चन्द्र-मंगल में से जो ग्रह निर्बल हो, उसे यदि पाप-ग्रह भी देखते हों तो वह भी क्रमशः पितृकारक व मातृकारक हो जाता है।

माता-पिता की मृत्यु का समय

प्राणिनि शुभदृष्टे तच्छूले निधनं मातापित्रोः ।।४।।

बलवान् पितृकारक व मातृकारक को यदि शुभग्रह देखते हों तो पितृकारक की अधिष्ठित राशि सहित त्रिकोण राशियों (१,५,९) की दशा में पिता की मृत्यु होती है।

इसी प्रकार मातृकारक की त्रिकोण राशियों की दशा में माता की मृत्यु समझनी चाहिए।

तद्भावेशे स्पष्टबले ।।५।।

तच्छूल इत्यन्ये ।।६।।

दोनों प्रकार के कारकों से अष्टम स्थान के स्वामी को देखें। यदि वह अष्टमेश स्थिर कारक से अधिक अंशों वाला हो तो अष्टमेश की अधिष्ठित राशि की त्रिकोण (१, ५,९) राशियों की दशा में यथाप्रसंग माता या पिता की मृत्यु होती है। ऐसा अन्य आचार्यों का कथन है।

आयुषि चान्यत् ॥७॥

माता-पिता की आयु का विचार भी पूर्वोक्त प्रकार से करके अर्थात उनकी जन्मकुण्डली से उनकी आयु का निश्चय कर, अन्य पूर्वोक्त मारक दशा आदि का भी सामंजस्य पितृ कारकादि के आधार पर ज्ञात मृत्यु समय से कर लेना चाहिए।

पितृमरण में विशेष नियम

अर्कज्ञयोगे तदाश्रये क्रिये लग्नमेष दशायां पितुरित्येके ॥८॥

जन्म लग्न से द्वादश स्थान में सिंह, मिथुन, कन्या राशि हों अर्थात् कर्क, कन्या, तुला लग्नों में जन्म हो अथवा द्वादश स्थान में सूर्य बुध योग हो तो तृतीय या पंचम राशि की दशा से पिता की मृत्यु होती है, ऐसा कुछ लोग स्वीकार करते हैं। मेष शब्द का अर्थ पंचम राशि है। लग्न शब्द से तृतीय राशि अभिप्रेत है।

बचपन में माता-पिता की मृत्यु का योग

व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः पित्रोः प्राग् द्वादशाब्दात् ॥९॥

किसी भी मातृकारक या पितृकारक (बलवान् या निर्बल) को यदि सूर्यरहित कोई पापग्रह देखता हो तो बालक की आयु बारह वर्ष की होने से पूर्व माता की मृत्यु हो जाती है।

पत्नी की मृत्यु का समय

गुरुशूले कलत्रस्य ॥१०॥

जन्म समय से बृहस्पति जिस राशि में स्थित हो, उस राशि से त्रिकोण राशि की दशाओं (१,५,९) में स्त्री की मृत्यु हो जाती है।

अन्य सम्बन्धियों की मृत्यु का ज्ञान

तत्तच्छूले तेषाम् ॥११॥

इसी प्रकार पुत्रादि सम्बन्धियों के स्थिर कारक जन्म समय में जिस राशि में स्थित हों, उससे त्रिकोण राशियों की दशा में उनकी मृत्यु का समय समझना चाहिए।

इन सब नित्य कारकों के विषय में पीछे अध्याय १.१.२०-२३ में बताया जा चुका है।

मृत्यु का प्रकार

कर्मणि पापयुतदृष्टे दुष्टं मरणम् ॥१२॥

लग्न से या आत्मकारक से तृतीय स्थान में पापग्रह स्थित हों या वहाँ पापग्रहों की दृष्टि हो तो मृत्यु का प्रकार दुष्ट होता है। अर्थात् उक्त स्थिति में जातक की मृत्यु अस्वाभाविक व करुण ढंग से होती है।

इस पद्धति से मातृकारक, पित्रादिकारकों से तृतीय स्थान का विचार कर उन सबकी मृत्यु का प्रकार भी जाना जा सकता है।

स्वाभाविक मृत्यु का योग

शुभं शुभदृष्टियुते ॥१३॥

इसी प्रकार लग्न या कारक से तृतीय स्थान से शुभग्रहों का योग या दृष्टि हो तो मनुष्य की मृत्यु शुभ ढंग से, स्वाभाविक रूप से होती है; अर्थात् मृत्यु दर्दनाक नहीं होती है।

पूर्वोक्त कुण्डलियों में नियम की परीक्षा कर लीलिए। पं० नेहरू की कुण्डली में तृतीय स्थान में मंगल है। अतः हृदयगति रुकने व लकवे का प्रभाव आ जाने से मृत्यु हुई थी।

श्रीमती गांधी की कुण्डली में आत्मकारक शनि है व लग्न से तृतीय स्थान पर पराशरमत से शनि की पूर्ण दृष्टि है, इसी कारण बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि अकिंचित्कर हो गई है। फलस्वरूप दर्दनाक अन्त हुआ। जैमिनीय मत से शुक्र राहु की तृतीय पर दृष्टि है। ये विषम राशिगत होने के कारण पाप हैं। महात्मा गांधी की कुण्डली कन्या व तुला दोनों लग्नों की प्राप्त

होती है। कन्या लग्न में तो शनि तृतीयस्थ है और वहाँ राहु की भी पूर्ण दृष्टि है। यदि तुला लग्न लें तो तृतीयभाव पाप कर्त्तरी में है और सूर्य की त्रिपाद दृष्टि है। अतः अस्वाभाविक मृत्यु का संकेत स्पष्ट है।

मृत्यु कारण के विषय में आगे तृतीय अध्याय में भी बताया जाएगा।

मिश्रे मिश्रम् ॥१४॥

लग्न या कारक से तृतीय स्थान में मिश्रित ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो शुभाशुभ रूप से मृत्यु होती है।

मृत्यु का कारण

आदित्येन राजमूलात् ॥१५॥
चन्द्रेण यक्ष्मणः ॥१६॥
कुजेनव्रणशस्त्राग्निदाहाद्यैः ॥१७॥
शनिना वातरोगात् ॥१८॥

उक्त तृतीय स्थानों में यदि सूर्य की दृष्टि या योग हो तो राजा के कारण मृत्यु होती है।

चन्द्रमा की दृष्टि या योग रहने पर क्षय रोग से मृत्यु होती है।

मंगल की दृष्टि या योग रहने पर घाव, शस्त्र, आग से जलने आदि से मृत्यु होती है।

यदि वहाँ शनि की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य की मृत्यु वायु-विकार से होती है।

मन्दमान्दिभ्यां विषसर्पजलोद्बन्धनादिभिः ॥१९॥
केतुना विषूची जलरोगाद्यैः ॥२०॥

यदि तृतीय स्थान में शनि व गुलिक दोनों की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य की मृत्यु विष विकार, पानी में डूबने अथवा फाँसी आदि लगने से होती है।

यदि वहाँ केतु हो तो हैजा, जल सम्बन्धी रोग (अतिसार आदि) से मृत्यु होती है।

अचानक मृत्यु का योग

चन्द्रमान्दिभ्यां पूगमदान्नकवलादिभिः क्षणिकम् ॥२१॥

यदि तृतीय स्थान में चन्द्रमा और गुलिक की दृष्टि या योग हो तो सुपारी खाने, भोजन से सम्बन्धित विकार या अन्य समान प्राकृतिक कारण से अचानक मृत्यु होती है।

गुरुणा शोफाऽरुचिवमनाद्यैः ॥२२॥

शुक्रेण मेहात् ॥२३॥

मिश्रे मिश्रात् ॥२४॥

चन्द्रदृग्योगान्निश्चयेन ॥२५॥

उक्त तृतीय स्थान में यदि बृहस्पति हो तो सूजन, अरुचि, उल्टी आदि के कारण मृत्यु होती है।

यदि शुक्र वहाँ स्थित हो तो प्रमेह रोग (धातुक्षय) से मृत्यु होती है।

यदि वहाँ कई ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो मिश्रित रोगों से मृत्यु होती है।

यदि उक्त तृतीयस्थ ग्रह पर अथवा तृतीय स्थान पर दृष्टिकारक ग्रह पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो उक्त रोगों को निश्चय से समझना चाहिए।

मृत्यु स्थान का ज्ञान

शुभैः शुभे देशे ॥२६॥

पापैः कीकटे ॥२७॥

गुरु शुक्राभ्यां ज्ञानपूर्वम् ॥२८॥

अन्यैरन्यथा ॥२९॥

लग्न या कारक से तृतीय स्थान पर यदि शुभ ग्रहों की दृष्टि हो या वहाँ पर शुभ ग्रह स्थित हों, तो मनुष्य का निधन शुभ स्थान पर होता है।

यदि वहाँ पाप ग्रह स्थित हों या दृष्टि रखते हों तो अपवित्र स्थान पर मृत्यु होती है।

यदि वहाँ बृहस्पति और शुक्र स्थित हों या दृष्टि करते हों तो व्यक्ति की मृत्यु के समय उसकी संज्ञा (होश) बनी रहती है। यदि वहाँ

गुरु व शुक्र के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रह की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य की मृत्यु अज्ञानपूर्वक अर्थात् संज्ञाशून्य होकर होती है।

माता-पिता का संस्कार न करने का योग

लेप जनकयोर्मध्ये शनिराहुकेतुभिः पित्रार्न संस्कर्ता ॥३०॥

लग्न से द्वादश भाव तक अर्थात् लग्न कुण्डली में किसी भी भाव में शनि-राहु या शनि-केतु एकत्र हों तो व्यक्ति अपने माता-पिता का दाह-संस्कार नहीं कर पाता है।

लग्न के मध्य तक व द्वादश के मध्य तक होने पर क्रमशः माता व पिता का संस्कार नहीं कर पाता।

राशि चक्र की स्थिति के अनुसार मध्य का अर्थ—क्रमशः लग्नादि ६ भाव व द्वादशादि व्युत्क्रम से ६ भाव होंगे।

लेपादि पूर्वार्द्धे जनकाद्यपरार्द्धे ॥३१॥

लग्न से षष्ठ तक यदि उक्त योग हो तो व्यक्ति माता का संस्कार नहीं कर पाता है।

सप्तम से द्वादश तक यदि उक्त शनि, राहु, केतु का योग हो तो मनुष्य पिता का दाह-संस्कार नहीं कर पाता है।

शुभदृग्योगान्न ॥३२॥

यदि उक्त योगकारक शनि, राहु, केतु पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो ऐसा फल नहीं होता है।

यहाँ पर दृष्टि जैमिनीय मत से ही लेनी है। पाराशरीय दृष्टि ऐसा फल देती है या नहीं, इसकी परख जिज्ञासु पाठक स्वानुभव से करें। वैसे कई स्थलों पर पराशरोक्त ग्रहदृष्टि इस ग्रन्थ में बताए गए नियमों में भी प्रभावी सिद्ध होती है। सम्भवतः जैमिनि मुनि ने राशिदृष्टि के आधार पर ग्रहों की जो दृष्टि मानी है, उससे यह ध्वनि नहीं निकलती कि ग्रहों की प्रसिद्ध दृष्टि जैमिनि को मान्य नहीं है।

अत: दोनों प्रकार की दृष्टियों का उपयोग कर गवेषणा करने में हानि नहीं है। पाराशरीय दृष्टि का भी वैज्ञानिक तर्कसम्मत आधार है। इस विषय में कहीं अन्यत्र लिखेंगे। अत: जैमिनि मत में राशि के अनुसार दृष्टि को प्रमुख माना गया है। किन्तु दूसरी प्रसिद्ध एकपाद, द्विपाद आदि दृष्टियाँ भी जैमिनि को स्वीकाय हैं, ऐसा आभास होता है।

इति पं. सुरेशमिश्र विरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्र भाष्ये
द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

तृतीयः पादः

नवांश दशा का ज्ञान

विषमे तदादिर्नवांशः ॥१॥

यदि जन्म लग्न विषम राशि हो तो पहली नवांश दशा लग्न से ही प्रारम्भ होती है। तब लग्न राशि से प्रारम्भ कर ९-९ वर्षों की नवांश दशा होती है। अगली दशाएँ द्वितीय, तृतीयादि भावगत राशियों के क्रम से होगी।

अन्यथादर्शादिः ॥२॥

यदि जन्म लग्न समराशि हो तो नवांश दशा जन्म लग्न से उत्क्रम से प्रारम्भ होती है। पहली दशा लग्न, फिर द्वादश, फिर एकादश आदि भावगत राशियों की दशा रहेगी। आदर्श का अर्थ सम्मुख राशि नहीं है।

आदर्श शब्द यहाँ विलोम का वाचक है। इस सूत्र की टीका में कई प्राचीन व्याख्याकारों ने प्रमाद का ही परिचय दिया है। लग्न से ही सदा दशा चलेगी। यदि लग्न विषम है तो लग्नादि क्रम, यदि लग्न विषम है तो लग्नादि उत्क्रम रहेगा। यह तो निश्चित है कि आदर्श शब्द का अर्थ कटपयादि से नहीं है। तब इसका अर्थ चतुर्थ भाव है। यह सामान्यार्थ में ही वाचक रूप में प्रयुक्त है। वृद्धों ने भी इसका पर्यायवाची 'दर्पण' शब्द प्रयोग किया है। देखें आगे २, ४ में मण्डूक दशा। आदर्श शब्द का अर्थ हमने क्रम का उल्टा अर्थात् उत्क्रम माना है। क्योंकि—

(i) आगे सूत्र २-४-१५, २० में भी यह शब्द उत्क्रम अर्थ में ही प्रयुक्त है।

(ii) सूत्र २-४-१७ में जैमिनि ने कहा है कि दशा का प्रारम्भ विषम राशि में प्रायः सामान्यक्रम से होता है। देखें वही सूत्र। अर्थात् सम में उत्क्रम से होगा।

(iii) यदि इसका अर्थ सम्मुख या अभिमुख राशि है तो कौन-सी अभिमुख मानें? क्योंकि प्रत्येक राशि की अभिमुख अलग-अलग होगी। निश्चित रूप से सप्तम राशि यदि सम्मुख मानें तो वह सदा सम्मुख नहीं होती। चर राशि में अष्टम, स्थिर में षष्ठ व द्विस्वभाव में सप्तम राशि सम्मुख है।

(iv) यहाँ पर सम्मुख राशियों की कल्पना नवीन प्रतीत होती है। यह सम्मुख व आदर्श का सम्बन्ध एक कपोल कल्पना है।

(v) आगे मण्डूकदशा व योगार्ध दशा का प्रकरण भी देखें। आदर्श शब्द से सम्मुख अर्थ लेना एक निराधार व दूर की कल्पना ही है।

स्थिरदशा निरूपण

शशिनन्दपावकाः क्रमादब्दाः स्थिरदशायाम् ॥३॥

स्थिरदशा में चरराशि दशा के ७ वर्ष, स्थिर राशि के ८ वर्ष एवं द्विस्वभाव राशि के ९ वर्ष होते हैं।

इसके विषय में पीछे २-१-३० के भाष्य में भी बता चुके हैं।

ब्रह्मादिरेषा ॥४॥

ब्रह्मग्रह की अधिष्ठित राशि से स्थिर दशा प्रारम्भ होती है। ब्रह्मग्रह का निर्णय पूर्वोक्त स्थल पर बताया गया है।

बल विचार

अथ प्राणः ॥५॥

कारकयोगः प्रथमो भानाम् ॥६॥

साम्ये भूयसा ॥७॥

ततस्तुंगादिः ॥८॥

यहाँ से बल के विषय में बताया जा रहा है।

राशियों में ग्रहयुक्त राशि ग्रहरहित राशि से बलवान् होती है।

यदि दोनों स्थानों पर ग्रह हों तो अधिक ग्रहयुक्त राशि बली होगी।

यदि दोनों स्थानों पर समान ग्रह संख्या हो तो जिस राशि में उच्च, स्व या मित्रगृह में ग्रह स्थित हों, वही बली होगी।

निसर्गस्ततः ॥९॥

तदभावे स्वामिन इत्थं भावः ॥१०॥

यदि दोनों विचारणीय राशियों में ही उच्चादिगत ग्रह स्थित हों तो राशियों का निसर्ग बल देखना चाहिए। निसर्गबल में चर स्थिर व द्विस्वभाव ये राशियाँ क्रमशः उत्तरोत्तर बली होती हैं।

यदि किसी राशि के बल का निर्णय उक्त रीति से न हो सके तो राशीश के आधार पर राशि बल जानना चाहिए।

अर्थात् जिस राशि का स्वामी बली हो, उस राशि को भी बलवान् मानना चाहिए।

आग्रायतोऽत्र विशेषात् ॥११॥

यदि किसी राशि का ग्रह स्थिति बल व निसर्ग बल भी समान हो तो अधिक अंश वाले ग्रह से अधिष्ठित राशि को बली समझना चाहिए।

इस ग्रन्थ में विशेषतया अंशाधिक्य बली ग्रह को ही सर्वाधिक बली माना गया है।

पार्श्ववर्ती ग्रहों से राशि की बलवत्ता

प्रातिवेशिकः पुरुषे ॥१२॥

इति प्रथमः ॥१३॥

जिस विषम राशि के दोनों ओर के भावों (२-१२) में ग्रह स्थित हों, उन पार्श्ववर्ती ग्रहों का बल भी मध्यवर्ती विषम राशि को मिलता है।

समराशियों को यह प्रातिवेशिक (पड़ोसी) का बल नहीं मिलता है।

इस प्रकार जिस राशि को सब पूर्वोक्त प्रकारों से बल मिले, उसे ही सर्वाधिक बली माना जाएगा। पश्चात् उत्तरोत्तर क्रम से अल्प बली राशियों का निर्णय किया जा सकता है।

यहाँ तक राशियों का प्रथम श्रेणी का बल बताया गया है। अर्थात् यही बल मुख्य बल होता है।

द्वितीय श्रेणी का बल

स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो द्वितीयः ॥१४॥

जो राशि अपने स्वामीग्रह से, वृहस्पति से या बुद्ध से युक्त हो अथवा दृष्ट हो, वह द्वितीय श्रेणी की बली मानी जाएगी।

इस द्वितीय बल का ग्रहण चरराशि की नवांश दशा में होता है। अर्थात् इस बल के आधार पर वहाँ राशि का बलाबल निर्णीत किया जाता है।

तृतीय श्रेणी का बल

स्वामिनस्तृतीयः ॥१५॥

राशि के स्वामी का बल तृतीय बल कहलाता है। यह स्वामी बल बताया जा रहा है।

स्वात्स्वामिनः कण्टकादिष्वपारदौर्बल्यम् ॥१६॥

आत्मकारक से जो ग्रह केन्द्र स्थानों में हों वे पूर्णबली, पणफर स्थानों में हों तो मध्यबली और आपोक्लिम स्थानों में हों तो अल्पबली होते हैं। यहाँ एक प्रकार से केन्द्रादि बल का संकेत है।

चतुर्थ प्रकार का बल

चतुर्थतः पुरुषे ॥१७॥

विषम राशि में यदि कोई भावेश स्थित हो और वहाँ पाप ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो वह राशि व ग्रह भी बली होते हैं।

उच्चादिगत शुभ ग्रहों से अधिष्ठित होने पर राशि या ग्रह को बली समझना चाहिए। इस सूत्र का सम्बन्ध आगामी सूत्र २८ से है।

निर्याणशूलदशा का ज्ञान

पितृलाभप्रथमप्राण्यादिशूलदशा निर्याणे ।।१८।।

यहाँ शूलदशा का विचार बताया जा रहा है। इसका विचार मुख्यतः मरण समय निश्चय में होता है। अतः इसे निर्याणशूल दशा कहा गया है।

जन्म लग्न व सप्तम भावगत राशियों में से प्रथम बली राशि को लें। बल विचार पहले बता चुके हैं। उसी बली राशि से गिनकर क्रमशः सभी राशियों की दशा होती है। इस बली राशि से त्रिकोण (१,५,९) राशियों की दशा में मृत्यु होती है। इस दशा में ९-९ दशा वर्ष माने गए हैं।

महर्षि पराशर ने भी इस दशा को संग्रहीत किया है। तदनुसार लग्न व सप्तम से अष्टम भावगत राशि को देखना चाहिए। उनमें से बली राशि से दशा का प्रारम्भ होगा। यदि वह बली राशि विषम है तो क्रम से और सम है तो उत्क्रम से गणना करनी चाहिए।

इस दशा में पराशरानुसार स्थिरदशावत् ७, ८, ९ दशावर्ष माने जाएँगे। पराशर ने भी शूलराशि की त्रिकोण दशाओं में मरण कहा है।

(बृ० पारा० दशा०, १३०-३१)

पिता की निर्याण शूल दशा

पितृलाभपुत्रः प्राण्यादिः पितुः ।।१९।।

लग्न व सप्तम से नवम राशियों में से बली राशि से क्रम व उत्क्रम से गिनकर शूलदशाचक्र बनाएँ। जब उस बली राशि से त्रिकोण (१,५,९) राशि की दशा आएगी तो पिता की मृत्यु होगी।

माता की निर्याण शूलदशा

आदर्शादिर्मातुः ।।२०।।

लग्न या सप्तम में से बली राशि से चतुर्थ राशि की शूल दशा में (१,५,९ राशि दशा) माता की मृत्यु होती है।

अन्य सम्बन्धियों की निर्याण शूल दशा

कर्मादिर्भ्रातुः ॥२१॥

मात्रादिर्भगिनिपुत्रयोः ॥२२॥

व्ययादिर्ज्येष्ठस्य ॥२३॥

पितृवत् पितृवर्गः ॥२४॥

मातृवत्मातृवर्गः ॥२५॥

लग्न सप्तम में से बली राशि को लें। उसी से सर्वत्र गणना करनी है। उस बलवान् राशि से तृतीयस्थ राशि की शूल दशा अर्थात् १,५,९ राशि दशा में भाई की मृत्यु होती है। पाँचवीं राशि की त्रिकोण दशाओं में बहन व पुत्र की मृत्यु होती है।

एकादश राशि की दशाओं में बड़े भाई की मृत्यु होती है।

पितृवर्ग (चाचा, ताऊ आदि) की मृत्यु दशा पितृवत् जाननी चाहिए। मातृवर्ग (नाना, नानी, मौसी आदि) की मातृवत् मृत्यु दशा मानी जाएगी।

हमारे विचार से जैमिनीयमत में शूलदशा में सम-विषम राशि-भेद से क्रम व उत्क्रम गणना ही करनी चाहिए। दशावर्ष ९-९ मानकर चलें। नवमादि भावों का विचार क्रम व उत्क्रम से ही होगा।

ब्रह्मदशा निरूपण

ब्रह्मादि पुरुषे समा दासान्ताः ॥२६॥

यदि लग्न विषम राशि में हो तो ब्रह्मा की अधिष्ठित राशि से क्रमानुसार गिनें। ब्रह्माधिष्ठित राशि से ही यह दशा तब प्रारम्भ होगी। इस दशा के वर्षों का निर्णय करने के लिए प्रत्येक राशि से षष्ठेश की अधिष्ठित राशि तक गिनें। यहाँ जन्म लग्न से षष्ठेश का ग्रहण नहीं है अपितु प्रत्येक विचारणीय राशि से जो राशि षष्ठ में हो, उस षष्ठ राशि के स्वामी तक विचारणीय राशि से गिनकर जो वर्ष मिलें, वे ही उस राशि के दशा वर्ष होंगे।

लग्न विषम राशि हो तो गणना क्रमानुसार ही होगी। अन्यथा उत्क्रमानुसार चलेंगे।

स्थान व्यतिकरः ॥२७॥

यदि जन्म लग्न सम हो तो ब्रह्माधिष्ठित ग्रह से उत्क्रम से ब्रह्मदशा का प्रारम्भ होगा। अगली दशाओं के लिए उल्टे क्रम अर्थात् उत्क्रम से गणना होगी।

दशावर्ष का ज्ञान पूर्वोक्त प्रकार से ही होगा।

पूर्वोक्त चतुर्थ बल का निरूपण

पापदृग्योगस्तुंगादिग्रहयोगः ।२८।

जिस राशि पर पापग्रहों की दृष्टि या योग हो तो वह राशि चतुर्थ बली होती है।

यदि कोई राशि उच्चगत, स्वक्षेत्रगत, मूल त्रिकोणगत, मित्रादि राशिगत शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, वह राशि भी चतुर्थ बली होगी।

पूर्वोक्त चरदशा का विशेष नियम

पंचमे पदक्रमात्प्राक् प्रत्यक्त्वं चरदशायाम् ॥२९॥

मेष से मिथुन तक विषम पद, कर्क से कन्या तक सम पद, तुला से धनु तक विषम पद व मकर से मीन तक सम पद राशियाँ चर दशा के प्रसंग में समझनी चाहिए।

यदि लग्न से नवम स्थान में विषम पद राशि हो तो क्रम से दशाओं का निर्धारण होगा। अर्थात् पहले मेष की, फिर वृष, मिथुन आदि दशाएं क्रमशः होंगी।

यदि नवम भाव में समपद राशि हो तो गणना उत्क्रम (मीन, कुम्भ, मकरादि) से होगी। इस प्रकार चर दशाओं में दशाओं का क्रम निर्धारित कर लेना चाहिए।

महर्षि पराशर ने भी ऐसा ही माना है— (दशा० श्लोक ११६)

पीछे अध्याय १-१-२५, २७ में जो गणना प्रकार बताया गया है, उसी के आधार पर दशाओं के वर्ष निश्चित किए जाएँगे। इस सूत्र में निर्दिष्ट प्रकार से दशाओं का क्रम अर्थात् पहली, दूसरी, तीसरी आदि दशाएँ जानी जाएँगी।

अत्र शुभ केतुः ॥३०॥

जैमिनीयमत में केतु को शुभ फलदायक माना जाता है। अर्थात् केतु को यहाँ शुभ माना जाएगा। पहले भी शुभाशुभ ग्रहों के निर्णय में केतु को शुभ माना है। अतः जो लोग पूर्वसूत्रोक्त 'चरदशायाम्' शब्द को इस सूत्र के साथ जोड़कर केवल चरदशा में केतु शुभ है, ऐसा अर्थ करते हैं, वह असंगत व भ्रामक है।

इति पं० सुरेशमिश्र विरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्रभाष्ये
द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः॥

चतुर्थः पादः

पूर्वोक्त द्वितीय बल का उपयोग

द्वितीयं भावबलं चरनवांशे ।।१।।

पिछले पाद में राशीश, बृहस्पति व बुध से दृष्ट होने पर राशि को प्राप्त होने वाला द्वितीय प्रकार का बल चरनवांश राशि की दशा में फलादेश हेतु प्रयोग में लाया जाएगा।

आशय यह है कि जैसे पहले सूत्र २-३-१८ में कह चुके हैं कि शूलनिर्याण दशा का विचार करने में प्रथम बल का विचार होगा। जैसे वहाँ देखना है कि लग्न या सप्तम में से कौन बली है। तब प्रथम बल अर्थात् 'कारक योग: प्रथमो भानाम्' सूत्र के आधार पर देखा जाएगा कि किसमें अधिक संखया वाले या उच्चादि राशिगत अथवा अधिक अंश वाले ग्रहों की स्थिति है। तदनुसार उक्त स्थिति से युक्त राशि को बली माना गया था।

अब चरराशि की नवांश दशा बनाने में भी पीछे बताया है कि यह दशा विषम में लग्न से क्रमश: व सम में उत्क्रम से शुरू होगी। यहाँ ऐसा विवाद नहीं है कि बलवान् से दशारम्भ हो, यहाँ तो लग्न से ही दशारम्भ होगा। केवल क्रम या उत्क्रम का भेद है। अत: इस दशा में जिस राशि को राशीश, बृहस्पति व बुध की दृष्टि प्राप्त हो या ये जहाँ स्थित हों तो उस राशि की दशा का शुभफल होगा। ऐसा अर्थ सूत्रों से ही आता है। पहले नवांश दशा में सूत्र २-१-१५ में पापदृग्योग होने पर मृत्यु बता चुके हैं। अत: इनके योग होने पर शुभफल स्वयं सिद्ध है। शेष राशियों में सामान्य प्रकार से बलाबल का निर्णय इस दशा प्रकार से होगा।

द्वारराशि व बाह्यराशि का विवेक

दशाश्रयोद्वारम् ।।२।।
ततस्तावतिथं बाह्यम् ।।३।।

जिस राशि की दशा वर्तमान हो, वही राशि द्वार राशि कहलाती है। इसी द्वारराशि को पाकराशि भी कहते हैं।

चरस्थिरादि दशा में लग्न से या सप्तम भाव से या ब्रह्मग्रहाधिष्ठित ग्रह से दशाओं का प्रारम्भ होता है, ऐसा पीछे यथा प्रसंग बताया जा चुका है। देखें सूत्र २-१-१५। आद्यदशा से यह द्वारराशि जितनी आगे हो, द्वारराशि से उतनी राशि आगे ही बाह्यराशि होती है। यही भोगराशि है। ये पाक व भोगराशियाँ सभी दशाओं में होती हैं।

द्वारबाह्य राशियों का फल

तयोः पापे बन्धयोगादिः ।।४।।

जन्म समय इन द्वारबाह्य राशियों पर यदि पापग्रह स्थित हों तो इनकी दशा में बन्धनयोग होता है।

इस विषय में वृद्ध वचन भी उपलब्ध है—

पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोव्यथा। (वृ. का.)

'पाकराशि व भोगराशि यदि पापग्रहों से युक्त हो तो इनकी दशा में शारीरिक व मानसिक कष्ट होता है।'

उक्त नियम का अपवाद

स्वर्क्षेऽस्य तस्मिन्नोपजीवस्य ।।५।।

यदि उक्त पाकराशि व भोगराशि में पापग्रह अपनी राशि में स्थित हो और उसके समीप बृहस्पति स्थित हो तो यह बन्धनादिफल नहीं होता है।

भग्रहयोगोक्तं सर्वमस्मिन् ।।६।।

सभी दशाओं में पाकराशि व भोगराशि के आधार पर प्राप्त फल और इनमें स्थित ग्रहयोगों के आधार पर प्राप्त फल का परस्पर समन्वय करके ही दशाओं का फल कहना चाहिए।

अर्थात् दशाओं का फल दशाश्रय राशि (पाकराशि) व द्वारराशि (भोगराशि) के आधार पर ही घटित होता है। परन्तु वहाँ ग्रहयोगों का अन्यत्र इसी ग्रन्थ या ग्रन्थान्तरों में प्रोक्त फल का भी समन्वय आवश्यक है।

केन्द्र दशा का ज्ञान

पितृलाभप्राणितोऽयम् ।।७।।

केन्द्र दशा भी एक दशा प्रकार है। केन्द्र दशा साधन के लिए लग्न, सप्तम भाव में से जो बलवान हो उसका ग्रहण करना चाहिए। उसी बलवान राशि से यह केन्द्र दशा प्रारम्भ होती है। इस विषय में वृद्धवचन है—

बलिनः शुक्रशशिनोः केन्द्राख्यां तु दशां नयेत् ।

पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद् दर्पणतो नयेत् ।। (वृ. का.)

बलवान् शुक्र (लग्न) या शशि (सप्तम) से केन्द्र दशा का प्रारम्भ मानना चाहिए। यदि वह विषम राशि हो तो उक्त प्रकार क्रम से और समराशि हो तो उत्क्रम से ही दशारम्भ होगा।'

केन्द्रदशा का क्रम

प्रथमे प्राक्प्रत्यक्त्वम् ।।८।।

यदि यह बलवान राशि चरराशि हो तो राशि क्रमानुसार दशाओं की गणना होगी। अर्थात् लग्न या सप्तम से अग्रिम भावों में स्थित राशियों की दशा क्रमानुसार होगी। यदि विषम राशि हो तो लग्न द्वितीयादि क्रम व समराशि हो तो द्वादशादिक्रम से भावों को गिनें।

द्वितीये रवितः ।।९।।

यदि उक्त लग्न या सप्तम भावगत राशि स्थिर हो तो केन्द्रदशा में षष्ठ-षष्ठ भावस्थ राशि की दशाएँ क्रमानुसार होंगी। अर्थात् लग्न की पहली दशा निर्णीत हुई हो तो दूसरी दशा लग्न से षष्ठगत राशि की, तीसरी दशा उससे षष्ठगत अर्थात् एकादशगत राशि की, चौथी दशा उससे षष्ठ चतुर्थ भावगत राशि की इत्यादि क्रम से होंगी। यदि प्रथम राशिदशा सम हो तो षष्ठ-षष्ठ भाव की गणना उत्क्रम से करें, अन्यथा क्रम गणना रहेगी।

पृथक् क्रमेण तृतीये चतुष्टयादि ।।१०।।

यदि उक्त बली राशि द्विस्वभाव संज्ञक हो तो उससे अगली दशा उससे केन्द्रस्थ राशि की, फिर पणफरस्थ राशि की और फिर आपोक्लिमस्थ राशि की दशा होगी।

यह सूत्र १० का क्रम विषम राशियों में ही लागू होगा। यदि द्विस्वभाव राशियाँ हों तो यही क्रम उल्टे प्रकार से लागू होगा।

इसे सरल शब्दों में समझाने का प्रयास करते है।

(i) केन्द्रदशा जानने के लिए लग्न या सप्तम भावगत राशि के बल का विवेक करें।

(ii) दोनों में से जो राशि बली हो, उसी की पहली दशा होगी।

(iii) यदि वह बली राशि चर है तो—

(क) समराशि अर्थात् कर्क, मकर है तो पहली दशा उसी की व अगली दशाएँ उत्क्रम से लगातार रहेंगी। जैसे कर्क, मिथुन, वृषादि।

(ख) यदि वह चरराशि (७-१) विषम है तो सीधी लगातार दशाएँ होंगी। जैसे—मेष, वृष, मिथुनादि क्रम।

यदि वह बली राशि स्थिर है तो—

(क) समराशियों (२-८) में विपरीत क्रम से छठी-छठी राशि की दशा होगी। जैसे—वृष, धनु, कर्क आदि।

(ख) यदि विषम राशि (५-११) हो तो सीधे क्रम से छठी-छठी राशि अर्थात् सिंह मकर, मिथुन आदि क्रम रहेगा।

यदि वह द्विस्वभाव राशि हो तो—

(क) विषम राशियों (३-९) में पहली दशा उसी राशि की, सीधे क्रम से पंचम राशि की फिर उससे (पहली दशाराशि से) नवम राशि की दशा होगी। इस प्रकार चतुर्थ केन्द्र से १,५,९ राशियों की दशाएँ, फिर शेष केन्द्रों से भी १-५-९ राशियों की दशाएँ होंगी।

(ख) यदि समराशि द्विस्वभाव (६,१२) हों तो उल्टे क्रम से १-५-९ गिनें। जैसे प्रथम दशा उसी बली राशि की, दूसरी दशा उससे उत्क्रम से ५ व ९ राशियों की, इसी प्रकार शेष केन्द्रों की भी उत्क्रम से १,५,९ राशियों की दशाएँ रहेंगी।

केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम आदि की गणना किस प्रकार होगी, इस विषय में ध्यान रखना है कि पाँचवें-पाँचवें भाव की राशि लेनी है। समझिए, माना पहली दशा मिथुन (द्वि० स्व० व विषम) की है। तब दूसरी दशा पणफरस्थ की होगी; क्योंकि लग्न या सप्तम दोनों ही केन्द्र हैं और इन्हीं भावों में स्थित राशि से दशा का प्रारम्भ होता है। अस्तु तब केन्द्र

से अगली दशा पणफर की होगी, परन्तु उससे ठीक अगला पणफर नहीं लेना है। पहली दशा माना मिथुन की है, यह लग्न में स्थित है तो दूसरी दशा इससे पाँचवें भाव में(पणफर) स्थित राशि की अर्थात् तुला की होगी, तीसरी दशा इससे पंचस्थ अर्थात् नवम भाव (आपोक्लिम) गतराशि कुम्भ की होगी। फिर द्वितीय केन्द्रगत कन्या की, पाँचवी दशा मकर की, छठी दशा वृषभ की इत्यादि क्रम रहेगा।

यदि समराशि हो तब भी केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम का क्रम इसी प्रकार उत्क्रम से पाँचवें-पाँचवें भाव से ही लेना होगा। इसका स्पष्ट निर्देश वृद्धवचन में है। अतः पाराशरमतानुसार दशाक्रम निर्धारण करके भ्रम का सूत्रपात न करें।

चरेऽनुज्झितमार्गः स्यात् षष्ठषष्ठादिकाः स्थिरे।
उभये कण्टकाज्ज्ञेया लग्नपंचमभाग्यतः।।
चरस्थिरद्विस्वभावेष्वोजेषु प्राक्क्रमो मतः।
तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यं व्युत्क्रमतोऽखिलम्।। (वृ० का०)

चरराशियों में अनुज्झितमार्ग (प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि क्रम) से गणना होगी।

स्थिर राशियों में षष्ठ-षष्ठ राशि की दशाएँ होंगी।

द्विस्वभाव राशियों में गणना परस्पर १,५,६ भावगत राशियों अर्थात् पाँचवीं-पाँचवीं राशि से गणना होगी। चर स्थिर द्विस्वभाव राशियों में यदि विषम हो तो यह पूर्वोक्त क्रम से होगी। यदि सम हो तो उत्क्रम से गणना होगी।

इस दशा में प्रत्येक राशि के दशावर्ष ६-६ होते हैं।

पाराशर होराशास्त्र में वर्णित केन्द्र दशा में जैमिनीयमत की अपेक्षा थोड़ा भेद है। यहाँ पर शुद्ध जैमिनीयमत से विवेचन किया गया है। पराशरमत के लिए पाराशर होराशास्त्र का दशाध्याय देखें। यहाँ हम यह भी बता देना चाहते हैं, जैमिनीय सूत्रों के टीकाकारों ने इन सूत्रों की व्याख्या को भ्रामक ढंग से प्रस्तुत किया है। वहाँ तथ्यों की त्रुटि स्पष्ट प्रतीत होती है। यह केन्द्रादि दशा कारकों के आधार पर भी निर्णीत होती है। इस प्रकार इसके दो भेद होते हैं—लग्नादि केन्द्र दशा व कारकादि केन्द्र दशा। यहाँ तक पहले प्रकार का विवेचन हो चुका है। अब दूसरा प्रकार बताया जा रहा है।

कारकाश्रित केन्द्रदशा का ज्ञान

स्वकेन्द्रस्थाद्याः स्वामिनो नवांशानाम् ।।११।।

आत्मकारक जिस राशि में स्थित हो उसकी पहली केन्द्र दशा होती है। फिर आत्मकारक से केन्द्र स्थानों की तीनों राशियों में बल क्रम से, अर्थात् बली की पहले, कम बली की बाद में दशा होगी।

इसी प्रकार केन्द्रगत राशियों के बाद पणफरस्थ राशियों की दशा बलक्रम से होगी। फिर आपोक्लिमस्थ राशि की दशाएँ बलक्रम से होंगी।

आत्मकारक ग्रह जहाँ स्थित हो, उसे लग्न मानें। फिर उससे केन्द्र (४-७-१०) भावगत राशियों में बलानुसार क्रम निर्धारित करें। फिर क्रमशः पणफरादि भावों में स्थित राशियों की बलक्रम से दशाएँ निर्धारित कर लें। यदि वह समराशि में हो तो केन्द्र, आपोक्लिम, पणफर यह क्रम रहेगा।

यदि कारक से केन्द्रादि गत ग्रहों की दशाएँ जानना अभीष्ट हो तो आत्मकारक की पहली दशा, दूसरी दशा उससे केन्द्रस्थ ग्रहों की बलानुसार होगी। फिर पणफरादि भावगत ग्रहों की बलानुसार दशाएँ होंगी।]

इस केन्द्र दशा में (लग्नादि व कारकादि) प्रत्येक दशा ९-९ वर्षों की होती है।

यदि ग्रहों से केन्द्रादि दशा ज्ञात कर रहे हों तो उनके दशा-वर्ष आगे सूत्र १३ में बताए जा रहे हैं।

इस सारे विषय को हृदयंगम करने के लिए अपने पूर्वोक्त उदाहरण को लें। कर्क लग्न है। लग्न से सप्तम में अधिक ग्रह हैं। अतः सप्तम भाव बली है। तब पहलो केन्द्रादि दशा मकर राशि की है। यह मकर राशि सम और चर है। अतः गणना उत्क्रम से होगी। चर राशियों में द्वादशादि गणना होगी। अतः दशाक्रम इस प्रकार होगा –

१-मकर, २-धनु, ३-वृश्चिक, ४-तुला, ५-कन्या, ६-सिंह, ७-कर्क, ८-मिथुन, ९-वृष, १०-मेष, ११-मीन, १२-कुम्भ।

अब कारकाश्रित केन्द्रदशा को लें। आत्मकारक शुक्र कुम्भराशि में स्थित है। पहली दशा कुम्भ राशि की है। कुम्भ से केन्द्रस्थ राशियाँ वृष, सिंह, वृश्चिक हैं। इनमें वृश्चिक राशि, सिंह व वृष उत्तरोत्तर अल्प बली हैं।

अब पणफर राशियों को लें। मीन, मिथुन, कन्या, धनु राशियाँ पणफर में हैं। ग्रहाधिष्ठित राशि मिथुन सबसे बली है। शेष राशियां ग्रहरहित हैं। अब तीनों द्विस्वभाव राशियाँ हैं। अतः समान निसर्ग बली हैं। इनके स्वामी क्रमशः बुध चर राशि में व गुरु स्थिर राशि में हैं। अतः धनु, मीन राशियाँ कन्या की अपेक्षा अधिक बली हैं। इनमें भी धनु के दोनों ओर ग्रह स्थित हैं। अतः यही सर्वाधिक बली है। अतः धनु मीन व कन्या उत्तरोत्तर अल्पबली हैं।

अब आपोक्लिमस्थ राशियों को लें। मेष, कर्क, तुला, मकर राशियाँ आपोक्लिम में हैं। इनमें मकर राशि बली होगी। शेष राशियाँ ग्रहरहित हैं। इनमें सभी चर राशियाँ हैं अतः निसर्ग बल समान है। मेष का स्वामी स्वक्षेत्री है। अतः मेष की सबलता रहेगी। शुक्र मित्रक्षेत्री है। अतः तदपेक्षया कम बली तुला होगी। तदुपरान्त कर्क राशि रहेगी।

पितृ चतुष्टयवैषम्य बलाश्रयः स्थितः ॥१२॥

दूसरे प्रकार की केन्द्र दशा में प्रथम राशि दशा से अगली दशाएँ केन्द्र, पणफर, आपोक्लिमगत राशियों में से होगी। इनमें भी राशियों का क्रम बलानुसार स्थापित किया जाएगा। दशारम्भ सभी केन्द्रों में से सबसे बली राशि से होगा। यदि वह सम हो तो केन्द्र, आपोक्लिम, पणफर यह क्रम रहेगा।

स तल्लाभयोरावर्तते ॥१३॥

कारकाश्रित केन्द्रदशा में ग्रहों की भी दशा का उल्लेख पहले सूत्र ११ में कर चुके हैं। तब राशियों की दशा के तो वर्ष ९-९ होंगे। परन्तु ग्रहों की दशा बनाने पर वर्ष जानने का प्रकार क्या होगा ? इस विषय में यहाँ बताया जा रहा है। पहली दशा आत्मकारक की होगी। लग्न से व सप्तम से बारी-बारी से आत्मकारक तक गिनें। जो अधिक वर्ष हों उन्हें ही दशावर्ष मानें।

शेष ग्रहों में से केन्द्रगत, पणफरगत व आपोक्लिमगत ग्रहों की दशाएँ रहेंगी, अतः क्रमानुसार तत्तत् ग्रह से आत्मकारक तक गिनकर प्राप्त वर्षों को उन-उन ग्रहों के दशावर्ष मानें। यहाँ गणना का प्रकार क्रम व उत्क्रम से यथा-प्रसंग होगा। यदि कारक सम राशि में हो तो

त्क्रम से अन्यथा क्रम से गणना होगी। इस विषय में वृद्ध मत बिल्कुल पष्ट है—

'लग्नात्कारकपर्यन्तं सप्तमाद् वा दशां नयेत्।
उभयोरधिका संख्या कारकस्य दशा समाः॥
तद्युक्तानां च ततुल्यं प्रत्येकं स्युर्दशाः क्रमात्।
ग्रहाः कारकपर्यन्तं संख्यान्यस्य दशा भवेत्॥
कारकस्तद्युतश्चादौ तत्केन्द्रादिस्थितास्ततः।
दशाक्रमेण विज्ञेयाः शुभाशुभफलप्रदाः॥' (वृ. का.)

(i) लग्न से व सप्तम से आत्मकारक तक गिनें। दोनों गणनाओं से प्राप्त वर्षों में से अधिक वर्ष आत्मकारक की दशा के होंगे।

(ii) यदि आत्मकारक के साथ कोई ग्रह स्थित हो तो उसकी दशा के भी आत्मकारक के समान ही दशावर्ष होंगे तथा उसकी दशा कारक के तुरन्त बाद होगी।

(iii) अन्य ग्रहों के दशा वर्ष ग्रह के आत्मकारक पर्यन्त गणना से प्राप्त संख्या तुल्य होंगे।

(iv) पहली दशा आत्मकारक की, दूसरी दशाएँ आत्मकारक के साथ स्थित ग्रहों की बलानुसार होंगी।

(v) आत्मकारक के साथ कोई ग्रह न हो तो पहले आत्मकारक से केन्द्रगत ग्रहों की, फिर पणफरगत ग्रहों की और फिर आपोक्लिमगत ग्रहों की दशाएँ बलक्रम से होंगी। इस प्रकार ये दशाएँ शुभ व अशुभ फल की द्योतक होती हैं।

यदि आत्मकारक सम राशि में हो तो केन्द्र आपोक्लिम इस क्रम से दशाएँ समझनी चाहिए। जहाँ कारक स्थित हो वही लग्न केन्द्र माना जाएगा।

कारकाश्रित केन्द्र दशा में राशियों की दशा ९-९ वर्ष की होती है। वृद्धों ने इस दशा के विषय में कहा है—

'प्रतिभं नववर्षाणि कारकाश्रयराशितः।
जन्म सम्पद्‌विपत् क्षेमः प्रत्यरिः साधकोवधः॥
मैत्रं परममैत्रं चेत्येवमन्तर्दशां नयेत्॥' (वृ. का.)

'कारकाश्रित राशियों की केन्द्रदशा में प्रत्येक राशि के दशा वर्ष

९ होते हैं। इन ९ वर्षों में क्रमशः जन्म सम्पद, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि साधक, वध, मैत्र व परम मैत्र ताराओं की १-१ वर्ष की अन्तर्दशाएं होती हैं।'

इस प्रकार राशिदशा में अन्तर्दशा जानकर भी फलादेश करना चाहिए।

केन्द्रदशा का फल

स्वामिबलफलानि प्राग्वत् ।।१४।।

इस दशा में भी पूर्वोक्त पाप-शुभ युक्तत्व के आधार पर ग्रह व राशियों की दशा का फल जानना चाहिए।

मण्डूक दशा का निरूपण

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयो मण्डूकस्त्रिकूटः ।।१५।।

लग्न और सप्तम भाव में से जो अधिक बली हो, उसी से इस मण्डूकदशा का प्रारम्भ होता है। यदि यह राशि विषम हो तो क्रम से अन्यथा उत्क्रम से गणना होती है।

इसी दशा का दूसरा नाम त्रिकूट दशा भी है। यहाँ चर स्थिर द्विस्वभाव राशियों का अथवा केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम भावों का एक साथ ग्रहण होता है। अतः इसका नाम त्रिकूट है, ऐसा प्राचीनों ने कहा है।

जिस प्रकार मेंढक उछलकर चलता है, वैसे ही इसमें दशाक्रम निर्धारित किया जाता है। अर्थात् जिस राशि से दशा का प्रारम्भ हो उस राशि से अगली दो राशियों को छोड़कर यह दशा प्रवृत्त होती है। जैसे पहली दशा वृष की हो तो अगली दशाओं का क्रम सिंह, वृश्चिक आदि प्रकार से होगा। गणना में क्रम व उत्क्रम का अवश्य ध्यान रखें। आशय यह है कि पहले सभी चर राशियों की, फिर स्थिर राशियों की और फिर द्विस्वभाव राशियों की दशा होती है। अतः त्रिकूट दशा अथवा मंडूक दशा इसका नाम सार्थक है।

वृद्धों का कथन है कि विषम राशि में लग्न व सप्तम में से बली राशि से क्रमशः दशा प्रारम्भ होती है, परन्तु सम राशि के प्रसंग में उत्क्रम

ही यह दशा प्रारम्भ होगी—

'बलिनः शुक्रशशिनोर्ज्ञेया मण्डूकदा दशा ।

पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद् दर्पणतो नयेत् ॥' (वृ० का०)

'सम राशि में लग्न द्वादश एकादशादि क्रम व विषम में प्रथम द्वितीयादिभाव क्रम होगा ।' पाराशर होराशास्त्र के अनुसार इस दशा में स्थिर दशा की तरह ही ७, ८, ९ दशा वर्ष होते हैं । परन्तु जैमिनीय मत में ९-९ वर्ष होते हैं । हमें यह ९ वर्ष वाला पक्ष अधिक समीचीन प्रतीत होता है । कारण यह है कि चरस्थिर द्विस्वभाव क्रम से यदि दशावर्ष क्रमशः ७, ८, ९ मानें तो दशा का परम मान ९६ वर्ष ही बैठता है। किन्तु ९ वर्ष वाले पक्ष में परमायु १०८ वर्ष की होती है जो अधिक समीचीन है ।

प्रस्तुत उदाहरण में लग्न से सप्तम स्थान अधिक बली है, अतः सप्तमस्थ राशि मकर से मंडूक दशा प्रारम्भ होगी । यह राशि सम है, अतः उत्क्रम से गणना होगी । अतः दशाक्रम इस प्रकार रहेगा—मकर, तुला, कर्क, मेष, धनु, कन्या, मिथुन, मीन, वृश्चिक, सिंह, वृष, कुम्भ की क्रमशः दशाएँ होंगी । आप देख रहे हैं कि प्रत्येक दशा के बीच से दो-दो राशियाँ छोड़ दी गई हैं । अतः दो राशि छोड़कर गणना क्रम की जाँच की जा सकती है । मकर राशि सम थी अतः उत्क्रम से गणना की है ।

निर्याण लाभादि शूलदशाफले ॥१६॥

पुरुषे समाः सामान्यतः ॥१७॥

पहले शूल दशा का निरूपण हो चुका है । पहले मरणकारक राशि का निश्चय कर लें । रुद्राश्रित राशि, इसकी त्रिकोण राशियाँ, महेश्वरा-धिष्ठित राशि व इसकी त्रिकोण राशियाँ इत्यादि मरण राशियों में बली मारक राशि का निर्णय करें ।

इस बली राशि से सप्तम राशि से शूल दशा का निरूपण गणनादि करके फलादेश में प्रयुक्त करना चाहिए । अर्थात् मारक राशि से प्रारम्भ होने वाली यह दशा निर्याण शूल दशा कहलाती है ।

जहाँ दशा वर्षों का मान अस्थिर हो, वहाँ विषमराशि में क्रम से भावेशादि तक गिनकर व समराशि में उत्क्रम से भावेशादि तक गिनकर दशा वर्षों का निश्चय करें ।

जैसे चरदशा, वर्णददशा, कारकादिदशा में भावेशादि तक गिनकर दशावर्ष जानने का विधान (नाथान्ताः समाः प्रायेण) किया जा चुका है ऐसे स्थानों पर गणना विषमराशि में क्रम से व समराशि में उत्क्रम से गिनकर निश्चय करें।

जहाँ पर स्पष्ट निर्देश दिए हों, वहाँ पर निर्देशानुसार ही दशावर्ष होंगे। जैसे स्थिर दशा में ७, ८, ९ वर्ष, नवांश दशा में ९ वर्ष इत्यादि।

अथवा जहाँ दशा वर्षों का निर्देश न किया गया हो, वहाँ पर दशा-वर्ष सर्वत्र ९-९ समझने चाहिए। इसका कारण यह है कि पुरुष शब्द का अर्थ कटपयादि से ९ आता है। हमें यही अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

पं० नीलकंठ ने इस सूत्र का अर्थ किया है कि समराशि में सप्तम-राशि से व विषम राशि में उसी से दशारम्भ होता है। सम में उत्क्रम व विषम में क्रम से गणना होगी, इत्यादि अर्थ असंगत व मुनि वचन के विरुद्ध है।

पराशर ने भी इन दशाओं का ग्रहण किया है, परन्तु दशा वर्षों में भेद है। यह उपर्युक्त नियम केवल वहीं पर लागू होगा जहाँ जिस दशा के विषय में कोई स्पष्ट नियम प्राप्त नहीं होगा।

इस सूत्र में एक बात और साफ हो जाती है कि इन दशाओं में प्रत्येक दशा सामान्यतः ९-९ वर्ष की होती है। पुरुष शब्द का अर्थ कट-पयादि से ९ आता है।

विंशोत्तरी आदि दशाओं का कथन

सिद्धा उडुदाये ॥१८॥

उडु अर्थात् नक्षत्रों के आधार पर जानी जाने वाली दाय अर्थात् दशाओं में ये वर्षमान सिद्ध अर्थात् प्रसिद्ध ही हैं।

आशय यह है कि विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी आदि दशाएँ नक्षत्रों के आधार पर जानी जाती हैं और उनमें किस ग्रह की दशा कितने वर्षों की होगी, यह बात ज्योतिष जगत् में प्रसिद्ध है। इससे सिद्ध होता है कि विंशोत्तरी आदि दशाएँ जैमिनि मुनि के समय में खूब प्रसिद्ध हो चुकी थीं। महर्षि पराशर ने इन्हें केवल प्रतिस्थापित किया है।

उडुदशाओं के वर्षमान व दशाक्रम, पाराशर होराशास्त्र से देख लेने चाहिए। नक्षत्रों से सिद्ध होने वाली दशाएँ ये हैं—विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, षोडशोत्तरी, द्वादशोत्तरी, पंचोत्तरी, शताब्दिका, चतुरशीतिसमा, द्विसप्ततिसमा, षष्टिहायनी, षट्त्रिंशत्समा इत्यादि।

योगार्ध दशा का विवेचन

जगत्तस्थुषोरर्धं योगार्धे ॥१९॥

पहले चर व स्थिर दशा का साधन बता चुके हैं। इन दोनों दशाओं में किसी राशि के जितने वर्ष हों उन्हें जोड़कर २ से भाग देने पर प्राप्त लब्धि को योगार्ध दशा में उस राशि के वर्ष समझने चाहिए।

इस विषय में वृद्धों का वचन है—

'योगार्धप्रथमा प्रोक्ता द्वितीया दृष्टिरुच्यते।
चरस्थिरविमिश्रार्धा दशा योगार्धका मता ॥
बलिनस्तु दशा नेया राशेर्हि शशिशुक्रयोः।
स्त्री चेद्दर्पणतो नेया पुरुषश्चेत्ततो नयेत् ॥
सा दशा त्रिविधा प्रोक्ता द्रेष्काणांशर्क्षभेदतः।
दृष्टियोगपदाद्यैस्तु फलं ब्रूयाद् विचक्षणः ॥ (वृ. का.)

योगार्ध दशा व दृग्दशा भी होती है। योगार्ध दशा चर व स्थिर के आधे मान के बराबर होती है।

बलवान् लग्न या सप्तम से दशा विषम राशि में क्रम से व सम राशि में उत्क्रम से चलेगी।

यह दशा द्रेष्काण, नवांश व राशि भेद से तीन प्रकार की होती है। इस दशा में ग्रहदृष्टि, योग व पद आदि के आधार पर फलादेश करना चाहिए।

सरल प्रकार यह है कि लग्न सप्तम में से बली राशि ज्ञात करें।

उसी बली राशि से यह दशा शुरू होगी।

अब उस राशि के चरदशा वर्षों व स्थिर दशावर्षों को जोड़कर आधा कर लें। यही योगार्ध इस दशा में उस राशि का वर्षमान होगा। इसी पद्धति से अन्य राशियों का दशामान भी जान लें।

गणना में यहाँ भी क्रम व उत्क्रम का यथाप्रसंग अवश्य ध्यान रखें।

सभी दशाओं के नाम सार्थक हैं। जैसे चरदशा अर्थात् जिसमें वर्ष मान सदा चर (अस्थिर) होता है। स्थिर दशामान वाली दशा स्थिर दशा, केन्द्र से शुरू होने वाली केन्द्रादि दशा इसी प्रकार योग अर्थात् चर स्थिर दशावर्षों के योग का अर्ध भाग जिसमें दशामान हो, ऐसी दशा योगार्ध दशा कहलाती है।

स्थूलादर्श वैषम्याश्रयमेतत् ॥२०॥

लग्न व सप्तम में से जो बली हो उससे ही इस दशा का प्रारम्भ सम विषम राशि के आधार पर पूर्वोक्त क्रम गणना व उत्क्रम गणना के नियम से माना जाएगा। इसमें सभी राशियों की दशा होती है।

दृग्दशा निरूपण

कुजादिस्त्रिकूट पदक्रमेण दृग्दशा ॥२१॥

सबसे पहली दृग्दशा लग्न से नवम भाव में स्थित राशि की होगी।

उससे अगली दशाएँ नवम भावस्थ राशि से दृष्टराशियों की होंगी। फिर दशम भावगत राशि व उससे दृष्टराशियों की दशाएँ, फिर एकादश भावगत राशि व उससे दृष्टराशियों की दशाएँ होंगी। इस प्रकार राशि दृष्टि पर आधारित यह दृग्दशा होती है।

पहले सूत्र १-१-२,३ में राशियों की दृष्टि के विषय में बताया गया है। सुविधार्थ पुनः संक्षेप में बता रहे हैं—

(i) सभी चर राशियाँ अपने से द्वितीयस्थ स्थिर को छोड़कर शेष तीनों स्थिर राशियों को देखती हैं।

(ii) स्थिर राशियाँ अपनी निकटतम (द्वादशस्थ) चर राशि से रहित शेष तीनों चर राशियों को देखती हैं।

(iii) द्विस्वभाव राशियाँ स्वयं को छोड़कर शेष द्विस्वभाव राशियों को देखती हैं।

लग्न से नवम भाव में स्थित राशि की पहली दृग्दशा होगी। अब उपर्युक्त नियमानुसार इस राशि की दशम व एकादश भावों में स्थित राशियों की जहाँ-जहाँ दृष्टि हो, उनकी पृथक् सूची बना लें। और इस प्रकार दशाक्रम निर्धारित कर लें।

१. लग्न से नवमस्थ राशि की प्रथम दशा।

२. नवमगत राशि से दृष्टराशियों की दशाएँ।

३. दशमगत राशि की दशा।

४. दशमगत राशि से दृष्ट राशि की दशाएँ।

५. एकादश भावगत राशि की दशा।

६. एकादश भावस्थ राशि से दृष्ट राशियों की दशाएँ।

क्रम निर्धारण में विषम राशि में क्रम गणना व समराशि में उत्क्रम गणना होगी, यह एक सामान्य नियम है, लेकिन यहाँ दृग्दशा में क्रम-निर्धारण का प्रकार विशेष होगा। इस विषय में आगामी सूत्रों में बताया जा रहा है।

दृग्दशा क्रम में विशेष नियम

मातृधर्मयोः सामान्यं विपरीतमोजकूटयोः ॥२२॥

यथा सामान्यं युग्मे ॥२३॥

पहले समपद व विषमपद के विषय में बता चुके हैं। मातृधर्म (५, ११) सिंह व कुम्भ राशियों की गणना सामान्य प्रकार से अर्थात् क्रमानुसार गणना करें।

ओजकूट अर्थात् विषमपद में स्थित मेष, वृष, तुला, वृश्चिक हैं। इनमें विपरीत क्रम अर्थात् मेष व तुला में उत्क्रम से और वृष-वृश्चिक में क्रम से गणना करें।

द्विस्वभाव राशियों में सामान्य नियमानुसार जो विषम राशि हों वहाँ क्रम से व समराशियों में उत्क्रम से गिनें।

सरल शब्दों में समझिए।

(i) चरराशियों में सारी गणना उत्क्रम से करें।

(ii) स्थिर में क्रमानुसार करें और द्विस्वभाव राशि में जो सम हों तो उनकी उत्क्रम से व जो विषम हों उनकी क्रम से गणना करें।

ध्यान रखिए सूत्र २२-२३ में बताए गए दृष्टि भेद का पहले अध्याय, में सूत्र १-२, ३ में बताए गए दृष्टि-भेद से कोई विरोध नहीं है। यहाँ सूत्र २२, २३ का प्रयोग चरदशा व दृग्दशा में होगा। जबकि वह पूर्वोक्त सूत्र सामान्य नियम की स्थापना करता है। वहीं पर **'न क्वचित'** सूत्र कहा था,

उसका सम्बन्ध इन सूत्रों से है ।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न कर्क है । नवम भाव में द्विस्वभाव राशि मीन स्थित है । अतः पहली दशा मीन की हुई ।

इसकी दृष्ट राशियाँ मिथुन, कन्या व धनु हैं । मीन राशि सम होने के कारण उत्क्रम से दूसरी दशा धनु की, तीसरी दशा कन्या की व चौथी दशा मिथुन राशि की होगी ।

पाँचवीं दशा दशम भावस्थ राशि मेष की होगी ।

मेष की दृष्ट राशियाँ ५, ८, ११ हैं । यहाँ मेष राशि चर है, अतः सम-विषम का प्रश्न नहीं है । चर की दृष्ट राशियों को नियमानुसार उत्क्रम से रखा तो छठी दशा कुम्भ की, सातवीं दशा वृश्चिक की व आठवीं दशा सिंह की होगी ।

नौवीं दशा एकादश भावगत वृष राशि की होगी । वृष एक स्थिर राशि है, अतः इससे दृष्ट राशियों को क्रम से रखेंगे । इसी कारण दसवीं दशा कर्क की, ग्यारहवीं दशा तुला की व बारहवीं दशा मकर की रहेगी ।

इस दशा प्रकार में वर्षमान का सामान्य सूत्र २-४-१७ लगेगा, अतः प्रत्येक दशा ९ वर्ष की ही मानी जाएगी । पाराशर मत में स्थिर दशा की तरह दशा वर्ष माने गए हैं ।

त्रिकोण दशा का निरूपण

पितृमातृधर्मप्राण्यादिस्त्रिकोणे ।।२४।।

लग्न, पंचम व नवम—ये तीन भाव परस्पर त्रिकोण हैं । अतः इनमें से सर्वाधिक बली राशि की पहली दशा होगी । इसके बाद शेष दशायें विषम राशि में राशिक्रम से और समराशि में उत्क्रम से लगेंगी ।

वर्ष संख्या चर दशा की तरह जानी जाएगी अर्थात् । **नाथान्ताः समाः** के आधार पर वर्ष जानिए ।

इस विषय में वृद्धों ने कहा है—

अग्रहात् सग्रहो ज्यायान् सग्रहेष्वधिकग्रहः ।
साम्ये चरस्थिरद्वन्द्वाः क्रमात् स्युर्बलशालिनः ।
लग्नत्रिकोणे यो राशिर्बलवानुक्तहेतुभिः ।
तदारभ्योन्नयेच्छ्रीमच्चरपर्यायवद्दशा ।

क्रमोत्क्रमाभ्यां गणयेदोजयुग्मेषु राशिषु।
क्रमाद् वृषे वृश्चिके च व्युत्क्रमात्कुम्भसिंहयोः ॥ (वृ० का०)

लग्न व त्रिकोणों में से बली राशि से यह दशा चर दशावत् होती है। सम में उत्क्रम व विषम में क्रम से सामान्यतः गणना होगी। परन्तु वृष और वृश्चिक में क्रम गणना व कुम्भ सिंह में व्युत्क्रम गणना रहेगी।

प्रस्तुत उदाहरण में लग्न त्रिकोण ४, ८, १२ हैं। इनमें सग्रह वृश्चिक बली है। अतः पहली दशा वृश्चिक की होगी। वृश्चिक में क्रम गणना होगी अतः दूसरी मीन व तीसरी दशा कर्क की होगी।

अब द्वितीय भाव के त्रिकोण ५,९,१ हैं। इनमें सग्रह सिंह की चौथी दशा, द्विस्वभाव बली धनु की पाँचवीं व मेष की छठी दशा रहेगी।

तृतीय त्रिकोण ६, १०, २ हैं। इनमें अधिक ग्रह मकर की सातवीं, अल्प ग्रह वृष की आठवीं व कन्या की नवीं दशा रहेगी।

चतुर्थ त्रिकोण ७, ११, ३ हैं। इनमें समान ग्रह कुम्भ व मिथुन में द्विस्वभाव बली मिथुन की दसवीं दशा, कुम्भ की ग्यारहवीं व तुला की बारहवीं दशा रहेगी। वर्षों का ज्ञान चर दशावत् किया जाएगा।

वृश्चिक के १२ वर्ष, मीन के ७ वर्ष, कर्क १ वर्ष, सिंह ७ वर्ष, धनु ८ वर्ष, मेष ७ वर्ष, मकर २ वर्ष, वृष ९ वर्ष, कन्या ८ वर्ष, मिथुन ७ वर्ष, कुम्भ ३ वर्ष व तुला के ४ वर्ष रहेंगे। आगे चक्र दिया जा रहा है। इस दशा के विषय में वृद्धों ने और भी कुछ विशेष कहा है—

'त्रिकोणदृष्टिपर्यायदशास्वेवं फलस्थितिः।
त्रिकोणाख्यदशायां तु विशेषोऽन्योऽपि कथ्यते ॥
जन्मकालग्रहस्थित्या गोचरस्थग्रहैरपि।
विचारितैः प्रवक्तव्यं स्यात् त्रिकोणदशाफलम् ॥' (वृ०का०)

'त्रिकोण दशा में जन्म लग्न व गोचर का फल समन्वय कर सुविचारित ढंग से फल कहने पर प्रत्यक्ष रूप से मिलता है।'

त्रिकोण दशा चक्र

दशा	वृश्चिक	मीन	कर्क	सिंह	धनु	मेष	मकर	वृष	कन्या	मिथुन	कुम्भ	तुला
वर्ष	१२	७	१	७	८	७	२	६	८	७	३	४
जन्म तिथि २५-१-१९५६	२५-१-१९६८	२५-१-१९७५	२५-१-१९७६	२५-१-१९८३	२५-१-१९९१	२५-१-१९९८	२५-१-२०००	२५-१-२००६	२५-१-२०१७	२५-१-२०२४	२५-१-२०२७	२५-१-२०३१

तत्र बाह्याभ्यां तद्वत् ।।२५।।

त्रिकोण दशा में भी पूर्ववत् द्वारराशि व बाह्य राशि की कल्पना कर तदनुसार फल कहना चाहिए।

इस विषय में वृद्ध वचन है—

'तदिदं चरपर्यायास्थिरपर्याययोर्द्वयोः ।
त्रिकोणाख्यदशायां च पाकभोगप्रकल्पनम् ।।' (वृ० का०)

'चरदशा, स्थिर दशा व त्रिकोण दशा में पाकराशि व भोगराशि अर्थात् द्वारराशि व बाह्यराशि की होती है।'

यदि ये राशियाँ या राशीश पापयुक्त या दृष्ट हों तो इनकी दशा शारीरिक व मानसिक कष्ट होता है।

अन्य सम्बन्धियों का विचार

धासगैरिकात्पत्नीकरात्कारकैः फलादेशः ।।२६।।

लग्न, तृतीय, सप्तम व नवम—ये भाव क्रमशः आत्मा, भ्राता, पत्नी व पिता के सन्दर्भ में विचारणीय हैं।

अतः स्वयं का फल जानने के लिए लग्न व आत्मकारक, भ्राता के लिए तृतीय भाव व भ्रातृकारक, पत्नी के लिए सप्तम भाव व स्त्रीकारक और पिता के लिए पितृकारक व नवम भाव से विचार करें।

चर कारकों के साथ स्थिर कारकों को भी देखें। तथा तत्तत् कारकों से उक्त भावों का भी विचार करें। जैसे भाई के लिए भ्रातृकारक से तृतीय स्थान भी देखें।

नक्षत्र राशि दशा विचार

तारकांशे मन्दाद्यो दशेशः ॥२७॥

यहाँ पर जन्म नक्षत्र से राशि दशा जानने का प्रकार बताया जा रहा है।

जन्म नक्षत्र के समस्त मान अर्थात् भभोग को १२ से भाग दें। इन १२ भागों में क्रमशः लग्न से लेकर सभी राशियों की नक्षत्र राशि दशा होती है। अर्थात् चन्द्रमा के नक्षत्र के भभोग का १२वाँ भाग एक राशि की दशा का मान होता है।

अब देखिए किस भाग में जन्म हुआ है। उस भाग में जो क्रम संख्या हो, जन्म लग्न से उस संख्या तक गिनें। जो राशि प्राप्त हो वही पहली दशा होगी। अब सम राशि में उत्क्रम से व विषम में क्रम से शेष दशाएँ होंगी।

पंचांग में दिए गए नक्षत्र की घड़ियों से भयात भभोग बनाते समय उसमें स्थानीय संस्कार अवश्य कर लें।

यदि पंचांग में नक्षत्रों का चार भारतीय स्टैन्डर्ड टाइम में दिया गया हो तो फिर यह संस्कार नहीं होगा। इसका कारण यह है कि पंचांगों में जो तिथि नक्षत्रादि के मान दिए जाते हैं, वे स्थानीय सूर्योदय के आधार पर ज्ञात किए जाते हैं। अतः उनमें स्थानीय संस्कार अवश्य कर्त्तव्य हैं। आजकल पंचांगों में स्टै० टा० में भी नक्षत्रादि चार दिया जाता है, अतः उसी के आधार पर भी भयात भभोग बना सकते हैं।

भयात भभोग का साधन प्रायः विंशोत्तरी दशा के भुक्त व भोग्य काल को जानने के लिए किया जाता है। जबकि आजकल चन्द्र स्पष्ट के अंशादिकों से ही सीधे दशा का भोग्य जान लेते हैं, अतः आपने भयातादि साधन न किया हो तो चन्द्रमा के अंशों से भी उक्त दशा जानी जा सकती है। एक नक्षत्र चन्द्रमा के १३°२०′ के बराबर होता है। अतः एक चरण ३° २०′ के तुल्य है। एक नक्षत्र में १२ बराबर भाग करने हैं। अतः भभोग की घड़ियों के स्थान पर यदि १३° २०′ के १२ भाग कर लें तो भी कार्य सिद्ध हो जाएगा। इस प्रकार १° ७′ एक नक्षत्र का १२वाँ भाग होता है। अब केवल जन्म नक्षत्र का आरम्भ जान लीजिए और उसमें १२ बार १° ७′ जोड़ें। ये ही जन्म लग्नादि १२ राशियाँ होंगी। इनमें से जिस भाग में

स्पष्ट चन्द्रमा पड़े वही दशारम्भ राशि है।

उदाहरण में चन्द्र स्पष्ट २ ११° ३०' है। इससे सिद्ध होता है कि आर्द्रा नक्षत्र के द्वितीय चरण में जन्म है। मिथुन राशि में मृगशिरा के अन्तिम दो चरण, आर्द्रा के चार चरण व पुनर्वसु के तीन चरण होते हैं। एक राशि में २। नक्षत्र या ९ चरण होते हैं। अतः मृगशिरा के दो चरणों का मान ३° २०×२=६°.४०' हुआ। अतः मिथुन राशि में चन्द्रमा के जब ६° ४०' अंशादि गए थे तो आर्द्रा नक्षत्र का प्रारम्भ हुआ। जन्म लग्न कर्क है। अतः मिथुन में—

६° ४० + १°.७' = ७° ४७' तक कर्क राशि
७° ४७' + १°७' = ८° ५४' ,, सिंह ,,
८° ५४' + १.७' = १०° ०१' ,, कन्या ,,
१०° १' + १°.७' = ११° ८' ,, तुला ,,
११° ८' + १°.७' = १२° १५' ,, वृश्चिक ,,
१२° १५ + १°.७' = १३° २२' ,, धनु ,,
१३° २२' + १°.७' = १४° २९' ,, मकर ,,
१४° २९' + १°.७' = १५° ३६' ,, कुम्भ ,,
१५° ३६' + १°.७' = १६° ४३' ,, मीन ,,
१६° ४३' + १°.७' = १७° ५०' ,, मेष ,,
१७° ५०' + १°.७' = १८° ५७' ,, वृष ,,
१८° ५७' + १°.७ = २०° ४ ,, मिथुन ,,

पहले बता चुके हैं कि एक नक्षत्र १३ अंश व २० कला का होता है। अतः आर्द्रा का आरम्भ मिथुन राशि में चन्द्रमा के ६ अंश ४० कला से लेकर २० अंशों तक रहता है। इस प्रकार जन्म के समय वृश्चिक राशि की नक्षत्र दशा थी। यहाँ वृश्चिक राशि सम है, अतः उत्क्रम से दशाएँ होंगी। ये दशाएँ ९-९ वर्षों की होंगी। इस प्रकार दशाक्रम इस उदाहरण में निम्नलिखित प्रकार से रहेगा—

१. वृश्चिक, २. तुला, ३. कन्या, ४. सिंह, ५. कर्क, ६. मिथुन, ७. वृष, ८. मेष, ९. मीन, १०. कुम्भ, ११. मकर, १२. धनु।

नक्षत्र लग्न का फल

तस्मिन्नुच्चे नीचे वा श्रीमन्तः ॥२८॥

पूर्वोक्त आद्यदशेश यदि अपनी उच्च राशि या नीच राशि में हो तो मनुष्य धनवान श्रीमान होता है। इस दशारम्भ राशि को तारालग्न कहते हैं। यदि इसमें कोई उच्च या नीच राशिगत हो तो भी उक्त फल होगा।

स्वमित्रभे किंचित् ॥२९॥

यदि वह आद्यदशेश अपनी राशि या मित्र की राशि में हो तो मनुष्य कुछ कम अर्थात् मध्यम श्रेणी का श्रीमन्त होता है।

पूर्वोक्त उदाहरण में आद्य दशेश मंगल स्वक्षेत्री है, अतः कहा जा सकता है कि यह जातक सामान्यतः श्रीमान् व धनवान होगा। वास्तव में भी जातक उच्च मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्ध रखता है।

दुर्गतोऽपरथा ॥३०॥

यदि यह आद्यदशेश शत्रु राशि में हो तो मनुष्य दुर्गति वाला निर्धन साधनहीन होता है।

इस विषय में वृद्धों ने भी कहा है—

'जन्मतारे द्वादशधा विभक्ते यत्र चन्द्रमाः।
लग्नात् तावतिथे राशौ न्यसेदाद्यदशाधिपम् ॥
स यद्युच्चेऽथवा नीचे तदा स्याद्राजसेवकः।
स्वमित्रर्क्षे सुखी शत्रुराशौ निःस्वः समे समः ॥' (वृ०का०)

अर्थ स्पष्ट है, किन्तु सूत्रोक्त फल से यहाँ थोड़ा भेद है। उच्चनीच-गत होने पर राजा का सेवक, स्वमित्र राशि में होने पर सुखी, शत्रु राशि में होने पर दरिद्र और समग्रह की राशि में होने पर सम अर्थात् न गरीब और न अमीर ही होता है।

अन्तर्दशाओं का क्रम निर्धारण

स्ववैषम्ये यथा संक्रमव्युत्क्रमौ ॥३१॥

साम्ये विपरीतम् ॥३२॥

शनौ चेत्यके ॥३३॥

अन्तर्भुक्त्यंशयोरेतत् ॥३४॥

दशाओं का क्रम तो पहले यथाप्रसंग बताया जा चुका है। अब इन दशाओं में अन्तर्दशा का क्रम क्या होना चाहिए, इस विषय में दो सूत्र लिखे गए हैं।

(i) आत्मकारक यदि विषम पद में विषम राशि (१, ३, ७, ९) में हो तो अन्तर्दशाओं का भोग क्रम से होगा।

(ii) यदि आत्मकारक विषमपद में सम राशि में अर्थात् वृष व वृश्चिक राशि में हो तो गणना उत्क्रम से होगी। अर्थात् तब अन्तर्दशाओं का भोग उत्क्रम से होगा।

(iii) यदि आत्मकारक समपद में सम राशि (४, ६, १०, १२) में हो तो गणना क्रम से होगी।

(iv) यदि वह समपद में विषम (५,११) राशि में हो तो गणना उत्क्रम से होगी।

कुछ आचार्यों के मत से अन्तर्दशा का क्रम-निर्धारण आत्मकारक के अतिरिक्त शनि की अधिष्ठित राशि से भी देखना चाहिए।

ये उपर्युक्त नियम दशाओं अर्थात् महादशाओं के विषय में नहीं हैं। इनका उपयोग केवल अन्तर्दशा व प्रत्यन्तरादि दशा में ही होगा।

एक अन्तर्दशा का मान कितना होगा, इस विषय में राशि दशा के वर्षों को १२ से भाग देकर लब्धि का ग्रहण करना चाहिए। जैसे चर दशा में वृश्चिक राशि के १२ वर्ष हमारे उदाहरण में होते हैं, अतः वृश्चिक राशि की चर महादशा में सभी राशियों की अन्तर्दशा १२÷१२=१ वर्ष के तुल्य होगी। इसी प्रकार अन्य दशा भेदों में भी समझना चाहिए।

दशाफल कथन में विशेष ध्यातव्य

शुभादशा शुभयुते धाम्न्युच्चे वा ॥३५॥

जो राशि शुभग्रह से युक्त हो अर्थात् जो कारक ग्रह से युक्त हो अथवा जिस राशि में कोई ग्रह उच्चगत हो, अथवा जिसका स्वामी उच्च में हो, उसकी दशा बहुत शुभ फल देने वाली है। हमारे विचार से यहाँ शुभ व अशुभ ग्रहों का निर्णय निसर्गतः और भावकारक के आधार पर करना चाहिए। इस विषय में आप हमारी **भाव मंजरी प्रणवाख्या** का अध्ययन करें।

अन्यथान्यथा ॥३६॥

जिस राशि में क्रूर ग्रह या भावनाशक ग्रह हों, जिसका स्वामी नीच में या शत्रु आदि की राशियों में हो अथवा जिस राशि में कोई ग्रह नीचस्थ हो, उसकी दशा में अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

सिद्धमन्यत् ॥३७॥

दशाओं व अन्तर्दशाओं का विस्तृत फल अन्य ग्रन्थों में विस्तार से कहा गया है, अतः वहीं से देख लें। अथवा जो इस ग्रंथ में अनुक्त हो वह दूसरे ग्रंथों से जानना चाहिए।

इति पं० सुरेशमिश्र विरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्रभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

॥ द्वितीयाध्यायोऽवसितश्च ॥

तृतीयोऽध्याय:

प्रथम: पाद:

राजयोगों का विवेचन

अथराजजनिताभ्यां योगे योगे लेयान्मेषाधिपः ।।१।।

जैमिनिमुनि अब राजयोगों का निरूपण कर रहे हैं।

प्रथम स्थान का स्वामी अर्थात् लग्नेश व पंचमेश का परस्पर योग श्रेष्ठ राजयोग बनाता है।

यहाँ भी लेयादि शब्दों का अर्थ कटपयादि लगाया जाएगा।

लेय अर्थात् ल—३, य—१ = १३ ÷ १२ = शेष १ अर्थात् लग्न भाव।

मेष अर्थात् म—५, ष—६ = ६५ ÷ १२ = शेष ५ अर्थात् पंचम भाव।

जन्मकालीन ग्रहों में यदि केन्द्र व त्रिकोण के स्वामियों का परस्पर सम्बन्ध हो तो पाराशर मत में भी यह राजयोग कारक होता है। त्रिकोण भावों (१,५,९) के स्वामी सदा शुभ देने वाले होते हैं। त्रिकोण व केन्द्र का महत्त्व इतना अधिक है कि जिस राहु या केतु के नाम से ही लोग घबराते हैं, वही जब केन्द्र या त्रिकोण में हो तो योगकारक होता है। इस स्थिति में राहु या केतु से किसी भी केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध यदि हो जाए तो फिर क्या कहना। अर्थात् मणि-कांचन योग यानि सोने पर सुहागा हुआ।

यहाँ जैमिनिमुनि ने भी इसी मूलभूत सिद्धान्त का अवलम्बन किया है। लग्न की विशेषता यह है कि वह केन्द्र व त्रिकोण दोनों है। अतः लग्नेश का पंचमेश से क्षेत्र सम्बन्ध या योगादि स्थिति हो तो वास्तव में महाराज योग का सूत्रपात हो गया। यहाँ चतुर्विध सम्बन्धों का ही ग्रहण करना

चाहिए। इन सम्बन्धों में क्षेत्र सम्बन्ध ही सर्वश्रेष्ठ होता है। यद्यपि त्रिकोण भाव सामान्यतः धनसमृद्धि देते हैं। पर इनमें भी पंचम व लग्न विशेषतया धन कारक होते हैं। **महर्षि पराशर** का कथन है—

धनदौ धर्मधीनाथौ ये वा ताभ्यांयुताग्रहाः।

तेऽपि स्वस्वदशाकाले धनदा नात्र संशयः॥' (वृ० पा०, धन० १६)

इसके अतिरिक्त मुख्यतया पराशर ने लग्न से बनने वाले ७ धनदायी योग व पंचम से बनने वाले भी ७ योग मुख्य बताए हैं। अतः लग्न व पंचम विशेषतया धन समृद्धि व श्रीमन्तता देते हैं। वास्तव में उक्त योग (सूत्रार्थ) में उत्पन्न व्यक्ति निश्चय से राजसी ठाटबाट वाले, उच्च सामाजिक स्थित व श्रेष्ठ धन-सम्पदा से युक्त होते हैं। क्योंकि आज-कल राजयोग का तात्पर्य केवल राज्याधिकार प्राप्त शासक से ही नहीं है। बड़े-बड़े मण्डलेश्वर साधुओं व अपने-अपने क्षेत्रों में विशेष उपलब्धि वाले लोगों की कुण्डलियों में जातकोक्त राजयोग देखने को मिलते हैं।

महर्षि पराशर के अनुसार यह योग आत्मकारक व पंचमेश अथवा पुत्रकारक से भी देखना चाहिए।

महाराज योग

उच्चनीचस्वांशवती तादृशदृष्टिश्चशुभमातृदृष्टे

यदि महाराजः॥२॥

ये पूर्वोक्त योगकारक लग्नेश व पंचमेश अर्थात् लग्नेश व पंचमेश परस्पर सम्बन्धी होते हुए अपनी उच्चराशि या अपनी नीच राशि में हों।

अथवा इन्हें कोई उच्च-नीच राशिगत या उच्च-नीच नवांशगत ग्रह देखता हो।

अथवा ये स्वयं उच्च या नीच नवांश में स्थित हों।

और शुभ ग्रह पंचम भाव को देखें तो यह महाराज योग होता है।

उपर्युक्त में से लग्नेश व पंचमेश किसी भी एक स्थिति में हो तो योग पूर्ण हो जाता है। महर्षि पराशर नीच राशि का ग्रहण इस सन्दर्भ में नहीं करते हैं। लग्नेश पंचमेश एक साथ हों, एक-दूसरे की राशि में हों, एक-दूसरे पर पूर्ण दृष्टि रखें इत्यादि चतुर्विध सम्बन्धों का यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

श्रीरामचन्द्र जी की जो कुण्डली प्रसिद्ध है उसमें कर्क लग्न में चन्द्र व पंचमेश मंगल (सप्तमस्थ) का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है। राम के भाई भरत की कुण्डली में देखिए, लग्नेश व पंचमेश एक साथ हैं, अतः १४ वर्षों तक अबाध राजयोग व राजकीय सुख, बाद में भी राज्य-प्राप्ति रही, ऐसी जनश्रुति है।

दशरथ पुत्र भरत
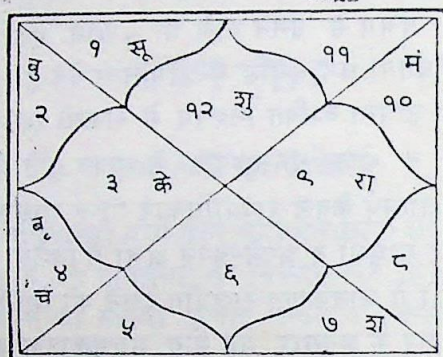
इसी प्रकार शिवाजी की कुण्डली में लग्नेश सूर्य व बृहस्पति पंचमेश एक साथ सप्तम स्थान में हैं। श्रीकृष्ण की कुण्डली में भी लग्नेश शुक्र व पंचमेश बुध पंचम में एकत्र हैं। इस तरह यदि सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र सम्बन्ध हो और ये उच्चादि राशि नवांश में हों तो फिर राजयोग की सर्वोच्चता स्वयं सिद्ध होगी। लग्नेश व पंचमेश का योग किसी भी भाव में हो तब भी श्रेष्ठ योग कारक है। इग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया की इस कुण्डली में लग्नेश व पंचमेश द्वादश स्थान में हैं, परन्तु उनके राजयोग में कोई सन्देह नहीं है।

महारानी विक्टोरिया
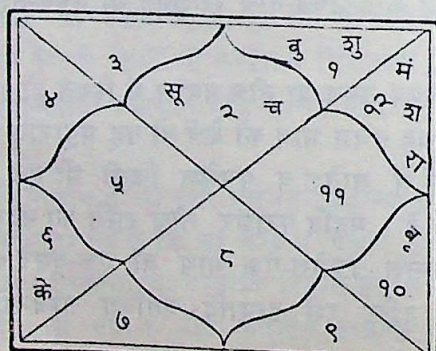
प्रौढ़ावस्था में राजयोग

लेयलाभयोः परकाले ॥३॥

यदि लग्नेश व सप्तमेश का परस्पर योग हो अथवा सप्तमेश पंचमेश का भी सम्बन्ध हो तो मनुष्य को जीवन के उत्तरार्ध में प्रौढ़ावस्था में राज-सुख प्राप्त होता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा में त्रिकोण भाव लक्ष्मी के प्रतीक हैं और केन्द्र विष्णु रूप हैं। अतः लक्ष्मी व विष्णु का सम्बन्ध तो सदैव प्रभुता, सुख, कल्याण व वर्चस्व का जनक ही होगा। ऐसा मूलभूत नियम प्रतिपादित हुआ कि त्रिकोण केन्द्रेश परस्पर सम्बन्धी होने पर बहुत श्रेष्ठ फल देते हैं।

परदेश में राजयोग

लाभलेयाभ्यां स्थानगः ॥४॥

सप्तमेश व लग्नेश का परस्पर सम्बन्ध मनुष्य को अपने जन्मस्थान से कहीं दूर श्रेष्ठ राजयोग बनाता है। अर्थात् लग्न व सप्तम के स्वामी ग्रहों के योग से दूर देश में प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने पर राजयोग होता है।

द्वितीय भाव में ग्रहों की युति

प्रबल वाहन योग

तत्रशुक्र चन्द्रयोर्यानिवन्तः ॥५॥

लग्न से द्वितीय स्थान में यदि शुक्र व चन्द्रमा हों तो मनुष्य के पास बहुत से वाहन, मोटर-कार आदि होते हैं।

जैमिनिमुनि के मत से शुक्र व चन्द्रमा की युति भी बहुत श्रेष्ठ धनी योग बनाती है। इस सूत्र में पूर्वोक्त सूत्रार्थ १-३-२८ की ही पुनरावृत्ति की गई है।

हाथी घोड़े होने के योग

तत्र शनिकेतुभ्यां गजतुरगाधीशः ॥६॥

लग्न से द्वितीय स्थान में यदि शनि व केतु हों तो मनुष्य हाथी-घोड़ों का स्वामी होता है।

एक अन्य राजयोग

शुक्रकुजकेतुषु स्वभाग्यदारेषु स्थितेषु राजानः ॥७॥

शुक्र, मंगल व केतु यदि आत्मकारक के साथ अथवा आत्मकारक से द्वितीय और चतुर्थ स्थान में स्थित हों, तो मनुष्य राजयोग वाला होता है।

इस विषय में जैमिनि मुनि ने १-३-३० में भी पीछे बताया है। वहाँ इन ग्रहों की स्थिति कारक से १, २, ४, ५ भावों में होने पर राजयोग बताया गया है।

इन सब ग्रहों के साथ होने पर अथवा उक्त भावों में अलग-अलग स्थित होने पर भी राजयोग हो सकता है। तब ऐसी स्थितियाँ बनेंगी—

(i) आत्मकारक के साथ शुक्र, मंगल, केतु ये तीनों ग्रह हों।

(ii) आत्मकारक के साथ इनमें से कोई दो या एक ग्रह हो और शेष ग्रह आत्मकारक से २, ४, ५ भावों में स्थित हों।

(iii) आत्मकारक के साथ अकेला शुक्र हो, आत्मकारक से द्वितीय स्थान में मंगल हो और उससे चतुर्थ स्थान में केतु हो।

यदि तीनों में से कुछ कम ग्रह भी आत्मकारक से उक्त स्थानों में हों तो भी कुछ कम शक्तिशाली योग होगा। हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में आत्मकारक स्वयं शुक्र है और उससे चतुर्थ स्थान में केतु है, अतः राजयोग बनता है।

महर्षि पराशर ने भी लग्नेश या कारक से २, ४, ५ भावों में शुभ ग्रह (यहाँ पराशरोक्त विधि से भावेशादि के आधार पर शुभाशुभ निर्णय होगा) हों तो व्यक्ति राजा होता है–

लग्नेशात् कारकाच्चापि धने तुर्ये च पंचमे।
शुभखेटयुते भावे जातो राजा भवेद्ध्रुवम् ॥

(बृ· पा·, राजयोग, श्लोक ९)

पूर्वोक्त उदाहरण में आत्मकारक से पंचम में चन्द्र (लग्नेश) शुभ है, अतः राजयोग अंशतः विद्यमान है।

पितृलाभधन प्राणयोश्च ॥८॥

यदि लग्न, सप्तम और नवम भाव बलवान हों अथवा लग्न से सप्तम, नवम भाव बलवान् हों तो राजयोग होता है।

यहाँ भावों के बलाबल का निर्णय पूर्वोक्त प्रकार से करना है।

पत्नीलाभयोः समानकालः ॥९॥

यदि लग्न और सप्तम में बराबर संख्या वाले ग्रह स्थित हों तो मनुष्य प्रौढ़ावस्था में राजयोग प्राप्त करता है।

किशोरावस्था में राजयोग

भाग्यदारयोर्ग्रहयुक्त समानेषु साम्प्रतः ॥१०॥

लग्न से द्वितीय और चतुर्थ स्थानों में यदि समान संख्या ग्रहों की हो तो मनुष्य को जीवन में बहुत शीघ्र, छोटी अवस्था में ही राजयोग प्राप्त होता है।

पूर्वोक्त दाशरथि भरत की जन्म कुण्डली में यह योग देखा जा सकता है। महात्मा गांधी की कुण्डली में भी यह योग विद्यमान है, परन्तु साथ में वहाँ प्रबल बन्ध कारक (कैद) योग भी है। देखें सूत्र १-३-४२।

तत्र उच्चे कर संख्या राज्ञां च ॥११॥

यदि उक्त द्वितीय और चतुर्थ भावों में समान संख्यक ग्रह स्थित हों और चतुर्थ भाव में स्थित ग्रह अपने उच्च में हो तो दुगुना राजयोग हो जाएगा।

मण्डलान्त (राजा) योग

पितृधर्मयोर्लयलाभयोर्गु रौ चन्द्रशुभदृग्योगे-मण्डलान्तः ॥१२॥

जन्म लग्न में लग्न और एकादश भाव में अथवा लग्न और सप्तम भाव में बृहस्पति स्थित हो और उसे चन्द्रमा अथवा अन्य शुभग्रहों की दृष्टि या योग प्राप्त हो तो मनुष्य मण्डलान्त अर्थात् जिलाधीश, जागीरदार अथवा किसी छोटे राज्य का स्वामी होता है। उक्त योग में चन्द्रमा की दृष्टि या योग को विशेष योगकारक समझना चाहिए।

रामचन्द्र की कुण्डली में लग्न में बृहस्पति चन्द्रमा से युक्त है। अतः

उक्त योग बनता है। श्रीकृष्ण की कुण्डली से एकादश में गुरु है और लग्न में चन्द्रमा है। अतः इस योग की स्थिति मानी जा सकती है। यही स्थिति आद्यशंकराचार्य की कुण्डली में देखी जा सकती है—

आद्यशंकराचार्य
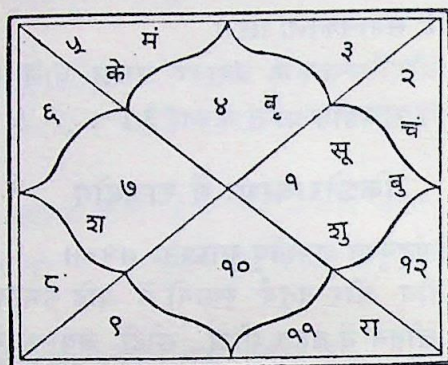
तत्रबुध गुरुदृग्योगे युवजो वा ॥१३॥

लग्न से चतुर्थ स्थान में यदि बुध और बृहस्पति की स्थिति या दृष्टि हो तो मनुष्य युवराज होता है।

अथवा लग्न एकादश और लग्न सप्तम में बुध व बृहस्पति की सहस्थिति या दृष्टि हो तो व्यक्ति युवराज होता है। यहाँ दृष्टि यदि संभव हो तभी मानी जाएगी।

भाग्यवान् श्रीमन्त योग

तस्मिन्नुच्चेनीचे पितृलाभयोः श्रीमन्तः ॥१४॥

लग्न या सप्तम भाव में यदि कोई ग्रह अपनी उच्च या नीच राशि में स्थित हो तो मनुष्य बहुत भाग्यवान् व श्रीमान् होता है! लेकिन इस योग में दोनों भावों में ग्रह स्थिति अनिवार्य है। जब लग्नस्थ ग्रह नीचगत होगा तो सप्तम भाव में अपनी उच्च राशि में स्थित ग्रह को पूर्ण दृष्टि से देखेगा। इसी प्रकार सप्तमस्थ ग्रह नीच होगा तो लग्न में उसकी उच्चराशि रहेगी।

मिथुन लग्न में यदि राहु केतु लग्न या सप्तम में स्थित होंगे तो यह बनेगा। इसी प्रकार कर्क लग्न में मंगल व बृहस्पति भी लग्न सप्तम में स्थित होकर यह योग बनाएँगे।

पहले नक्षत्र दशा के प्रसंग में सूत्र २८ अध्याय २-४ में भी इस योग की झलक देखी जा सकती है।

यदि लग्न या सप्तम में से कहीं कोई एक ग्रह अपने उच्च या नीच में हो तथा अन्य स्थान में कोई शुभ ग्रह स्थित हो तो भी मनुष्य श्रीमान् होता है। पराशर ने यह योग पद लग्न के संदर्भ में माना है—

'पदात्तु सप्तमे स्थाने गुरु शुक्र निशाकराः।
त्रयोद्वयमथैकोऽपि लक्ष्मीवान् जायते जनः॥
स्वतुंगे सप्तमे खेटः शुभो वाऽप्यशुभः पदात्।
श्रीमान् सोऽपि भवेन्नूनं सत्कीर्तिसहितो द्विज॥'

(बृ., पा., पदाध्याय, २५-२६)

'पद लग्न से सप्तम स्थान में यदि गुरु, शुक्र, चन्द्रमा ये तीनों, इनमें से दो या कोई एक भी स्थित हो तो मनुष्य धनी होता है।

पद से सप्तम स्थान में यदि कोई ग्रह उच्चगत हो (वह शुभ या अशुभ कोई भी हो सकता है), तब व्यक्ति सत्कीर्तिमान व धनी होता है।

राजयोग

स्वभावनाथाभ्यां शुक्रचन्द्रदृग्योगयोः॥१५॥

आत्मकारक जिस राशि में हो उस पर और उस राशि के स्वामी के साथ अर्थात् आत्मकारक की अधिष्ठित राशि और अधिष्ठित राशीश के साथ भी यदि चन्द्रमा व शुक्र की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य राजा होता है।

यहाँ पूर्ण चन्द्रमा ही समझना चाहिए। पहले सूत्र १-२-१५ में आत्मकारक के साथ पूर्ण चन्द्रमा व शुक्र की स्थिति से मनुष्य का विद्वान् व भोगैश्वर्यवान् होना बताया है। अतः अधिष्ठित राशि व अधिष्ठित राशीश दोनों पर यदि शुक्र व चन्द्रमा की दृष्टि या योग हो तो राजयोग बनेगा, ऐसा समझना चाहिए।

धनी योग

तत्र शुभवर्गेषु श्रीमन्तः॥१६॥

लग्न से चतुर्थ स्थान में ऐसे ग्रहों का योग या दृष्टि हो, जो शुभ-

वर्गों में पड़े हों, तो मनुष्य श्रीमान् व धनवान् होता है। यहाँ तत्र शब्द का अर्थ चतुर्थ भाव है।

भाग्यवान् योग

दारशूलयोश्चन्द्रगुरौ ॥१७॥

लग्न से चतुर्थ व एकादश में चन्द्रमा व गुरु स्थित हों तो मनुष्य बहुत भाग्यवान् व धनी होता है।

अन्य राजरोग

शूले चन्द्रे रिष्फगुरौ धनेषु शुभेषु राजानः ॥१८॥

लग्न से एकादश स्थान में चन्द्रमा, दशम स्थान में बृहस्पति और नवम स्थान में कोई शुभ ग्रह हो तो मनुष्य राजा होता है।

पत्नी लाभयोश्च ॥१९॥

लग्न और सप्तम स्थान में यदि शुभग्रह स्थित हों तो भी मनुष्य राजा होता है।

यहाँ पर शूल का अर्थ ग्यारहवाँ भाव, रिष्फ से यहाँ प्रसिद्ध अर्थ न लेकर कटपयादि सूत्र से दशम भाव और धन अर्थात् नवाँ भाव ऐसा अर्थ किया गया है। किसी एक विद्वान् ने सूत्र १८ का अर्थ इस प्रकार किया है कि दशम में चन्द्र व नवम में बृहस्पति व ग्यारहवें शुभग्रह हों तो उक्त फल होगा। तब सूत्र का अन्वय इस प्रकार होता है—**चन्द्रे रिष्फ गुरौ धनेषु शुभेषु शूले राजानः।**

यह बहुत दूर का सम्बन्ध है, यदि जैमिनि का मन्तव्य शूले का शुभेषु से अन्वय करना होता तो वे शूल शब्द को इतनी दूर न रखते। यह दूरान्वय दोष कहलाता है। अतः ऐसी व्याख्या सूत्र के विरुद्ध ही है। इस सूत्र में राजयोग सम्बन्धी कई बातें ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम, इस स्थिति में लग्न से केन्द्र व त्रिकोण में शुभ ग्रह आ जाते हैं। चन्द्रमा के पीछे बृहस्पति होने से अनफा योग बहुत शुभ बनता है। तीसरे बृहस्पति जो स्वयं राजयोगकारक है तब नवम का कारक होकर राज्य स्थान में होता है। साथ ही वह ग्यारहवें स्थान का भी कारक है, अतः ग्यारहवें भाव का सम्बन्ध भी दशम व नवम से होता है। अर्थात् भाग्य, राज्य व आय इन

ानों का सुन्दर समन्वय इस योग में बनता है। बृहस्पति धन, स्थान, म्पत्ति स्थान व षष्ठ उपचय स्थान पर पूर्ण दृष्टि भी रखता है, अतः पाठक स्वयं इस योग की महत्ता समझ सकते हैं।

सर्वार्थ चिन्तामणि व जातक पारिजात के आधार पर दशम स्थान से लेकर तृतीय स्थान तक सभी शुभग्रह हों, यहाँ पाराशर मत से शुभाशुभत्व देखना चाहिए, तो मनुष्य राजाधिराज होता है। लगातार कई भावों में ग्रहों की स्थिति भी योगकारक मानी जाती है।

'''अन्त्योपान्त्य विलग्न वित्तसहजव्यापारगेहेषु वा।
सौम्य व्योमचरेषु भूपति समो राजाधिराजप्रियः॥

(जा. पारि. राजयोग., श्लो. १८)

एवमंशतो दृक्काणतश्च ॥२०॥

इस प्रकार पूर्वोक्त योगों का विचार कारकांश लग्न, नवांश लग्न व द्रेष्काण लग्न से भी करना चाहिए।

जैमिनीय मत में यद्यपि अकेले अंश शब्द का प्रयोग प्रायः नवांश के लिए ही किया गया है किन्तु हमारे विचार से जैमिनि ने कारकांश को जो महत्त्व दिया है तदनुसार भाव योगों का विचार कारकांश से कर लेने में कोई हानि नहीं है।

महन्त-मण्डलेश्वर-मठाधीश योग

लेयलाभयोश्चन्द्रे गुरौ शुभदृग्योगे महान्तः ॥२१॥

यदि लग्न, सप्तम, चन्द्रमा व बृहस्पति के साथ शुभग्रह स्थित हों या उनकी दृष्टि हो तो मनुष्य महन्त आदि होता है।

आशय यह है कि इस योग में व्यक्ति धार्मिक मनोवृत्ति वाला व सम्प्रदाय, धर्म या अपने स्थान में उच्च पूजनीय पद प्राप्त करता है।

लग्न में, लग्न से सप्तम भाव में, चन्द्रमा की राशि अर्थात् चन्द्र लग्न में और बृहस्पति की अधिष्ठित राशि अर्थात् बृहस्पति लग्न में शुभ दृष्टि योग होने पर ऐसा फल होगा।

लाभचन्द्रेऽपि ॥२२॥

लग्न से सप्तम स्थान में स्थित चन्द्रमा को यदि शुभग्रहों की दृष्टि

या सह स्थिति प्राप्त हो तो भी मनुष्य महन्त होता है।

श्री रामकृष्ण परमहंस की कुण्डली में यह योग प्राप्त होता है।

रामकृष्ण परमहंस

संवत् १९८९, शक १७५४,
फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा
बुधवार, शतभिषा नक्षत्र
इष्टकाल ००-१२ घट्यादि
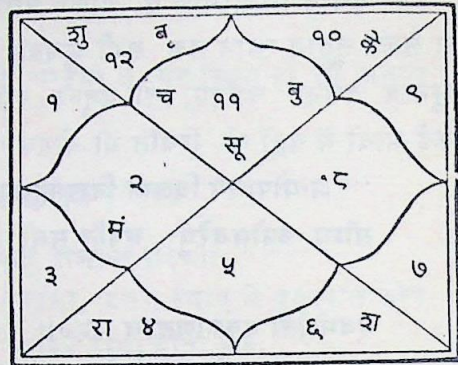
यहाँ चन्द्र लग्न व लग्न एक ही है। बुध साथ है। बृहस्पति के साथ शुभग्रह शुक्र स्थित है। चन्द्रमा व बुध की दृष्टि सप्तम स्थान पर है।

पापयोगाभावे शुभदृग्योगिनि च ।।२३।।

यदि लग्न, चन्द्र लग्न, बृहस्पति व लग्न से सप्तम स्थान में कोई पापग्रह न हो और वहाँ शुभग्रहों (बुध, शुक्र) की दृष्टि हो तो भी मनुष्य महन्त आदि की पदवी प्राप्त करता है।

राजप्रेष्य (सरकारी नौकरी) होने के योग

तत्र शुभदृग्योगे राजप्रेष्यः ।।२४।।

यदि लग्न, सप्तम भाव, गुरु व चन्द्रमा पर शुभग्रहों की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य बड़ा राजकीय अधिकारी भी होता है।

सूत्र २३ में महन्त होना बताया है। महन्त के पास मन्दिर, आश्रम आदि भवन का अधिकार, सम्पत्ति आदि होती है। सूत्र २४ में इस योग में सम्पत्तिवान् अथवा राजकीय सम्पत्ति का प्रबन्धादि करने वाला बताया गया है। अथवा राजसेवक हो सकता है।

शुभवर्जेषु त्रिकोणकेन्द्रे वा ।।२५।।

केन्द्र व त्रिकोण स्थानों में यदि कोई भी शुभग्रह न हो अर्थात् वहाँ

पाप ग्रह हों या न हों, पर शुभ ग्रह न हों; तो भी मनुष्य राजसेवक होता है।

राजकुलोत्पन्न योग

स्वांशयोगे राजवंश्यः ॥२६॥

स्व अर्थात् आत्मकारक के अंश अर्थात् नवांश की राशि यदि लग्न से केन्द्र या त्रिकोण स्थानों में पड़े तो भी मनुष्य राज-घराने में पैदा होता है।

आशय यह है कि आत्मकारक जिस नवांश में हो, वह राशि यदि जन्म लग्न से १, ४, ५, ७, ९, १० भावों में पड़े तो उक्त फल होता है।

उच्चांशे तादृशदृष्टिश्च राजा राजवंश्यो वा ॥२७॥

लग्नेश व आत्मकारक यदि अपने उच्च नवांश में हों अथवा वे किसी उच्च नवांशगत ग्रह से देखे जाते हों तो मनुष्य छोटा राजा अथवा राजघराने में उत्पन्न प्राणी होता है।

उक्त योग का अपवाद

अशुभदृग्योगान्नचेन्न ॥२८॥

यदि लग्नेश और आत्मकारक उच्चनवांश में होकर भी अशुभ-ग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो उक्त फल नहीं होता, अर्थात् वह व्यक्ति राजा या राजकुलीन नहीं होता है। इस स्थिति में राजयोग का भंग हो जाता है।

एक अन्य राजयोग

पंचमांशपदेऽपि समेषु शुभेषु राजानो वा ॥२९॥

जन्म लग्न से नवम भाव में जो नवांश स्थित हो अर्थात् नवम भाव स्पष्ट राश्यादि के आधार पर वहाँ जो नवांश सिद्ध होता हो, उस नवांश राशि में और लग्न के पद में यदि समान संख्या वाले शुभ ग्रह स्थित हों तब भी मनुष्य राजा होता है। यहाँ नवम भाव का ही ग्रहण हम इसलिए कर रहे हैं क्योंकि जैमिनि को यदि केवल लग्नस्थ नवांश अभीष्ट होता तो

वे अंश शब्द का ही उल्लेख कर सकते थे। पंचम शब्द का अर्थ कटपयादि से नवम भाव होता है। यदि पंचमांश ऐसा अर्थ लें अर्थात् द्रेष्काण, चतुर्थांश, पंचमांश आदि के आधार पर मानें तो पंचमांश जैमिनि ने बताया नहीं है। पराशर ने भी षोडश वर्गों में पंचमांश या षष्ठांश का ग्रहण नहीं किया है। अत: हमने **पंचमे नवम भावे यो नवांश: तस्मिन् पंचमांशे नवमस्थनवांशे पदे लग्नपदेऽपि च** ऐसा अर्थ किया है।

इस सूत्र का एक वैकल्पिक अर्थ भी हो सकता है। पंचमांश शब्द का अर्थ केवल नवांश मानकर चलें तो नवांश लग्न में व लग्नपद में यदि समान संख्यक शुभग्रह हों तो राजा होता है। यह द्वितीय विकल्प भी सम्भव है। पाठक स्वयं इस योग की शक्ति-परीक्षा करें।

राजतुल्य होने का योग

स्वलेयमेषाभ्यां राजचिह्नानि ॥३०॥

आत्मकारक, लग्न और पंचम भाव की स्थिति से मनुष्य के राजस चिह्नों का विवेक करना चाहिए।

यदि ये तीनों बली हों तथा शुभग्रहों की दृष्टि या योग में हों तो मनुष्य राजसी ठाटबाट वाला होगा, ऐसा समझना चाहिए।

महर्षि पराशर ने भी लग्न, पचम व कारक अर्थात् आत्मकारक को राजयोग निर्णय में बहुत महत्त्व दिया है। उनके विचार से आत्मकारक और पुत्रकारक से, आत्मकारक और पंचमेश से, लग्नेश व पंचमेश से, राजयोग का विचार इनके बलाबल के आधार पर करना चाहिए।

लग्नपुत्रेशयोरात्मपुत्रकारकयोर्द्वयोः।
सम्बन्धात् पूर्णमर्धं वा पादं वीर्यानुसारतः॥

(बृ. पा. राजयो., श्लो. ५)

'लग्नेश पंचमेश से, आत्मकारक व पुत्रकारक (चर या स्थिर) से सम्बन्ध के आधार पर पूर्ण, आधा या चौथाई राजयोग बलानुसार जानना चाहिए।

लग्नेश व पंचमेश का सम्बन्ध महाराज योग बनाता है, ऐसा इसी पाद के प्रारम्भ में बताया गया है। इसी प्रकार आत्मकारक व पुत्रकारक

के परस्पर सम्बन्ध से भी योग बनते हैं।

यहाँ पुत्रकारक से चर पुत्रकारक अथवा बृहस्पति अथवा पंचमेश भी लिया जा सकता है। जैमिनि व पराशर दोनों ही आत्मकारक के नवांश को अर्थात् कारकांश लग्न को और आत्मकारक की अधिष्ठित राशि को लग्नवत् ही मानते हैं —

चिन्तयेत् कारकांशे वा जनुर्लग्नेऽथवा द्विज।
राजयोगकरौ द्वौ द्वौ स्फुटौ खेटौ प्रयत्नतः॥

(वही. श्लो. ३)

'राज योगों का विचार करते समय कारकांश या जन्म लग्न में प्रयत्न पूर्वक दो-दो राज योग कारक ग्रहों का संधान करना चाहिए।'

इति पं० सुरेशमिश्रविरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीय सूत्रभाष्ये
तृतीयाध्यायस्य प्रथमपादः समाप्तः॥

द्वितीयः पादः

मारक ग्रह का पुनर्विचार

यज्ञजनेशाभ्यां स्वकारकाभ्यां निधनम् ॥१॥

लग्नेश व अष्टमेश और लग्न और आत्मकारक इन दोनों युग्मों से निधन अर्थात् मृत्यु का विचार करना चाहिए।

लग्न व अष्टम के स्वामी से और लग्न व आत्मकारक से अलग-अलग विचार कर किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए।

इस विषय में मुनि ने पहले भी 'आयुः पितृदिनेशाभ्याम्' सूत्र से लग्नेश व अष्टमेश को मृत्यु निर्णय में महत्त्व दिया है।

इस सूत्र में यज्ञ शब्द से लग्न का अर्थ लिया है। य—१, ज्ञ—०= ०१ अर्थात् लग्न। जन=ज—८, न—०=०८ अर्थात् अष्टम भाव इन दोनों के ईश अर्थात् स्वामी ग्रह।

इसी प्रकार स्व अर्थात् आत्मकारक और कारक=क—१, र—२, क—१=१२१÷१२=शेष १ अर्थात् लग्न ऐसा अर्थ होगा।

निधनं लेयलाभयोः प्राणी ॥२॥

लग्न व सप्तम भाव में से जो बली हो तदनुसार मृत्यु का निर्णय करना चाहिए।

अष्टम से व्यय होने के कारण सप्तम भाव से मृत्यु का विचार करना युक्तिसंगत है। बलवान् मारक ग्रह की अपेक्षा यदि लग्न या लग्नेश कम बली हो तो लग्नेश या लग्न की दशा भी मारक होती है, ऐसा ज्योतिष शास्त्र का नियम है। तथापि सूत्र का अर्थ यहाँ कुछ स्पष्ट नहीं हो पाता।

कारण यह है कि मृत्यु के विचार में लग्न व अष्टम भाव का विचार तो होता है, पर लग्न व सप्तम का कोई जोड़ा नहीं बनता है। तथापि इस सूत्र का सम्बन्ध सूत्र १ से ही है। तब हमें ऐसा समझना चाहिए कि—

(i) लग्नेश व अष्टमेश से मृत्यु विचार होगा।

(ii) आत्मकारक व लग्न से।

(iii) लग्न व सप्तम भाव से।

(iv) लग्न की अपेक्षा सप्तम बली हो तो सप्तम से अष्टम स्थान अर्थात् द्वितीय स्थान के स्वामी और लग्नेश से।

इन सब से यथाप्रसंग मृत्यु का विचार करना चाहिए।

कक्ष्याहानि का अन्य विचार

गुरौ केन्द्रे मन्दाराभ्यां दृष्टे शनिभोगहेतौ-कक्ष्यापवादः ॥३॥

पूर्वोक्त कक्ष्याहानि के अतिरिक्त बृहस्पति से भी कक्ष्याहानि का विचार करना चाहिए। बृहस्पति से केन्द्र स्थानों में यदि शनि और मंगल दृष्टि रखते हों तो कक्ष्याहानि होती है।

शनि यदि बृहस्पति से केन्द्र में हो तो भी कक्ष्याहानि होती है।

रिपुरोगयोश्चन्द्रे ॥४॥

यदि चन्द्रमा बृहस्पति से अथवा लग्न से अष्टम या द्वादश स्थान में हो तो कक्ष्याहानि समझनी चाहिए।

स्वभावगैश्च ॥५॥

आत्मकारक से अष्टम स्थान में यदि चन्द्रमा स्थित हो तोभी कक्ष्या हानि होती है।

रोगतुङ्गयोर्वा ॥६॥

लग्न या आत्मकारक से जो द्वादश स्थान है, उससे अष्टम स्थान में यदि चन्द्र हो अर्थात् लग्न या कारक से सप्तम स्थान में यदि चन्द्रमा हो तो भी कक्ष्याहानि होती है।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में बृहस्पति द्वितीय स्थान में व शनि, मंगल, राहु पंचम में स्थित हैं। अतः बृहस्पति से दशम केन्द्र (११ भाव)

पर मंगल, शनि की पूर्ण दृष्टि है तथा शनि केन्द्र में है, अतः कक्ष्याहानि प्रमाणित हो जाती है।

चन्द्रमा लग्न से बारहवें भाव में है, अतः इससे भी कक्ष्याहानि सिद्ध होती है।

अल्पादि आयु में भी मृत्यु समय ज्ञान

तत्र शनौ प्रथमम् ॥७॥

यदि पूर्वोक्त सप्तम स्थान (लग्न या आत्मकारक से) में शनि स्थित हो तो जो आयुर्योग कक्ष्याहानि के उपरान्त निश्चित हुआ हो, उस अल्पायु, मध्यायु या दीर्घायु के खण्ड की प्रारम्भ अवस्था में ही मृत्यु हो जाती है।

औसतन एक आयुखण्ड ३२ वर्ष का होता है अतः इसके प्रथम, मध्यम व तृतीय भाग लगभग १०-१० वर्षों के होंगे। यदि आत्मकारक या लग्न से सप्तम स्थान में शनि हो तो अल्पायु योग में १०-१२ वर्ष की अवस्था में, मध्यायु योग में ३२-४२ वर्ष के बीच व दीर्घायु योग में ६४-७४ वर्षों के बीच मृत्यु हो जाती है।

राहौ द्वितीयम् ॥८॥

केतोस्तृतीयं निधनम् ॥९॥

यदि लग्न या आत्मकारक से सप्तम स्थान में राहु स्थित हो तो आयुखण्ड के मध्य में और केतु स्थित हो तो आयुखण्ड के अन्तिम भाग में मृत्यु होती है।

आयु निर्धारण का अन्य प्रकार

तत्तु त्रिकोणेषु ॥१०॥

चरे प्रथमम् ॥११॥

स्थिरे मध्यमम् ॥१२॥

द्वन्द्वेऽन्त्यम् ॥१३॥

एवं चरस्थिरद्वन्द्वचराभ्याम् ॥१४॥

आयु और मृत्यु का निर्णय करने में लग्न व आत्मकारक से और इनके सप्तम स्थान के त्रिकोण स्थानों से भी विचार करना चाहिए।

यदि लग्न बली हो तो ५, ९ भावों से और सप्तम भाव बली हो तो ३, ११ स्थानों से विचार करना चाहिए।

आत्मकारक से त्रिकोण अर्थात् ५, ९ भावों को भी देखना चाहिए। आत्मकारक के विषय में आत्मकारक से सप्तम स्थान का विचार करने के लिए जैमिनि मुनि ने कोई स्पष्ट निर्देश नहीं दिया है। किन्तु सूत्र ११, १३ से ऐसा विचार अभीष्ट प्रतीत होता है। अब इन त्रिकोण स्थानों से आयु-खण्ड का निर्णय करने का विचार कर रहे हैं।

यदि उक्त दोनों स्थानों में चर राशि हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है।

यदि वहाँ स्थिर राशि हो तो मध्यायु होती है।

यदि उक्त स्थानों में द्विस्वभाव राशि हो तो अल्पायु होती है।

यदि लग्न या सप्तम से त्रिकोण स्थानों को देखें तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि दोनों भावों में चर-चर या स्थिर-स्थिर आदि राशियाँ हों। क्योंकि चर, स्थिर व द्विस्वभाव राशियाँ परस्पर केन्द्र में होती हैं, त्रिकोण में नहीं। अतः हम समझते हैं कि लग्न व आत्मकारक से सप्तम स्थानों को ही लें, तब यह सम्भव है। (देखें सूत्र १५)।

अतः लग्न व आत्मकारक से सप्तम स्थानों में यदि दोनों जगह चर हो तो दीर्घ, दोनों जगह स्थिर हो तो मध्य व दोनों जगह द्विस्वभाव राशि हो तो अल्प आयु समझी जाएगी, ऐसा अर्थ युक्तिसंगत है।

इन सूत्रों का सम्बन्ध सूत्र ७, ८, ९ से है।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न से सप्तम में चर व आत्मकारक से सप्तम में स्थिर है। अतः सूत्र ११-१३ तक वहाँ लागू नहीं होते हैं। यदि कर्क लग्न में आत्मकारक कहीं केन्द्र में होता तो दोनों से सप्तम स्थान में चर राशि होना सम्भव था। लेकिन ऐसा तो सब जगह सम्भव नहीं है, तब क्या प्रकार होगा, इसी बात को स्पष्ट करने के लिए सूत्र १४ लिखा गया है। इसका अर्थ निम्नोक्त प्रकार से होगा—

(i) यदि लग्न व आत्मकारक से सप्तम स्थानों में चर व स्थिर राशियाँ हों तो दीर्घायु होगी।

(ii) यदि उन सप्तम स्थानों में स्थिर व द्विस्वभाव राशियाँ हों तो मध्यायु होगी।

(iii) यदि वहाँ दोनों स्थानों पर द्विस्वभाव राशियाँ हों तो मनुष्य की अल्पायु होगी।

सूत्र ११-१३ की स्थिति तब होगी जब आत्मकारक व लग्न दोनों ही चर में या स्थिर में या द्विस्वभाव में हों। यदि एक चर में व दूसरा स्थिर में हो तो इनसे सप्तम स्थानों में भी क्रमशः चर व स्थिर राशियाँ ही रहेंगी। अतः निष्कर्ष यह निकला—

(i) चर राशि लग्न व चर राशि कारक—दीर्घायु।

(ii) स्थिर राशि लग्न व स्थिर राशि कारक—मध्यायु।

(iii) द्विस्वभाव राशि लग्न व द्विस्वभाव राशि कारक—अल्पायु।

(iv) चर राशि लग्न व स्थिर राशि कारक—दीर्घायु।

(v) स्थिर राशि लग्न व द्विस्वभाव राशि कारक—मध्यायु।

(vi) द्विस्वभाव राशि लग्न व द्विस्वभाव या चर राशि कारक—अल्पायु।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न चर है व आत्मकारक शुक्र स्थिर राशि में है तो दीर्घायु योग सिद्ध होता है।

स्वपितृचन्द्राः ॥१५॥

उपर्युक्त पद्धति से विचार करने हेतु आत्मकारक, लग्न व चन्द्रमा इन तीनों से विचार करना चाहिए।

आशय यह है कि लग्न व आत्मकारक से विचार कर चन्द्र व आत्मकारक से भी विचार करना चाहिए।

पूर्वोक्त उदाहरण में चन्द्रमा द्विस्वभाव में व कारक स्थिर में है अतः मध्यायु योग है। यदि लग्न व चन्द्र से देखें तो लग्न चर व चन्द्र द्विस्वभाव में है। अतः अल्पायु योग बना।

यहाँ भी जो खण्ड तीनों प्रकार से या दो प्रकार से आए उसे ही प्रामाणिक मानना चाहिए। यदि कहीं तीनों तरह से ही अलग आयु आती हो, जैसा कि पूर्वोक्त उदाहरण में हो रहा है तो लग्न व आत्मकारक से प्राप्त आयु को मुख्य मानना चाहिए। अतः दीर्घायु निश्चित है।

इस आयु प्रकार में कक्ष्याहानि

तत्र शनिः कक्ष्याह्रासः ॥१६॥

यदि लग्न, चन्द्रमा या कारक से सप्तम स्थान में शनि हो तो कक्ष्याहानि होती है। अथवा इनके साथ शनि स्थित हो तो कक्ष्याहानि होती है।

पूर्वोक्त उदाहरण मे शनि लग्न से पंचम में, चन्द्र से षष्ठ में व आत्मकारक शुक्र से दशम स्थान में है अतः इस सूत्र के अनुसार कक्ष्याहानि नहीं होती है।

रिपुषष्ठाष्टमयोश्च ॥१७॥

यदि शनि २,३,१२ स्थानों में हो तो भी कक्ष्याहानि होती है। यहाँ रिपु शब्द का अर्थ बारहवाँ भाव है।

षष्ठ व अष्टम को कटपयादि पद्धति से प्रयुक्त करें तो २,३ क्रमशः प्राप्त होते हैं।

किसी विद्वान् ने षष्ठ व अष्टम शब्दों को संख्यापरक मानकर इसका अर्थ किया है कि शनि ६, ८, १२ स्थानों में हो तो कक्ष्याहानि होती है।

हम समझते हैं कि जब भावों के प्रसंग में जैमिनी ने सर्वत्र कटपयादि पद्धति अपनायी है तथा पहले अध्याय में इसका स्पष्ट निर्देश भी किया है तब यहीं इस सूत्र में रिपु शब्द का प्रयोग कटपयादि से और षष्ठाष्टम का प्रयोग सीधे संख्यापरक करके खिचड़ी क्यों बनाई ? अतः हमारा स्पष्ट मत है कि यहाँ भी कटपयादि पद्धति ही अपनायी जाएगी। तदनुसार हमने इसका अर्थ ऊपर लिखा है।

यदि कटपयादि न अपनाकर दूसरी व्याख्या मानें तो हमें यह कहने में बिल्कुल संकोच नहीं है कि सूत्र पद्धति में ऐसी प्रथा दोषपूर्ण है। इस शैली में जब तक अन्यथा निर्देश न किए हों तब तक पद्धति बदली नहीं जाती है, ऐसे नीति-निर्देशक सूत्रों को अधिकार सूत्र कहते हैं। जब पहले जैमिनि ने 'सर्वत्र-सवर्णाभावाः न ग्रहाः' कहकर कटपयादि अपनाने को कहा है और यहाँ ऐसा कोई निर्देश नहीं है कि कटपयादि न अपनाएं। तब सीधा अर्थ लेना तर्क-सम्मत नहीं है। फिर आगे सूत्रों में यदि कटपयादि न अपनाया गया होता तो यह बात गले उतर सकती थी। अतः या तो यह सूत्र

जैमिनिरचित नहीं है अथवा इसका अर्थ कटपयादि से ही लिया जाएगा।

अब दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो ६, ८, १२ में क्रूर ग्रह तो आयुवर्धक नहीं होते हैं। अष्टम में शनि की स्थिति आयुष्य के विषय में अच्छी मानी गई है।

द्वितीय व द्वादश में शनि होने पर लग्न या चन्द्र या कारक को शनि का सान्निध्य प्राप्त होता है। पहले लग्न व चन्द्र या कारक के साथ या इनसे सप्तम स्थान में शनि हो तो कक्ष्याहानि बता चुके हैं। अब लग्न, चन्द्र या कारक के अगले या पिछले भाव में शनि हो तो कक्ष्याहानि बता रहे हैं। इसी प्रकार तृतीय में शनि होगा तो वह लग्न, चन्द्र या कारक के पंचम, नवम त्रिकोणों को व हानि स्थान द्वादश को पूर्ण दृष्टि से देखेगा और स्वयं अनिष्ट स्थान में स्थित रहेगा, अतः कक्ष्याहानि तर्कसम्मत सिद्ध होती है।

प्रथममध्यमयोरन्त्यमध्यमयोर्वा ॥१८॥

यदि पूर्वोक्त लग्न, चन्द्र व कारक से सप्तम स्थानों में स्थित राशि में ही शनि स्थित हो, अर्थात् जिसके आधार पर आयु खण्ड का निर्धारण कर रहे हों, उनमें से ही कहीं पर शनि स्थित हो तो कक्ष्याहानि होती है। यह पद्धति इसी आयु-निर्धारण में प्रयुक्त होगी।

पूर्वोक्त उदाहरण में इनमें से कोई भी कक्ष्याहानि प्राप्त नहीं है।

कक्ष्याहानि का अपवाद

शुभदृग्योगान्न ॥१९॥

यदि शनि पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो या शुभग्रह शनि के साथ स्थित हों तो उक्त कक्ष्याहानि नहीं होगी।

पितृलाभेशयोरस्यैव योगे वा ॥२०॥

यदि लग्न, चन्द्र या कारक के अधिपतियों व इनसे सप्तम स्थान के अधिपति से यदि शनि का योग अर्थात् सहस्थिति हो तो कक्ष्याहानि होगी।

जिसके आधार पर विचार कर रहे हों, उस राशि के व उससे सप्तम राशियों के स्वामियों से यदि शनि युक्त हो तो कक्ष्याहानि होगी। यदि इन स्थानों में शनि की ही राशि हो तो भी हानि समझी जाएगी।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न से सप्तम स्थान का स्वामी, कारक की अधिष्ठित राशि का स्वामी शनि स्वयं है। अतः कक्ष्याहानि के उपरान्त मध्यायु मानी जाएगी।

अप्रसंगवादात्प्रामाण्यं रोगयोः प्राणिसौर-
दृष्टियोगाभ्याम् ॥२१॥

यदि लग्न, कारक व चन्द्र से अलग-अलग आयु प्राप्त हो तो देखना चाहिए कि किस आयु-निर्णायक तत्त्व को बलवान् सूर्य देखता है या वहाँ स्थित है। जहाँ सूर्य का दृग्योग हो, उसी युग्म से प्राप्त आयु को प्रामाणिक माना जाएगा। सामान्यतः बहुमत पक्ष का ग्रहण होगा।

अथवा जिस आयुनिर्णायक तत्त्व से अष्टम पर बली सूर्य की दृष्टि या योग हो तो वही पक्ष मुख्य समझना चाहिए।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न से सप्तम में स्वयं सूर्य है। सूर्य कारक से सप्तम स्थान में स्थित राशि को भी राशिदृष्टिवशात् देख रहा है अतः लग्न व कारक से प्राप्त आयु प्रकार प्रामाणिक माना जाएगा।

मारक दशा का पुनर्विवेक

द्वारबाह्ययोरपवादः ॥२२॥

यदि किसी दशा प्रकार में द्वार राशि व बाह्य राशि ये दोनों राशियाँ पापग्रहों से युक्त हों तो पूर्व राशि में मृत्यु समझनी चाहिए।

यदि वृश्चिक राशि की दशा वर्तमान है, वृश्चिक दशारम्भ से पाँचवीं राशि है तो इससे पाँचवीं मीन राशि बाह्य है। यदि आयु खण्ड के अनुसार वृश्चिक में मृत्यु सिद्ध हो, किन्तु वृश्चिक व मीन दोनों पापयुक्त हों तो पहली अर्थात् तुला दशा में ही मृत्यु सम्भावित होगी।

द्वारे चन्द्र दृग्योगान्न ॥२३॥

यदि द्वार राशि को चन्द्रमा देखता हो या द्वार राशि में चन्द्रमा स्थित हो तो द्वार राशि में ही मृत्यु होगी। इस स्थिति में एक राशि पीछे मृत्यु नहीं समझनी चाहिए।

केवल शुभसम्बन्धे बाह्ये च ॥२४॥

यदि द्वार राशि अर्थात् जिस राशि की दशा वर्तमान हो और उसमें

आयुखण्ड पूरा होता हो तब द्वारराशि व बाह्यराशि के पापयुक्त होने पर द्वारराशि से पहली राशि में निधन बता चुके हैं।

यदि इन राशियों पर चन्द्रमा की दृष्टि या योग हो तो द्वार राशि में निधन होता है।

यदि बाह्यराशि से शुभ ग्रहों का योग या दृष्टि सम्बन्ध भी हो तब भी द्वार राशि में मृत्यु बतानी चाहिए।

लेयरोगक्रूराश्रयेऽपि ॥२५॥

यदि लग्न और अष्टम स्थान में पापग्रहों की स्थिति हो तब भी एक राशि पूर्व अर्थात् निर्णीत मारक दशा जो आयु खण्ड की समाप्ति पर आती हो, उससे पहली राशि की दशा में ही मृत्यु कहनी चाहिए।

अष्टम से त्रिकोण राशियों में भी मृत्यु

रोगर्क्षत्रिकोणदशाब्दे ॥२६॥

मृत्यु का निर्णय करते समय अष्टम स्थान में स्थित राशि व उससे त्रिकोण राशियों की दशा का भी विचार करना चाहिए। इन राशियों के क्रूर युक्त होने पर व इनकी बाह्य राशियों के भी क्रूर समेत होने पर इनमें भी आयुखण्ड के अनुसार मृत्यु समझनी चाहिए।

रोगनवांशदशाभ्यां निधनम् ॥२७॥

लग्न व आत्मकारक से अष्टम स्थान में स्थित नवांश राशि की दशा में भी मृत्यु हो सकती है।

पाराशर मत में भी बाईसवाँ द्रेष्काण (खर द्रेष्काण) और चौसठवाँ नवांश मारक माना जाता है। पाराशर मत में मृत्यु के सन्दर्भ में छिद्र ग्रहों का विचार किया जाता है। ये छिद्रग्रह सात होते हैं—

(i) अष्टमेश ग्रह, (ii) अष्टम भाव में स्थित ग्रह, (iii) अष्टम स्थान पर पूर्ण दृष्टि रखने वाला ग्रह, (iv) जन्म लग्न में स्थित द्रेष्काण से बाईसवें द्रेष्काण का स्वामी (प्रायः अष्टम भावगत द्रेष्काणों में से एक), (v) अष्टमेश के साथ स्थित ग्रह, (vi) चौंसठवें नवांश का स्वामी (जन्म लग्न या चन्द्र के नवांश से गणना होगी), यह नवांश भी प्रायः अष्टम भाव में पड़ता है। (vii) अष्टमेश का अधिशत्रु ग्रह।

जैमिनि ने भी एक प्रकार से चौंसठवें नवांश का ही संकेत किया है। सूत्र में प्रयुक्त द्विवचन से हमने लग्न व आत्मकारक दोनों से अष्टम स्थान का उल्लेख किया है।

तत्रापि शनियोगे ॥२८॥

यदि शनि अष्टम स्थान में या अष्टमगत नवांश में स्थित हो तो विशेषतया अष्टमस्थ नवांश की दशा को मारक समझना चाहिए।

मिश्रे शुभयोगान्न ॥२९॥

यदि अष्टम स्थान में शुभ व पाप दोनों प्रकार के ग्रह स्थित हों तो अष्टम भावगत राशि के नवांश की दशा में शनि होने पर भी मृत्यु नहीं होती है।

लग्नेन्द्वोभावे स्वलाभयोर्भावयोः क्रूररुद्राश्रयेऽपि ॥३०॥

लग्न, चन्द्रमा व आत्मकारक से अष्टम या सप्तम स्थानों में यदि क्रूर ग्रह अथवा रुद्रग्रह स्थित हो तो भी द्वारराशि से पूर्व राशि की दशा में मृत्यु कहनी चाहिए।

नवापवादानि ॥३१॥

पूर्वराशि की दशा में निधन बताने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि निश्चित आयु खण्ड में से ९ वर्ष कम हो जायेंगे।

इसका कारण यह है कि नवांश दशा में एक राशि की दशा ९ वर्षों की होती है।

इस विषय में द्वितीयाध्याय के सूत्र १७-२० का भाष्य देखें।

अष्टमेश ग्रह के उच्च होने पर उसकी दशा तुल्य वर्षों के आधे की वृद्धि हो जाती है और नीच होने पर आधी दशा कम हो जाती है। इस विषय में वृद्ध कारिका है—

एकोऽष्टमेशः स्वोच्चस्थः पर्यायार्धं प्रयच्छति ।
नीचस्थो नाशयेत्पर्यायार्धमायुषि निश्चिते ॥
नीचरन्ध्रेशसंयुक्ताः पर्यायार्धं पृथक्पृथक् ।
ग्रहा विनाशयन्त्येवं निर्णीते परमायुषि ॥
उच्चरंध्रेशसंयुक्तग्रहैः प्रत्येकमुन्नयेत ।
एकैकमर्धपर्यायं परमायुषि निश्चिते ॥ (वृ. का)

'पहले अल्प, मध्य, दीर्घ आयु खण्ड निश्चित कर लें। यदि अष्टमेश उच्च अर्थात् परमोच्च में हों तो अपनी दशा अर्थात् चर दशा के वर्षों का आधा भाग परमायु(३२, ६४ या ९६ में) बढ़ जाएगा। अथवा नवांश तुल्य (९ वर्ष) बढ़ जाएँगे। (देखें २-१-१७)। परम नीच में यदि अष्टमेश हो तो ९ वर्ष या चरदशा के आधे वर्षों की हानि परमायु में से हो जाएगी।

जो ग्रह अष्टमेश के साथ हों, उनकी दशा के आधे वर्षों की भी अलग-अलग वृद्धि या हानि यथाप्रसंग की जाएगी।

अतः हमारे विचार से सब प्रकार से जब मारक दशा आए, उस दशारम्भ के समय में नवांश दशा के समान ९ वर्षों को और जोड़कर मृत्यु समय कहना चाहिए। यह वृद्धि तभी होगी जब अष्टमेशादि ग्रह उच्च अर्थात् परमोच्च में होंगे। यदि वे परम नीच में हैं तो कुछ भी वृद्धि नहीं होगी। यदि बीच में कहीं उच्च के निकट अर्थात् उच्चाभिलाषी हैं, तो अनुपात से वृद्धि करनी चाहिए। परम नीच से परम उच्च तक १८०° होते हैं। अतः ९ वर्षों को १८०° से भाग देने पर १°=१८ दिन होता है। तदनुसार गणना कर लें।

सूर्य व शुक्र से अष्टम राशि की दशा का मारकत्व

इनशुक्राभ्यां रोगयोः प्रामाण्यं निधनम् ॥३२॥

जन्म समय में सूर्य व शुक्र जिस राशि में स्थित हों उससे अष्टम राशि की अन्तर्दशाओं और दशाओं में मृत्यु सम्भावित होती है।

महेश्वरब्रह्मयोराद्यन्तयोः ॥३३॥

ब्रह्म ग्रह जिस राशि में स्थित हो, उसकी दशा से लेकर (जन्म-काल) महेश्वर ग्रह की अधिष्ठित राशि की दशा तक सामान्यतः आयु मानी जाती है।

आशय यह है कि महेश्वर ग्रह की राशि भी मारक होती है। यहाँ सूत्र संख्या २-१-५३ की ही पुनरावृत्ति की गई है।

चरनवांशदशायां निधनम् ॥३४॥

चरराशि की नवांश दशा में प्रायः मृत्यु होना सम्भावित है। अतः नवांश दशा में आयुर्दाय के निकट आने वाली चर राशियों की

दशा का विशेष विचार करना चाहिए।

चित्तनाथाभ्यां रिपुरोगचित्तकर्मणि ।।३५।।

जन्म लग्न से षष्ठ स्थान से या षष्ठेश जहाँ स्थित हो वहाँ से ३, ६, ८, १२ स्थानों में स्थित राशियों की दशाएँ मारक होती हैं। इस विषय में सूत्र २-१-५६, ५७ का भाष्य भी देखें।

बालारिष्ट के कुछ विशेष नियम

क्रूरग्रहेषु सद्योऽरिष्टम् ।।३६।।

जन्म समय में षष्ठ स्थान या षष्ठेश से ३, ६, ८, १२ स्थानों में यदि क्रूर ग्रह स्थित हों तो बचपन में ही विशेष अरिष्ट होता है।

अरिष्ट योगों के विचार के बाद ही आयु विचार युक्तिसम्मत है।

शनिराहुचन्द्रयोगे सद्योऽरिष्टम् ।।३७।।

यदि उपर्युक्त स्थानों में शनि, राहु व चन्द्रमा का योग हो तो भी सद्योरिष्ट अर्थात् तुरन्त मृत्यु देने वाले योग होते हैं। सद्योरिष्ट में अधिकतम आयु १ वर्ष मानी जाती है। सद्योरिष्ट योगों में बालक की मृत्यु जन्म के तुरन्त बाद भी हो सकती है।

कोणाश्रयेषु सद्योऽरिष्टम् ।।३८।।

षष्ठ स्थान या षष्ठेश से त्रिकोणों में यदि शनि राहु व चन्द्र का योग हो तो भी सद्योरिष्ट होता है।

सर्वमेवं पापग्रहेषु च ।।३९।।

अथवा षष्ठ स्थान में व इसके त्रिकोणों में और षष्ठ से ३, ६, ८, १२ भावों में अथवा षष्ठेश से ३, ५, ६, ८, ९, १२ भावों में यदि पापग्रह हों तो भी सद्योरिष्ट बनता है।

केवलरिपुरोगचित्तनाथाभ्याम् ।।४०।।

यदि षष्ठ स्थान और षष्ठेश से ८, १२ राशियों में पापग्रहों की दृष्टि या योग हो तो भी सद्योरिष्ट होता है।

षष्ठ स्थान से अष्टम लग्न होता है। इसी प्रकार षष्ठ से द्वादश स्थान पंचम त्रिकोण होता है। अतः सीधी बात यह है कि लग्न या पंचम में यदि पापग्रहों का योग या दृष्टि हो तो मनुष्य को बाल्यकाल में ही

अरिष्ट होता है। इसी प्रकार षष्ठेश से भी अष्टम व द्वादश स्थानों को देखना चाहिए।

यहाँ सब जगह पाप व शुभ ग्रहों का विभाग पूर्वोक्त प्रकार से ही लेना है। जैमिनीय मत में वास्तव में निसर्गत: कोई ग्रह पाप या शुभ नहीं है। इनका पापत्व या शुभत्व विशेषतया इनके आश्रय अर्थात् अधिष्ठित राशि में निहित है।

तत्रापि चित्तनाथापहारे ।।४१।।

यह पूर्वोक्त अरिष्टफल विशेषतया षष्ठेश की अन्तर्दशा में अथवा षष्ठस्थ राशि की अन्तर्दशा में होता है।

इस संदर्भ में २-१-६० सूत्र भी उल्लेखनीय है। वहाँ भी कहा था कि आत्मकारक के सप्तम से ६, ८, १२ स्थानेशों में से जो ग्रह या राशि बली हो, उसी की अन्तर्दशा जब मारक दशा में होगी तो मृत्यु होती है। वहाँ पर भी अल्पायु में षष्ठ राशि या राशीश की अन्तर्दशा मारक सिद्ध हो रही थी।

इति पं० सुरेशमिश्रकृते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्रभाष्ये तृतीयाध्यायस्य द्वितीय: पाद: समाप्त: ।।

तृतीयः पादः

मृत्यु का विशेष विचार

लेयलाभयोः पदम् ॥१॥

पहले भी पद से फल कथन कर चुके हैं। अब पद लग्न से मृत्यु का विशेष विचार कर रहे हैं।

लग्न और सप्तम भाव के पदों का इनमें विशेष उपयोग है। अतः लग्न व सप्तम भावों के पदों को जान लें। इनसे मृत्यु के स्थानादि का विचार किया जाएगा।

पूर्वोक्त उदाहरण में पद किस प्रकार होंगे। यहाँ इसे बताया जा रहा है।

जन्म कुण्डली व पद कुण्डली (उदाहरण) (सन्दर्भ सूत्र २-१-११ भाष्य)।
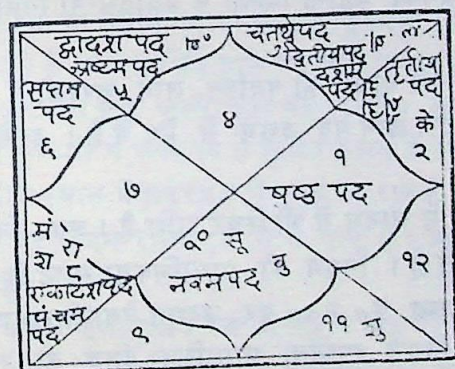
पदभावयोश्चरे ॥२॥

यदि लग्न व सप्तम भाव के पदों से अष्टम राशि चर हो तो मनुष्य की मृत्यु घर से बाहर देशान्तर में या मार्ग में होती है।

यहाँ 'भावयोः' पद को षष्ठी विभक्ति द्विवचनान्त मानकर लग्न व

सप्तम दोनों भावों का ग्रहण किया गया है। 'भाव' शब्द का कटपयादि से अर्थ अष्टम भाव आता है। अतः लग्न व सप्तम के पदों के दोनों अष्टम भावों का ग्रहण होगा। अथवा सप्तम पद व लग्न पद से अष्टम देखें। चर राशि चंचलता, चलायमानता व स्थानान्तर की प्रतीक है, अतः मुनिवर ने इन दोनों में चर राशि होने पर देशान्तर, स्थानान्तर या मार्ग में मृत्यु मानी है।

यदि वहाँ स्थिर या द्विस्वभाव राशि हों तो क्या फल होगा। सूत्रों में स्पष्ट नहीं है तथापि अनुक्तसिद्धिन्याय से कहा जा सकता है कि स्थिर राशि हो तो घर में और द्विस्वभाव हो तो घर या बाहर अंशभेद से मृत्यु जाननी चाहिए।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न पद से अष्टम द्विस्वभाव धनु राशि है और सप्तम पद से अष्टम चर राशि है। अतः द्विस्वभाव में दोनों गुण होने के कारण व चर राशि से बाहर मृत्यु सिद्ध होने के कारण इस जातक की मृत्यु अपने निवास स्थान से दूर या देशान्तर में होनी चाहिए।

पूर्वोक्त पं० नेहरू की कुण्डली में लग्न पद से अष्टम में स्थिर राशि व सप्तम पद से अष्टम में चर राशि है। अतः देश में ही घर में मृत्यु सिद्ध होती है। इनका देहान्त दिल्ली में प्रधानमन्त्री निवास (तत्कालीन) में ही हुआ था।

स्व० श्रीमती गांधी की पूर्वोक्त लग्न कुण्डली में लग्नेश चन्द्रमा सप्तम में है। अतः लग्न पद दशम में मेष में है। इससे अष्टम राशि स्थिर है।

सप्तम पद से अष्टम में भी स्थिर राशि है। अतः निश्चय से घर में ही मृत्यु सिद्ध होती है। नियम की प्रामाणिकता स्पष्ट है। हमारे **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य** पृ० २०८ पर उद्धृत नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की कुण्डली में भी नियम स्पष्टतः प्रामाणिक सिद्ध हो रहा है। हमारे विचार से लग्न व सप्तम पद के अष्टम स्थानों से प्राप्त फल अधिक प्रामाणिक है।

अप्राकृतिक मृत्यु का विचार

क्रान्तराशौ कर्मणि दृष्टं मरणम् ।।३।।

यदि इन लग्न पद व सप्तम पद से तृतीय स्थान में दुष्ट ग्रहों की युति या दृष्टि हो तो मनुष्य की मृत्यु अस्वाभाविक होती है। यहाँ क्रान्त-राशि का अर्थ नवांश राशि कैसे हो सकता है, यह विषय स्पष्ट नहीं है। हमारे मत से 'नवांश राशि' ऐसा अर्थ मानने का कोई उपलब्ध आधार नहीं है जैसा कि किसी ने कहा है।

यदि क्रान्त का अर्थ कटपयादि से लें तो लग्न अर्थात् पहला भाव अर्थ आता है। जैमिनीय सूत्रों में जिस भाव की चर्चा हो उसी को लग्न कहा गया है। जैसे पितृ शब्द से लग्न प्रकरण में जन्म लग्न। दशाओं में लग्न से दशारम्भ राशि। अतः लग्न का अर्थ केवल इस प्रकरण में गृहीत लग्न पद व सप्तम पद होगा। इसके अतिरिक्त यदि 'क्रान्त' शब्द का अर्थ सीधे लें तो इसका अर्थ होता है—प्रकरणगत। संस्कृत में क्रान्त या प्रकान्त शब्द का अर्थ उस वस्तु या पदार्थ से होता है जिसकी बात चल रही हो। अतः क्रान्त शब्द का अर्थ प्रकरणगत राशि लें तब भी लग्न पद व सप्तम पद का ही ग्रहण होता है। अतः हमारे विचार से लग्न पद से व सप्तम पद से तृतीय स्थान में पापग्रह योग दुष्ट मृत्यु देता है।

फिर पहले २-२-१२ में भी आतमकारक या लग्न से तृतीय स्थान में पापदृग्योग दुष्ट मृत्यु का कारण माना जा चुका है। इस सूत्र से यह अर्थ लेना चाहिए कि इन तृतीय स्थानों में यदि शुभयोग हो तो मृत्यु स्वाभाविक ढंग से होती है और मिश्रित होने पर मिश्र फल समझना चाहिए।

अस्तु उदाहरण से हम अपने पक्ष का परिपोष करते हैं। पूर्वोक्त श्रीमती गांधी की कुण्डली में लग्न पद से तृतीय स्थान में मिथुन में केतु है। सप्तम पद से तृतीय स्थान में धनुराशि में शुक्र व राहु हैं। जैमिनीय मत से दोनों स्थानों पर विषम राशि होने से ये पाप हैं। अतः अस्वाभाविक मृत्यु सिद्ध होती है।

पाराशर मत से शुभाशुभत्व देखें तो केतु व राहु तो पाप हैं, ही शुक्र भी केन्द्राधिप व एकादशेश होने के कारण अपना शुभत्व खो चुका है। अतः ये तीनों ग्रह पाप हैं।

राजकोप से मृत्यु योग

कर्मणिपापे राजाभ्यां यथासनु (बु)धे ।।४।।

यदि लग्न व सप्तम पदों से तृतीय स्थान में पापग्रहों के साथ बुध भी हो तो राजा के कोप से या आदेश से मृत्यु होती है। अथवा उक्त तृतीय स्थानों सहित लग्न पद में पाप ग्रह हों तो भी उक्त फल होता है। इस सूत्र में अन्तिम पद 'यथासनुधे' भी मिलता है। परन्तु उसका भी इस सूत्र में कोई अर्थ निकालना कठिन नहीं है। पहले अध्याय २, २ में बुध का कोई भी फल नहीं बताया है, अतः यहाँ बुध की सम्भावना बढ़ जाती है।

यदि 'सनुधे' पाठ ही मानें तो इसका अर्थ कटपयादि से लेना होगा– ध–९, न—०, स—७=९७÷१२=शेष १। अथवा ९०७÷ १२=शेष ७ आता है। तब इसका अर्थ इस प्रकार होगा—

'यदि लग्न पद में, सप्तम पद में व इनसे तृतीय स्थानों में पापग्रह हों तो मनुष्य की मृत्यु राजकोप से होती है।'

इसी प्रकार सबुधे' शब्द का अर्थ कटपयादि से लें तो शेष १ बचता है, अतः हमने इसका अर्थ किया है कि लग्नपद व सप्तमपद से तृतीय स्थानों में पापयोग हो तो राजकोप से मृत्यु होती है।

निष्कर्ष यह है कि लग्नपद व सप्तमपद से तृतीय स्थानों में पापग्रह होने पर अस्वाभाविक मृत्यु तो सिद्ध होती है। साथ में लग्नपद में भी पापग्रह हों तो मृत्यु राजकोप से होती है।

दिने दिनौ पुण्यम् ॥५॥

अष्टम से अष्टम स्थान में अर्थात् तृतीय स्थान में पुण्य राशि हो। अर्थात् लग्नपद व सप्तम पद से तृतीय स्थानों में यदि पुण्य राशि हो तो भी अस्वाभाविक मृत्यु होती है।

पुण्य राशि क्या है? जिस प्रकार चर स्थिर, द्विस्वभावादि विभाग हैं उसी प्रकार **पुण्य, पुष्कर** व **आधान** यह विभाग भी राशियों में प्राप्त होता है। तब क्रमशः चर राशियों की पुण्य संज्ञा, स्थिर राशियों की पुष्कर संज्ञा व द्विस्वभाव राशियों की आधान संज्ञा होती है—

'मेषतश्चतुरावृत्या पुण्याख्य पुष्कराभिधः।
आधानः क्रमशो वेद्याः धीरैर्द्वादश राशयः॥'

(ज्यो. तत्त्व, प्र. ४, २ श्लो. ४३)

यहाँ सूत्र से ३ सम्बन्ध मानकर 'अस्वाभाविक मृत्यु' का अर्थ लिया गया है।

तत्रकर्मादि ।।६।।

यदि लग्न पद व सप्तमपद से तृतीय स्थान से तृतीय में अर्थात् लग्न व सप्तम के पदों से पंचम स्थानों में यदि चर राशि हो तो भी अस्वाभाविक मृत्यु होती है।

यहाँ कर्मादि शब्द से पूर्वोक्त कर्मणि शब्द का सम्बन्ध है। अतः कर्म (तृतीय) से कर्म में (तृतीय में) ऐसा अर्थ किया है।

तत्र कर्मादि ।।७।।

इसी प्रकार पूर्वोक्त पंचम से तृतीय स्थानों में भी देखना चाहिए। अर्थात् लग्न पद व सप्तम पद से सप्तम स्थानों में यदि पुण्य राशि (चर-राशि) हो तो भी अस्वाभाविक मृत्यु माननी चाहिए। अर्थात् लग्न पद और सप्तम पद दोनों ही चर राशियों में हों तो उक्त फल कहना चाहिए।

पूर्वोक्त श्रीमती गांधी की कुण्डली में दोनों पद क्रमशः मेष व तुला में हैं अतः अस्वाभाविक मृत्यु सिद्ध होती है।

अकाल मृत्यु के योग

चराचरयोर्विपरीतकाले ।।८।।

अब पूर्वोक्त प्रसंग से सम्बन्ध जोड़ते हैं। यदि लग्न पद व सप्तम पद से तृतीय स्थानों में एक राशि चर हो व दूसरी स्थिर या द्विस्वभाव हो तो ऐसे व्यक्ति को विपरीतकाल अर्थात् असमय में मृत्यु मिलती है।

ऐसे योग में व्यक्ति की मृत्यु असमय अर्थात् अटपटे समय जैसे प्रातः सन्ध्या, सायं-संध्या में जब वर्तमान काल विपरीत हो रहा होता है, तब होती है।

अथवा ऐसा व्यक्ति अपमृत्यु का शिकार हो जाता है अर्थात् पूर्वागत स्पष्टायु को पूर्ण नहीं भोग पाता है।

पूर्वोक्त पं० मुकुन्द दैवज्ञ जी की कुण्डली में (अ. २,१) यह योग है परन्तु आयु खण्ड वही रहा। लेकिन एक बात ध्यान देने योग्य है कि इनकी मृत्यु प्रातःसन्ध्या के समय हुई थी। इसके विपरीत सुभाषचन्द्र बोस की कुण्डली में यह योग नहीं था तब भी अकाल मृत्यु हो गई थी। अस्तु, पाठक इस नियम की प्रामाणिकता व वास्तविक आशय को स्वयं परखें।

ततः कोशे ।।९।।

इस सूत्र के दो अर्थ सम्भव हैं।

१. लग्न सप्तम पदों के तृतीय से तृतीय (पंचम) में यदि चर व स्थिर या चर व द्विस्वभाव राशि हो तो भी अकाल मृत्यु होती है।

२. उक्त तृतीय स्थानों में (कोश=तृतीय) यदि शेष राशियों की अर्थात् द्विस्वभाव व स्थिर की स्थिति हो तो भी मनुष्य की असमय में मृत्यु होती है।

अर्थात् राशियों के जोड़े इस प्रकार बनेंगे—

(i) चर व स्थिर, (ii) चर व द्विस्वभाव, (iii) स्थिर व द्विस्वभाव।

हमें यह पहला अर्थ विशेष स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

पत्नीदृष्टमात्रगुरुयुक्ते ॥१०॥

यदि लग्न पद और सप्तम पद से तृतीय स्थानों में मेष राशि की दृष्टि हो और लग्न में बृहस्पति हो अथवा मेष राशि में बृहस्पति हो तो भी अपमृत्यु का भय होता है।

पत्नी व मात्र दोनों शब्द का अर्थ १ संख्या है। यह मेष राशि व लग्न दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकती है।

लग्न में बृहस्पति स्थित होकर तो कई अरिष्टों का नाश करता है। अतः लग्नगत बृहस्पति के आधार पर अपमृत्यु जैसा भीषण फल पाने की बात कल्पनातीत है। इसी कारण हम समझते हैं कि मेष राशि में ही बृहस्पति हो तो उक्त फल घटित होगा। इस प्रसंग में अकाल मृत्यु योगों को अरिष्ट योग भी कहा जा सकता है।

पत्थर लगने से मृत्यु योग

पापदृग्योगे ॥११॥

पाषाणमरणे ॥१२॥

लग्न व सप्तम भावों के पदों से तृतीय स्थानों में यदि पापग्रहों की दृष्टि हो तथा साथ में मेष राशिगत गुरु उन्हें देखता हो तो मनुष्य की मृत्यु पत्थर लगने से या पत्थर के कारण होती है। यद्यपि बृहस्पति की मेष राशीश मंगल से नैसर्गिक मित्रता है, परन्तु जैमिनीयमत में मेषराशिगत होने पर (विषम राशि) यह पाप तुल्य हो जाएगा, कदाचित् इसी कारण तृतीय

अनिष्ट स्थान पर इसकी दृष्टि को उक्त अशुभ फल देने वाला माना गया है।

आत्मदोष से मृत्युयोग (आत्महत्या योग)

तत्रकेतुयुक्ते ॥१३॥

दोषेण हननम् ॥१४॥

लग्नपद में, सप्तम पद में अथवा इनसे तृतीय स्थानों में यदि केतु हो तो मनुष्य की मृत्यु अपने दोष के कारण होती है।

यहाँ तत्र शब्द को अव्यय मानकर इसका अर्थ वहाँ अर्थात् लग्न पद या सप्तम पद में अथवा प्रासंगिक तृतीय स्थानों में केतु की स्थितिपरक लगाया गया है। यदि तत्र पद का अर्थ कटपयादि से लें तो लग्न पद से द्वितीय व सप्तम पद से द्वितीय (दोनों मारक स्थान) भावों को भी लिया जा सकता है।

केतौ पापदृष्टौ वा ॥१५॥

केतु पर यदि पापग्रहों की दृष्टि हो तब भी व्यक्ति आत्मदोष से मृत्यु प्राप्त करता है।

यहाँ केतु की किसी भाव विशेष में स्थिति का नियम नहीं है।

अत्र शुभयोगे ॥१६॥

लग्न व सप्तम पदों से अष्टम स्थानों में यदि शुभ ग्रह स्थित हों तो भी उक्त आत्महत्या वाला फल होता है।

अस्वाभाविक मृत्यु के अन्य योग

मलिनभावे कान्तराशौ कर्मणि दुष्टं मरणम् ॥१७॥

लग्न व सप्तम पदों में या इनसे मलिन अर्थात् ग्यारहवें स्थान में, भाव अर्थात् अष्टम स्थान में, और तृतीय स्थान में (कर्मणि) यदि पापग्रहों की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य की मृत्यु अस्वाभाविक ढंग से होती है।

इस संदर्भ में हिटलर की जन्मकुण्डली विचार योग्य है—

जन्मतिथि :
२०-११-१८८९

शनिवार, सायं
६·२२ p.m
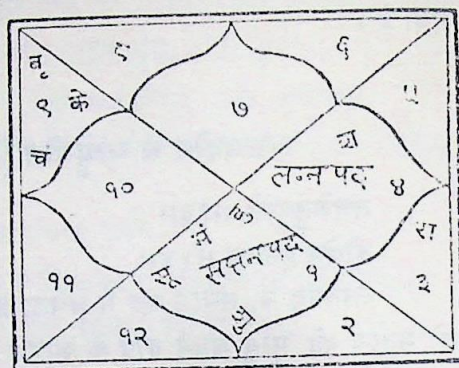
लग्नेश सप्तम में होने के कारण दशम भाव में लग्न पद है और सप्तमेश सप्तम में ही है अतः सप्तम पद वहीं है।

(i) सप्तमपद में कई पाप ग्रह हैं। जैमिनीयमत से शुक्र, बुध भी विषम राशिगत होने से पापी हैं तथा सूर्य मंगल तो अधिक पापी हो गए हैं।

(ii) सप्तम पद से तृतीय में राहु विषम राशिगत महापापी है।

(iii) सप्तम से ग्यारहवें स्थान पर राहु की पूर्वोक्त राशि दृष्टि है। इसी प्रकार बृहस्पति, केतु व चन्द्रमा (विषमगत पाप) क दृष्टि भी तृतीय में है। सप्तम पद से अष्टम पर सू. म. बु शु. की राशि दृष्टि है।

(iv) लग्न पद में शनि पापी नहीं है। किन्तु इससे अष्टम में सूर्य, मंगल, बुध, शुक्र, की दृष्टि है।

अतः अस्वाभाविक मृत्यु का एक प्रबल योग बनता है।

सूत्र १५ के अनुसार पापग्रस्त केतु पर राहु की पूर्ण दृष्टि है अतः अपने दोष से मृत्यु का योग भी बनता है। हिटलर की मृत्यु बहुत रहस्यमय ढंग से हुई थी। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने अपनी प्रेमिका सहित आत्म-हत्या की थी।

सूली-फाँसी आदि का योग

क्रूराश्रये सर्वं शूलादि ॥१८॥

यदि उक्त सभी स्थानों (लग्न पद, सप्तम पद, इनसे ३, ५, ११ स्थान) में सभी क्रूर ग्रह हों तो मनुष्य की फाँसी या सूली अथवा विद्युत घात से मृत्यु होती है।

आशय दुष्ट मरण व मृत्यु दण्ड से है। प्राचीन काल में दोषी व्यक्तियों को मृत्यु-दण्ड देने के लिए शूली पर चढ़ाना, फाँसी लगाना, हाथी से सिर कुचलवाना तथा आजकल पश्चिम देशों में इलैक्ट्रिक चेयर पर बैठा देना आदि ढंग प्रचलित हैं। कदाचित् सूत्रकार मृत्यु-दण्ड को ही रेखांकित करना चाहते हैं। इसलिए आदि शब्द का प्रयोग किया गया है। विषम राशि में सभी ग्रह क्रूर होते हैं, इसे तत्परता से हृदयंगम करके विचार करना चाहिए।

नियम की प्रामाणिकता को शहीद खुदीराम बोस की जन्म कुण्डली में परखते हैं—

जन्मतिथि : ३-१२-१८८९
स्थानीय समय : सायं ५ बजे
अक्षांश : २२°·२५′ उ०
रेखांश : ८७°. २०′ पू०
लग्न : १·१९°. ३०′
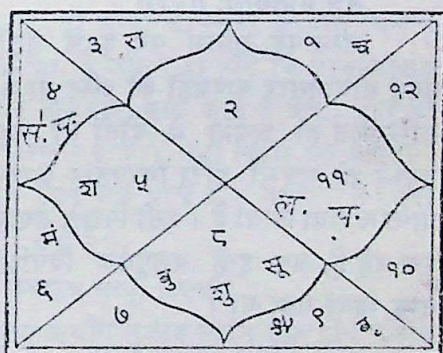
(i) लग्न पद से तृतीय में विषम राशिगत चन्द्र पापी है। ग्यारहवें स्थान में गुरु व केतु भी पापी हैं। तृतीय पर शनि की दृष्टि भी है।

(ii) लग्न पद से अष्टम व सप्तम पद से तृतीय (कन्या राशि) पर राहु, पापी गुरु व केतु की दृष्टि है। सप्तम पद से अष्टम में क्रूर चन्द्रमा की दृष्टि है।

(iii) कुण्डली में विषम राशिगत शनि, राहु, बृहस्पति, केतु व चन्द्रमा

हैं। सभी क्रूर ग्रह उक्त स्थानों पर दृष्टि रखते हैं या वहाँ स्थित हैं। अतः मृत्युदण्ड की भविष्यवाणी स्पष्टतया की जा सकती है। अंग्रेजों द्वारा इन्हें फाँसी पर लटकाया गया था। यह तथ्य सुविदित है।

राहुदृष्टौ निश्चयेन ।।१९।।

यदि उक्त स्थानों पर राहु की भी दृष्टि हो अर्थात् राहु सम या विषम किसी भी राशि में स्थित होकर उक्त स्थानों पर दृष्टि रखता हो तथा सूत्र १७ में बताए प्रकार से वहाँ पापग्रहों की दृष्टि या योग भी हो तो उक्त फल निश्चित रूप से घटित होता है।

पूर्वोक्त कुण्डली में राहु भी दृष्टिकारक है। अतः फल अनिवार्य रूप से मिला।

शत्रुओं द्वारा फाँसी आदि का योग

राहुशनिभ्यां दुष्टबलाद्वि ।।२०।।

तत्र प्रतिबन्धः ।।२१।।

लग्न पद, सप्तम पद, इनसे तृतीय, अष्टम व एकादश स्थानों में उक्त योगानुसार पापग्रहों की दृष्टि या योग हो और उनमें राहु व शनि भी सम्मिलित हों अर्थात् ये दोनों भी वहाँ स्थित हों या दृष्टि रखते हों तो मनुष्य को शत्रुओं द्वारा गिरफ्तार करके बाद में उक्त प्रकार से मृत्यु को प्राप्त कराया जाता है। इसी पिछले उदाहरण में राहु व शनि दोनों ही दृष्टि रख रहे हैं, अतः इन्हें बलपूर्वक विपक्षियों द्वारा पक्षपातपूर्ण ढंग से मृत्यु दण्ड दिया गया था।

संग्रहणी अथवा मलमूत्रावरोध से मृत्यु

तत्र प्रतिबन्धः ।।

कुजकेतुभ्यां नित्यं च ।।२२।।

पूर्वोक्त सूत्र २१ का यहाँ भी सम्बन्ध है। यदि लग्न पद व सप्तम पद से तत्र अर्थात् द्वितीय, तृतीय स्थान में राहु व शनि हों तो मनुष्य की मृत्यु मल-मूत्रादि में रुकावट अथवा किसी अन्य प्रकार की रुकावट से भी होती है।

यदि लग्न पद व सप्तम पद से द्वितीयादि स्थानों में मंगल व केतु हों तो उक्त रोग से व्यक्ति सदा पीड़ित रहता है।

वाशो योग्यफलदे (फूलर्दे) ॥२३॥

इस सूत्र का 'फूलर्दे' पाठ उपलब्ध है। इस स्थिति में इसका अर्थ सम्भव नहीं है। इसे लिपिकार की भूल मानकर यहां एक संशोधित विकल्प (फलदे) प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ।

व–४, श–५, ५४÷१२=शेष ६। अर्थात् षष्ठ भाव में, य—१, ग–०, य--१=११ अर्थात् एकादश भाव में अर्थात् लग्न पद या सप्तम पद से अथवा लग्न या आत्मकारक से ६, ११ स्थानों में यदि केतु मंगल की दृष्टि या योग हो तो उक्त प्रतिबन्ध वाले रोग का फल विशेष रूप से मिलता है।

षष्ठ स्थान रोगों का स्थान है। 'भावात्भावम्' के सिद्धान्त से छठे से छठा भाव अर्थात् ग्यारहवाँ भाव भी रोगों के विचार के लिए ग्राह्य है। फिर फलदे प्रथमा द्विवचन है। अतः दो भावों का स्पष्ट आभास मिलता है। प्राचीन लिपियाँ जिन्होंने देखी हों, वे जानते ही होंगे कि हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपियों में ऐसे पाठ भेद भ्रमवश बन जाते हैं अतः यहाँ भी इस लेखन त्रुटि की सम्भावना से बिल्कुल इन्कार नहीं किया जा सकता। इन्हीं सब कारणों के आधार पर यह उक्त अर्थ अल्प बुद्धि से किया है। मेरा आग्रह यह नहीं है कि यही योग्यतम अर्थ है।

मृत्युरोगाभ्यां राहुचन्द्राभ्यां यथास्वं मृत्युः ॥२४॥

लग्न पद व सप्तम पद से मृत्यु अर्थात् तृतीय स्थान और रोग अर्थात् अष्टम स्थान में यदि राहु और चन्द्र हों तो व्यक्ति की मृत्यु वहाँ स्थित राशि के शील, गुण स्वभाव से प्राप्त उपकरण से ही होती है अर्थात् जैसी राशि वहाँ हो तदनुसार ही मृत्यु के कारण का निश्चय कर लेना चाहिए। जैमिनीय मत में राशियों के सम्बन्धित रोगादि मृत्यु कारण इस प्रकार हैं—

मेष—चूहे, बिल्ली आदि नाखूनों वाले जानवरों से उत्पन्न रोग।

वृष—चौपाए जानवर बैल, गाय, भैंस, सांड आदि के घात।

मिथुन—मोटापा, इससे उत्पन्न विषमतायें व खुजली, दाद एग्जीमा आदि।

कर्क—जल पतन, जल सम्बन्धी रोग व कोढ़ या अन्य समान प्रकृति रोग।

सिंह—कुत्ते, गीदड़ आदि कुक्कुरवर्ग के जानवर।

कन्या—मोटापा, खुजली आदि व अग्नि, बुखार, भूख नष्ट हो जाना, गर्मी बढ़ने से होने वाले शारीरिक विकार या आग से जलना।

तुला—अत्यधिक श्रम, तनाव, मोह आदि।

वृश्चिक—जल जन्तुओं के घात, साँप, बिच्छू आदि विषैले डंक वाले जानवरों से प्राप्त दंश आदि।

धनु—ऊँची जगह से गिरना, चलती गाड़ी आदि से गिरना अथवा वाहन-दुर्घटना अथवा ऊँची जगह से फिसलकर गिरने वाली किसी भारी वस्तु का आघात।

मकर—जल-जन्तु, पक्षी, या अन्य आकाशचारी वस्तुओं के आघात खुजली, एलर्जी अथवा ट्यूमर, कैंसर आदि।

कुम्भ—तालाब, नदी, झरने आदि में गिरना अथवा क्षय रोग।

मीन—अत्यधिक उपवास व कठिन धार्मिक आचार आदि।

लग्न में राहु केतु व अष्टम में चन्द्रमा को पाराशर मत में भी अरिष्टकारक माना गया है। राहु व चन्द्र की युति भी आयु क्षीण करने वाली होती है। ज्योतिष सम्प्रदाय में चन्द्रमा को प्राण माना गया है। राहु छाया ग्रह है। अतः प्राण रूप चन्द्रमा से अधिष्ठित राशि में जब छायाग्रह राहु हो तो चन्द्र की निर्बलता व राहु की प्रभावशीलता स्पष्ट है।

अत्र भावकरादि ॥२५॥

पूर्वोक्त प्रकार से अत्र अर्थात् षष्ठ भाव में स्थित राशि से भी देखना चाहिए। अर्थात् मृत्युकारण निश्चय में लग्नपद, सप्तमपद व इनसे ३,६,८ स्थानों में स्थित राशियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती हैं।

लग्न बली हो तो लग्नपद से व सप्तम बली हो तो सप्तमपद से विचार करना चाहिए। इन भावों में स्थित राशियों के शील, इनमें स्थित कर अर्थात् नवांश व आदि पद से अन्य वर्गों को भी देखना चाहिए।

फुंसियाँ व गण्डमाला आदि रोगों का योग

तुरगवृषवर्गे ॥२६॥

अत्र कुज आस्फोटकादि कुण्डलधरश्च ॥२७॥

लग्नपद, सप्तम पद से ३,६,८ स्थानों में विशेषतया ३,८ में यदि तुरग अर्थात् वृषराशि और वृष अर्थात् कर्क राशि के वर्ग हों या ये राशियाँ वहाँ इन भावों में स्थित हों और वहीं पर मंगल भी हो तो मनुष्य को फटने वाले फोड़े, ट्यूमर, कैंसर, गण्डमाला अथवा अन्य किसी प्रकार की तत्सम बीमारी कोढ़ आदि से पीड़ा होती है। यही फल लग्न व आत्मकारक से भी समझना चाहिए।

रत्नाकर योगे ॥२८॥

यदि लग्न, आत्मकारक, लग्नपद व सप्तम से ३,८ स्थानों में कर्क व वृष के राशि नवांशादि वर्ग में चन्द्रमा हो तब भी उक्त फल होता है।

यदि मंगल भी साथ हो तब तो विशेष प्रभावशाली योग बनेगा। जातकालंकार में भी मेष या वृषगत चन्द्रमा को मंगल या शनि के साथ रहने पर कुष्ठकारक बताया गया है।

लाठी की चोट से मृत्यु योग

कालदण्डान्मरणम् ॥२९॥

यदि लग्न या कारक से अथवा लग्न पद या सप्तम पद से ३, ६, ८ स्थानों में यदि तुला राशि (काल) या इसके वर्ग हों तो मनुष्य की मृत्यु लाठी की चोट लगने से होती है।

साँप के काटने से मृत्यु योग

शेषाः भुजङ्गादि ॥३०॥

यदि उक्त तृतीय व अष्टम स्थानों में शेष अर्थात् सिंह राशि या सिंह का नवांशादि हो तो मनुष्य की मृत्यु साँप या अन्य डसने वाले जीवों के काटनें से होती है।

कीटवृषवृश्चिकांशे ॥३१॥

यदि उक्त तृतीय व अष्टम स्थानों में वृष अर्थात् कर्क राशि और वृश्चिक राशि का नवांश भी हो तो भी डसने वाले कीड़ों से भय व मृत्यु होती है।

वृष राशि का अर्थ कटपयादि से कर्क होता है और वृश्चिक शब्द से कटपयादि से भी वृश्चिक राशि (८) ही आती है। कर्क अर्थात् केकड़ा और वृश्चिक बिच्छू के स्वरूप वाली राशि है। सामान्यत: अष्टम भावगत राशि व नवांश की प्रकृति के अनुसार मृत्यु की प्रकृति और कारण निर्धारित किया जाता है। अत: इन राशियों में इन दंशशक्ति सम्पन्न जीवों को मृत्युकारण माना गया है।

जानवरों से मृत्यु योग

रोगमातृदृष्टयो: भावे मूषकादिमृति: ॥३२॥

जब लग्न, लग्नपद या आत्मकारक से अष्टम भाव को वृश्चिक व सिंह राशि देखती हों तो मूषक आदि छोटे जानवरों के कारण मृत्यु होती है।

इस स्थिति के लिए अष्टम भाव में चर राशि होनी चाहिए। क्योंकि स्थिर राशियाँ अपने से ठीक पिछली चर राशियों को छोड़कर शेष सभी चर राशियों को देखती हैं। अष्टम स्थान में चर राशि होने के लिए लग्न, लग्नपद या आत्मकारक द्विस्वभावराशि में होगा। अत: कहा जा सकता है कि जब उक्त तीनों लग्नादि या इनमें से कोई द्विस्वभावराशि में हो और इनसे अष्टम स्थान को सिंह व वृश्चिक राशियाँ देखें तो उक्त फल होगा। राशियाँ प्रत्येक अवस्था में कम-से-कम तीन राशियों को देखती हैं। तब इन राशियों की दृष्टि पंचम, अष्टम व एकादश पर एक साथ होगी।

विषपान आदि से मृत्यु योग

तत्र मन्दे ॥३३॥

यदि लग्न, लग्न पद (सप्तम बली हो तो सप्तम व सप्तम पद) व आत्मकारक से अष्टम स्थान में यदि शनि हो तो अग्रिम सूत्र में बताया गया फल होता है।

विषपानादि ॥३४॥

पिछले सूत्र से सम्बन्ध है। लग्नादि से अष्टम में शनि होने पर मनुष्य की मृत्यु का कारण जहर पीना अथवा अन्य जहरीले पदार्थ होते हैं।

सौम्यदृग्योगाभ्यां मण्डूकभेदादि ।।३५।।

यदि सूत्र ३३ वाला योग हो, परन्तु उस पर साथ में शुभग्रहों की दृष्टि का योग हो तो विष आदि पीने से मृत्यु न होकर केवल दस्त लगना, उल्टी आना व आँतों में कष्टदायी विकार होना आदि फल होते हैं।

कारकांश लग्न से मृत्यु-विचार

स्वांशग्राह्ययाद् वर्णनामभिः ।।३६।।

स्व अर्थात् आत्मकारक के नवांश से अर्थात् कारकांश लग्न से, कारकांश लग्न के स्वामीग्रह की अधिष्ठित राशि से और इनसे वर्ण अर्थात् षष्ठ स्थान और इनसे त्रिकोण स्थानों को भी देखना चाहिए।

अथवा नामभि अर्थात् पंचम स्थान व पंचम से चतुर्थ (अष्टम) स्थान को देखना चाहिए।

साथ ही ग्राह्य अर्थात् कारकांश लग्न व लग्नेश को भी देखना चाहिए। तब ग्रा—३, य—१ = १३, प्रथम भाव अर्थ होगा।

निष्कर्षतः कारकांश लग्न, उससे पंचम व षष्ठ स्थान और अष्टम स्थान को देखना चाहिए। इसी प्रकार कारकांश लग्न के स्वामी से भी १, ५, ६, ८ स्थानों को देखना चाहिए।

लेयान्मृत्युः ।।३७।।

चले मृत्युः ।।३८।।

कारकांश लग्न व इसके स्वामी ग्रह की अधिष्ठित राशि से (लेग) और इनसे चल अर्थात् द्वादश स्थान का भी विचार किया जाना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय हुआ कि कारकांश लग्न, कारकांश का स्वामी, इनसे पंचम स्थान में स्थित राशि, षष्ठ स्थानगत राशि, अष्टम स्थानगत राशि व द्वादश स्थानगत राशि विशेष भूमिका रखती हैं।

पाराशर मत में भी कारकांश लग्न से २,३,६,७,८,१२ स्थानों के स्वामियों में से सर्वाधिक बली ग्रह को मारकेश माना गया है। देखें **(आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य, पृ. ४१४)**

अथवा कारकांश लग्न से अष्टम स्थान में यदि लेय अर्थात् मेष व चल अर्थात् मीन राशि हो तो सामान्य मृत्यु होती है।

हमारे विचार से कारकांश लग्न के स्वामी व कारकांश लग्न से अष्टम भाव को विशेषतया देखना चाहिए। तथापि सूत्र ३६ का अर्थ कुछ

साफ़ नहीं है। हम समझते हैं कि मुनि ने सूत्र ३७ से ४६ तक कारकांश लग्नेश की राशि या कारकांश लग्न से अष्टम स्थान का ग्रहण किया है। अतः हम कह सकते हैं कि कारकांश लग्नेश या कारकांश के अष्टम भाव में मीन या मेष राशि हो तो मनुष्य की स्वाभाविक मृत्यु होती है।

दण्ड-प्रहार से मृत्यु

भाग्ये दण्डात् ॥३९॥

यदि कारकांश लग्न का स्वामी अथवा इनसे अष्टम स्थान में भाग्य अर्थात् वृषभ राशि हो तो मनुष्य की मृत्यु लाठियों की चोट से अथवा अन्य किसी प्रकार के डण्डे की चोट से होती है।

विषभक्षण से मृत्यु

कर्मे विषभक्षणात् ॥४०॥

यदि उक्त स्थानों में कर्म अर्थात् मिथुन राशि हो तो मनुष्य की मृत्यु का कारण विषभक्षण होता है।

बुखार का योग

दारे ज्वरभयम् ॥४१॥

यदि कारकांश लग्न या लग्नेश से अष्टम स्थान में दार अर्थात् कर्क राशि हो तो मनुष्य को बुखार से बार-बार पीड़ा होती है। दा—८, र—२ =२८÷१२=शेष ४, इसी प्रकार सभी राशिपरक अर्थ लिये जा रहे हैं।

शत्रुओं से भय के योग

माता शत्रुहतः ॥४२॥

यदि उक्त अष्टम स्थानों में माता अर्थात् सिंह राशि हो तो मनुष्य अपने शत्रुओं द्वारा मारा जाता है।

शनौ रिपुभयम् ॥४३॥

यदि उक्त अष्टम स्थानों में किसी भी राशि में शनि स्थित हो तो शत्रुओं से बहुत भय होता है। यदि वह शनि सिंह राशि में हो तब तो निश्चय से मनुष्य को उसके शत्रु मार डालते हैं।

कुष्ठ रोग का योग

लाभे कुष्ठरोगः ।।४४।।

यदि कारकांशेश व कारकांश लग्न से अष्टम स्थान में लाभ अर्थात् तुला राशि हो तो मनुष्य को कुष्ठ रोग होने का भय बना रहता है।

अतिसार-अण्डवृद्धि-हैजा-वमन का योग

विषूची जलरोगादि देहे ।।४५।।

यदि उक्त अष्टम स्थानों में देह अर्थात् कर्क राशि स्थित हो तो मनुष्य को विषूची अर्थात् हैजा होने के योग होते हैं अथवा जल रोग जैसे दस्त लगना, उल्टी आदि होते हैं। जल रोगों में अण्डकोषों में पानी आना अथवा फेफड़ों में पानी आने जैसे रोगों का भी ग्रहण हो सकता है।

अथवा जल-विकार से होने वाले रोग जैसे—मलेरिया, खुजली, विषाणु संक्रमण आदि भी गृहीत हो सकेंगे।

हथियार की चोट का योग

धने खड्गादौ ।।४६।।

यदि उक्त अष्टम स्थानों में धन अर्थात् धनुराशि स्थित हो तो मनुष्य को तलवार आदि तेज धार वाले हथियार से चोट लगने के योग होते हैं।

दुर्घटना योग

नित्यं दुर्मरणम् ।।४७।।

इन अष्टम स्थानों में यदि नित्य अर्थात् मकर राशि स्थित हो तो मनुष्य की मृत्यु कुत्सित ढंग से होती है।

व्यापक हिंसा से होने वाली वीभत्स और करुणाजनक मृत्यु का यहाँ ग्रहण है। अथवा किसी भी अवस्था में दयनीय मृत्यु से तात्पर्य है।

कारकांश के अष्टम में स्थित ग्रह व रोगादि

तत्र रवियोगे रिपुशस्त्राग्निभयम् ।।४८।।

कारकांश लग्न से अष्टम में या कारकांश से अष्टम में सूर्य स्थित हो तो मनुष्य को अपने शत्रुओं से व हथियार, अग्नि आदि से भय होता है।

अथवा कारकांश के स्वामी के साथ सूर्य स्थित हो तो भी उक्त फल होता है।

कुएँ आदि में गिरने का योग

चन्द्रेण कूपे ॥४९॥

कारकांशेश या कारकांश से अष्टम में चन्द्रमा स्थित हो तो मनुष्य को कुएँ, खाई आदि गहरे सजल स्थानों में गिरने का भय बना रहता है।

कुजेन व्रण स्फोटादि ॥५०॥

कारकांश लग्न के स्वामी से अष्टम स्थान में यदि मंगल स्थित हो तो मनुष्य को घाव, फोड़े, फुन्सी आदि का भय होता है। अर्थात् रक्त-विकार के कारण होने वाले शारीरिक उत्पात इस श्रेणी में आते हैं।

पेड़, पहाड़ आदि से गिरने का योग

बुधेन वृक्षपर्वतादयः ॥५१॥

यदि कारकांशेश से अष्टम स्थान में बुध स्थित हो तो मनुष्य पहाड़, पेड़ या अन्य किसी ऊंचे स्थान से गिरकर मृत्यु को प्राप्त होता है।

जलकर मरने के योग

गुरुणा स्ववंषम्येऽरौ पावकः ॥५२॥

यदि कारकांशेश से अष्टम स्थान में बृहस्पति स्थित्त हो तो मनुष्य अपनी विचार विषमता के कारण अथवा पारिवारिक मतभेद के कारण अथवा अपने प्रबल शत्रु के कारण या आग में जलकर आत्महत्या करता है।

अथवा कारकांशेश से अष्टम में गुरु हो और आत्मकारक विषम राशि में स्थित हो तो मनुष्य शत्रुओं द्वारा अथवा आग से मृत्यु को प्राप्त होता है।

गुप्त रोगों का योग

शुक्रेण शुक्लमेहात् ॥५३॥

कारकांशेश से अष्टम स्थान में यदि शुक्र स्थित हो तो मनुष्य को गुप्त रोग प्रमेह, धातुक्षय आदि के कारण मृत्यु मिलती है। अथवा ये रोग होते हैं।

विषभक्षण का अन्य योग

शनिना विषभक्षणादि ॥५४॥

कारकांशेश से अष्टम स्थान में यदि शनि स्थित हो तो मनुष्य की मृत्यु विष खाने या अन्य जहरीले संक्रमण से होती है।

राहुकेतुभ्यां विषसर्पलोष्ठबन्धनादिभिः ॥५५॥

यदि उक्त अष्टम स्थान में राहु या केतु स्थित हो तो मनुष्य की मृत्यु जहरीले साँप के काटने से या मिट्टी में दब जाने से अथवा किसी अन्य प्रकार के बन्धन से होती है।

यहाँ तक कारकांश से या कारकांशेश से अष्टम स्थान में स्थित राशि व ग्रह से मनुष्य की मृत्यु का स्वरूप निर्धारित किया गया है। यहाँ प्रतिपादित नियमों की प्रामाणिकता परखने के लिए उदाहरण प्रस्तुत है।

पूर्वोक्त कर्क लग्न वाले उदाहरण में आत्मकारक शुक्र कुम्भ नवांश में है; अतः कारकांश कुण्डली इस प्रकार है—

कारकांश लग्न (पूर्वोदाहरण जन्म २५-१-१९५६)
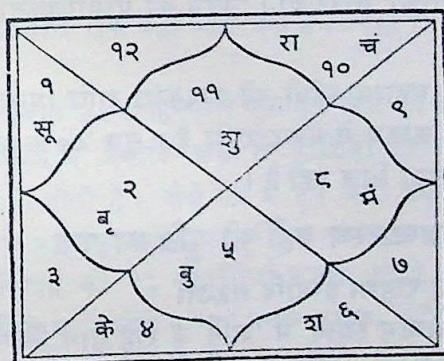
इस उदाहरण में कारकांशेश शनि से अष्टम में सूर्य है। वहाँ राशि मेष है। अतः राशि की स्थिति से स्वाभाविक मृत्यु का योग बनता है। (देखिए ३-२-३७,३८)

कारकांश लग्न (श्रीमती गांधी)
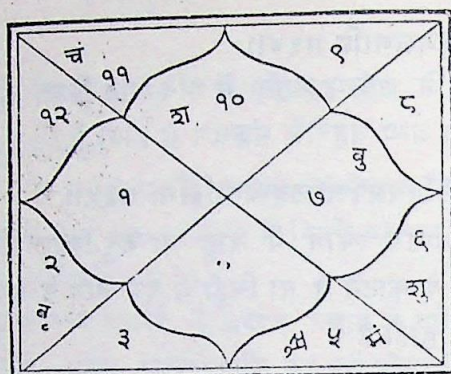
कारकांश लग्न में ही उसका स्वामी है। उससे अष्टम स्थान में सिंह राशि है, अतः सूत्र ४२ के अनुसार इन्हें इनके शत्रु द्वारा मृत्यु प्राप्त होनी चाहिए।

अष्टम में स्थित सूर्य (सूत्र ४८) शत्रु व शस्त्र दोनों से मृत्यु का बोध कराता है।

वहीं स्थित मंगल (सूत्र ५०) शरीर में घाव बनने की सूचना देता है। यह विश्व विदित तथ्य है कि इन्हें इनके विरोधियों ने बर्बरतापूर्वक काफी गोलियाँ चलाकर मारा था। नियम की प्रामाणिकता आप स्वयं देख सकते हैं।

इसी प्रकार महात्मा गाँधी की कारकांश राशि मिथुन (मंगल आत्मकारक) है। उससे अष्टम में मकर राशि है। सूत्र ४७ के अनुसार हिंसा से दुःखद अन्त की सूचना मिल रही है।

अष्टमस्थ ग्रहों की युति का फल

शनिराहुभ्यां राहुणा दण्डादि ॥५७॥

यदि उक्त अष्टम स्थान में शनि व राहु साथ स्थित हों तो मनुष्य नीच जाति के लोगों द्वारा अथवा चोर-उचक्कों द्वारा दण्ड-प्रहारादि होने से मृत्यु को प्राप्त होता है।

यहाँ राहु शब्द का अर्थ म्लेच्छ, यवन, नीच जाति, दुःशील पुरुषों से लिया गया है।

तत्र गुरुराहुभ्यामभिचारादि ॥५८॥

यदि वहाँ बृहस्पति व राहु स्थित हों तो मनुष्य की मृत्यु तान्त्रिक क्रियाओं द्वारा अभिचार (मारण मन्त्र चलाना या मूठ चलाना) से होती है।

तत्र गुरुशनिभ्यां दृष्टे यथास्वं मृत्युः ॥५९॥

यदि उक्त अष्टम स्थान को बृहस्पति व शनि देखते हैं तो मनुष्य की मृत्यु की प्रकृति इनकी अधिष्ठित राशियों से भी देखी जाएगी। उदाहरणार्थ श्रीमती गांधी की कारकांश कुण्डली में अष्टम स्थान को शनि देखता है। शनि मकर राशि में स्थित है अतः मकर का फल (दुर्मरण) भी सम्मिलित रहेगा। वास्तव में भी ऐसा ही हुआ था।

आत्मकारक का त्रिशांश व रोग विचार

स्वत्रिंशांशे कौलका फलरोगादि ॥६०॥

आत्मकारक ग्रह जिस त्रिंशांश के कुलक में हो तदनुसार ही मनुष्य को शरीर के विभिन्न अंगों में रोग हुआ करते हैं।

जैसा कि अध्याय १, पाद १ के सूत्र 'होरादयः सिद्धाः' के प्रसंग में हम कह चुके हैं कि जैमिनि सम्मत षड् वर्ग या सप्तादि वर्ग प्रचलित प्रकार से भिन्न हैं। द्वादशांश तक वहीं बता चुके हैं। यहाँ त्रिंशांश के विषय में देखिए—

त्रिंशांश अर्थात् ३०वाँ हिस्सा। एक-एक अंश का एक त्रिंशांश होता है। प्रत्येक त्रिंशांश में मेषादि क्रम से राशियों की लगातार २½-२½ आवृत्तियाँ राशि में होती हैं। जैसे मेष में १२ अंशों तक १२ राशियों की एक आवृत्ति, पुनः २४° तक दूसरी आवृत्ति व ३०° तक आधी आवृत्ति अतः एक राशि में राशिचक्र की २½ आवृत्तियाँ क्रमशः होंगी। इनमें पाँच अंशों का कुलक प्रचलित था। जैसे ०°-५° प्रथम कुलक, ६°-१०° तक द्वितीय, ११°-१५° तक तृतीय, १६°-२०° तक चतुर्थ, २१°-२५° तक पंचम व २६°-३०° तक षष्ठ कुलक होते हैं। इन्हीं कुलकों को कालान्तर में सम व विषम राशि-भेद से थोड़ा परिवर्तित कर प्रचलित त्रिंशांश का नक्शा तैयार किया गया होगा। लेकिन प्राचीन ऋषिसम्मत त्रिंशांश में १°-१°

का विभाग है। तथा राशि चक्र की तीस आवृत्तियाँ होती हैं। इसी प्रकार एक राशि में ५°-५° अंशों के ६ कुलक थे। अब आतमकारक जिस कुलक में त्रिशांशवश पड़ता हो तदनुसार फल कहा जाएगा।

ऋषिसम्मत त्रिशांश बनाने के लिए पड़ी रेखा पर १२ राशियाँ क्रमश: लिखें। इनके बाईं ओर १°-१° के ३० कोष्ठक ऊपर-नीचे बना लें। फिर मेष के नीचे से चलते हुए राशि चक्र को क्रमानुसार लिखें तो मेष से प्रारम्भ होकर मीन राशि के अन्तिम त्रिशांश में तीसवीं आवृत्ति पूरी हो जाएगी।

॥ आर्षं त्रिशांश चक्र: ॥

अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
१ १३ २५	मे.	तु.	मे.	तु.	मे.	तु.	मे.	तु.	मे.	तु.	मे.	तु.
२ १४ २६	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.
३ १५ २७	मि.	ध.	मि.	ध.	मि.	ध.	मि.	ध.	मि.	ध.	मि.	ध.
४ १६ २८	क.	म.	क.	म.	क.	म.	क.	म.	क.	म.	क.	म.
५ १७ २९	सि.	कु.	सि.	कु.	सि.	कु.	सि.	कु.	सि.	कु.	सि.	कु.
६ १८ ३०	क.	मी.	क.	मी.	क.	मी.	क.	मी.	क.	मी.	क.	मी.
७ १९	तु.	मे.	तु.	मे.	तु.	मे.	तु.	मे.	तु.	मे.	तु.	मे.
८ २०	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.	वृ.
९ २१	ध.	मि.	ध.	मि.	ध.	मि.	ध.	मि.	ध.	मि.	ध.	मि.
१० २२	म.	क.	म.	क.	म.	क.	म.	क.	म.	क.	म.	क.
११ २३	कु.	सि.	कु.	सि.	कु.	सि.	कु.	सि.	कु.	सि.	कु.	सि.
१२ २४	मी.	क.	मी.	क.	मी.	क.	मी.	क.	मी.	क.	मी.	क.

मस्तक प्रदेश में रोग के योग

ललाटे प्रथमम् ॥६१॥

आतमकारक यदि किसी भी राशि के ० अंशों से ५ अंशों के भीतर हो तो वह त्रिशांश के प्रथम कुलक में होता है। इस स्थिति में मनुष्य को ललाट में रोग होने के योग होते हैं।

इसमें सारे शरीर को ६ भागों में बाँटा गया है। अत: एक कुलक कालपुरुष के दो-दो अंगों का प्रतिनिधित्व करेगा। ऐसा होना चाहिए।

प्रथम कुलक—शिखा से गले तक।

द्वितीय कुलक—छाती से हृदय तक।

तृतीय कुलक—पेट व नाभि प्रदेश।

चतुर्थ कुलक—पेडू से लिंग तक।

पंचम कुलक—जाँघ व घुटने तक।

षष्ठ कुलक—पिण्डली व पैरों तक।

लेकिन यह आवश्यक है कि सभी ग्रहों के भुक्तांश ५° से कम हों तभी यह फल मिलेगा। क्योंकि अधिक अंश वाला ही आत्मकारक है। यदि आत्मकारक की ही अन्तिम सीमा ५° है तो शेष ग्रह तो पीछे ही रहेंगे। अतः यह बात व्यावहारिक रूप से कुछ कम संगत प्रतीत होती है।

'कौलक' शब्द यहाँ विशेष विचारणीय है। त्रिशांश के कुलकों के विषय में मुझे कुछ प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं। आगे मुनिवर ने ६ भागों में फल कहा है। अतः मैंने स्वबुद्धि से इनकी कल्पना की है। इसके योग्यतर वैकल्पिक अर्थ की सम्भावना को स्वीकार करने का अवसर स्पष्टतया हो सकता है। विद्वान पाठक स्वयं सोचें।

काल पुरुष का अंग विभाग भी इन सूत्रों से मेल नहीं खाता है। सारे छहों कुलकों में मुख प्रदेश का ही फल बताया गया है।

ऐसी स्थिति में नियमतः इस धरातल पर जन्म लेने वाले प्रत्येक मनुष्य के माथे, बाल, खून, कान, आँख व जीभ में ही रोग होगा।

ऐसी स्थिति में हम समझते हैं कि उपस्थित समस्या का कोई समाधान सोचना चाहिए अर्थात् 'स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया' इस सिद्धान्त के आधार पर ये परिस्थितियाँ हो सकती हैं—

(i) जब किसी कुलक विशेष में स्थित आत्मकारक को पापग्रह देखते हों।

(ii) जब कुलकगत आत्मकारक के साथ पापग्रह स्थित हों। तभी अंग विशेष में रोगोत्पत्ति की सम्भावना बतानी चाहिए।

(iii) अथवा आत्मकारक के कुलक में जो राशियाँ पड़ती हों, यदि उन्हीं सब राशियों में (अंशों की शर्त के बिना) ही सारे ग्रह स्थित हों तो उक्त परिपाटी से फल कहना चाहिए। जैसे मेष के प्रथम कुलक में आत्मकारक है। इस कुलक में मेष से कन्या

तक की राशियाँ हैं। यदि सभी ग्रह मेष से कन्या के बीच हों तो उक्त फल समझना चाहिए।

(iv) त्रिशांश से अरिष्टफल का विचार करने की बात पराशर ने भी कही है। अतः सभी रोगकारक या अरिष्टकारक ग्रहों की सूची बना लें। उनमें से जो ग्रह जिस कुलक में पड़े, वह ग्रह अपनी अधिष्ठित राशि की और अपनी प्रकृति के अनुसार उक्त अंगों में रोगकारक होगा।

अस्तु, यहाँ त्रिशांश से फल विचार की प्राचीन और आधुनिक युग में भी आवश्यक किन्तु विस्मृत परिपाटी का संकेत है। इस विषय में अनुसंधान की आवश्यकता है।

केशं द्वितीयः ॥६२॥

यदि आत्मकारक द्वितीय कुलक (६°-१०°) में हो और पापदृग्योग भी हो तो मनुष्य के बालों में रोग होता है।

रक्त में विकार का योग

रुधिरं तृतीयः ॥६३॥

यदि आत्मकारक तृतीय कुलक में (११°-१५°) हो और पापी ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो खून में रोग होने के योग होते हैं।

नेत्ररोग का योग

चतुर्थो नेत्रे ॥६४॥

यदि आत्मकारक चतुर्थ कुलक में स्थित हो अर्थात् किसी भी राशि में १६°-२०° के मध्य हो तो मनुष्य के नेत्रों में विकार होता है। पापयुक्त व दृष्ट होना भी रोग-वृद्धि का सूचक है।

हमारे निरन्तर चले आ रहे पूर्वोक्त कर्क लग्न (जन्म २५-१-१९५६) वाले उदाहरण में आत्मकारक शुक्र का स्पष्ट १०.१६°.२५'.००'' है। अतः वह चतुर्थ कुलक में स्थित है। जन्मकुण्डली में तो जैमिनीयमतानुसार पापदृग्योग नहीं है किन्तु इस व्यक्ति की नेत्र ज्योति बाल्यकाल में ही क्षीण हो गई थी। अब बड़े नम्बर का चश्मा लगाते हैं।

सिंहादौ पंचमे ॥६५॥

यदि आत्मकारक पंचम कुलक में हो तो मनुष्य को शेर आदि जंगली जानवरों से भय होता है।

जीभ में दोष के योग

षष्ठं जिह्वाग्रे ॥६६॥

यदि आत्मकारक छठे कुलक में (२६°-३०°) हो तो मनुष्य की जीभ में दोष होता है।

जिह्वाग्र बोलने में विशेष भूमिका रखता है जिसका यह भाग मोटा होता है, वह शब्दों को स्पष्ट उच्चारित नहीं कर पाता। अतः ऐसा भी हो सकता है कि इस स्थिति में व्यक्ति को वाणी का दोष हो।

पूर्वकेतुभ्यां स्वजिह्वादि ॥६७॥

त्रिशांश के पिछले छह भावों में यदि आत्मकारक राहु या केतु से युक्त हो तो मनुष्य को जीभ और वाणी सम्बन्धी रोग होने की सम्भावना होती है।

तत्र शनिमान्दिभ्यां गलद्वादी ॥६८॥

यदि त्रिशांश के पूर्ववर्ती ६ भावों में शनि व गुलिक स्थित होकर आत्मकारक के साथ योग करें तो मनुष्य को अटक-अटककर बोलने की आदत होती है।

अथवा आत्मकारक से पूर्ववर्ती ६ भावों में राहु या केतु हों तो जिह्वा रोग और शनि और गुलिक हों तो अटककर बोलने के योग होते हैं। पाठान्तर से गले में रोग होता है।

गुलिक या मान्दी के विषय में वृद्धों ने कहा है—

'रविवारादि शन्यन्तं गुलिकादि निरुप्यते।
दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद् गणयेत्क्रमात् ॥
अष्टमोऽशो निरीशः स्यात् शन्यंशो गुलकः स्मृतः।
रात्रिमप्यष्टधा भक्ता वारेशात्पंचमादितः ॥
गणयेदष्टमः खण्डो निष्पत्तिः परिकीर्तितः।
शन्यंशे गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशे यमघण्टकः ॥

भौमांशे मृत्युरादिष्टो रव्यंशे कालसंज्ञकः ।
सौम्यांशेऽर्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः ।। (वृ. का.)

(i) दिनमान या रात्रिमान को ८ से भाग दें । लब्धि दिनमान या रात्रिमान का १/८ भाग होगी ।

(ii) दिन में जन्म हो तो वार के अधिपति से और रात्रि में जन्म हो तो वारेश से पांचवें वार से क्रमशः सभी ७ सूर्यादि ग्रहों को एक-एक खण्ड का अधिपति मान लें। इसमें आठवाँ भाग स्वामी रहित रहेगा । इनमें शनि का खण्ड 'गुलिक' कहलाता है ।

इस प्रकार शनि का खण्ड 'गुलिक', बृहस्पतिखण्ड यमघण्टक, मंगल का खण्ड मृत्यु, सूर्य का अंश काल, बुध का अर्धप्रहर कहलाता है।

ये पूर्वोक्त यमघण्टादि उपग्रह हैं। काल, परिवेश, अर्धयाम या यामार्ध, यमघण्टक, धनु (इन्द्रधनु) गुलिक/मान्दि, व्यतिपात, उपकेतु ये ९ उपग्रह हैं। कुछ विद्वान् गुलिक व मान्दि को अलग मानकर इनकी संख्या १० मानते हैं। जैमिनीय मत में मान्दि व गुलिक अलग नहीं हैं। गुलिक साधन को और स्पष्ट करते हैं।

(i) दिन में जन्म हो तो रविवार को सातवाँ, सोमवार को छठा, मंगलवार को पाँचवाँ, बुधवार को चौथा, गुरुवार को तीसरा शुक्रवार को दूसरा व शनिवार को पहला खण्ड गुलिक खण्ड होता है।

(ii) रात्रि में रविवारादि क्रम से ३, २, १, ७, ६, ५, ४ खण्ड गुलिक होते हैं।

(iii) गुलिक साधन के लिए दिनमान या रात्रिमान को गुलिक खण्ड की क्रमसंख्या से गुणा करें। जैसे सोमवार को दिन में छठा

खण्ड गुलिक है अतः $\frac{\text{दिनमान}}{८} \times ६ =$ गुलिकेष्ट काल (सूर्योदयात्)।

यदि सोमवार रात्रि में जन्म हो तो $\frac{\text{रात्रिमान}}{८} \times २ =$ गुलिकेष्ट

इसे सूर्योदयात् बनाने के लिए इसमें दिनमान को भी जोड़ लें।

(iv) इस गुलिकेष्ट काल से लग्न साधन की तरह 'गुलिक स्पष्ट' साधन कर लें।

(v) स्टैंडर्ड टाइम सूर्योदय को सूर्यास्त में से घटाकर प्राप्त घण्टों को भी ८ से भाग देकर क्रिया की जा सकतो है।

गुलिक साधन की यही प्रचलित प्रक्रिया जैमिनीयमतानुसार ही है। श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी ने **जैमिनीयपद्यामृत** में कहा है—

कालौ मृत्युश्च यामार्धो यमघण्टस्तथा च ते।
स्वैः स्वैर्गुणैर्गुलिकवत्साध्यास्ते फलमादिशेत् ॥ (जैमिनीय पद्यामृत)

'काल, मृत्यु, यामार्ध, यमघण्टक आदि को भी गुलिक की तरह ही अपने-अपने गुणकों से गुणा कर साध लेना चाहिए।' इस विषय में हम **आयुर्निर्णय अभिनवभाष्य** के पृ. ४१९-२१ तक बता चुके हैं।

जल की कमी (सूखा) रोग का योग

तत्र कुजे शोषः ॥६९॥

यदि त्रिशांश कुण्डली में पूर्ववर्ती ६ भावों में मंगल स्थित हो तो मनुष्य को सूखा रोग होता है।

शरीर में अत्यधिक वमन या अतिसार के कारण या अन्य किसी कारण से जब पानी की कमी हो जाती है तो शरीर में असमय में झुर्रियाँ पड़ जाना, शक्ति का ह्रास, मुँह सूख जाना और अँतड़ियों में सूखापन हो जाने से कई विषमताएँ पैदा हो जाती हैं। अतः त्रिशांश कुण्डली में सावधानी से इन रोगादि योगों का विचार करना चाहिए।

सप्तमस्थ नवांश से मृत्यु का विचार

लाभांशे मरणम् ॥७०॥

लग्न या आत्मकारक से सप्तम स्थान (लाभ) में स्थित अंश अर्थात् नवांश से भी मृत्यु का विचार किया जाता है। इसी नवांश राशि में सूर्यादि ग्रहों की स्थिति का फल आगे बताया जा रहा है।

मलमूत्र की रुकावट या बन्धन योग

तत्र रवौ प्रतिबन्धः ॥७१॥

यदि लग्न या आत्मकारक से सप्तम स्थान में स्थित नवांश राशि में सूर्य स्थित हो तो मनुष्य को मलमूत्र में अवरोध उत्पन्न होता है। अथवा ऐसा व्यक्ति कारागार की पीड़ा भोगता है।

भावों के नवांशादि का ज्ञान भाव स्पष्ट के राश्यादि से करना चाहिए। लग्न स्पष्ट में ही ६ राशियाँ जोड़ने पर लग्न से सप्तम भाव एवं आत्मकारक के अधिष्ठित भाव में ६ राशियाँ जोड़ने से आत्मकारक से सप्तम भाव स्पष्ट ज्ञात हो जाएगा।

नुकीले हथियार की चोट के योग

कौन्तायुध धनौ रोगे ॥७२॥

आत्मकारक या लग्न की नवांश राशि से रोग अर्थात् अष्टम स्थान में धनू अर्थात् धनु राशि हो तो मनुष्य के शरीर में भाले आदि नुकीले हथियारों की चोट लगने के योग होते हैं।

यहाँ जो कुण्डली दी जा रही है, वह व्यक्ति एक बार हिन्दू मुस्लिम दंगों में हिंसा का शिकार हुआ। इनके मस्तक व मुख पर और जाँघ पर भाले से घाव बने तथा बेहोशी की हालत में इन्हें पानी में फेंक दिया गया था।

आत्मकारक
मंगल
६.२५°.१४'
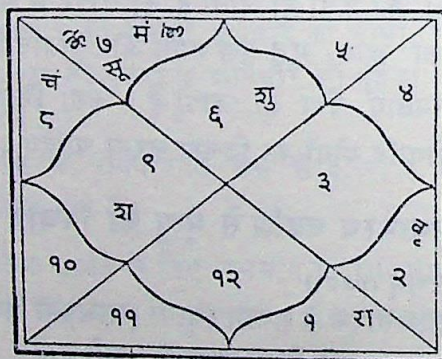
जन्मतिथि
सं. १९८६
कार्तिक शुक्ल
तृतीया रविवार
लग्न
५.१७°.३०'

आत्मकारक मंगल तुला राशि के २५° में होने के कारण वृषभ के नवांश में है। वृष राशि (आत्मकारक नवांश) से अष्टम राशि धनु है। अतः फलादेश स्पष्टतया घटित हुआ। नियम की प्रामाणिकता आप स्वयं समझ सकते हैं। मंगल की नवांश राशि वृष वाले पुरुष के मुख की प्रति-

निधि है। अष्टम नवांश राशि धनु जाँघ की प्रतिनिधि है। लग्न से द्वितीय भाव मुख का प्रतीक है। अतः उन्हीं अंगों में चोट के कारण स्पष्ट हैं।

तीर या गोली लगने के योग

सायकैर्धनम् ॥७३॥

आत्मकारक या लग्न से सप्तम स्थान में यदि धनु नवांश राशि हो तो मनुष्य को बाण-तीर आदि से चोट लगती है।

प्राचीनकाल में प्रमुख हथियार जहाँ धनुष-बाण थे वहीं आजकल इनके स्थान पर बन्दूक, पिस्तौल आदि का प्रयोग किया जाता है। अतः हमने इस योग में गोली लगने के योग की सम्भावना भी मानी है। पहले सूत्र ७१ से सप्तम राशि का ग्रहण किया था। अतः कोई निर्देश न होने के कारण हमने यहाँ आत्मकारक या लग्न से सप्तम राशि का ग्रहण किया है।

बिजली गिरने का योग

अशनि हृत्काये ॥७४॥

आत्मकारक या लग्न की नवांश राशि से अष्टम राशि यदि काय अर्थात् कुम्भ हो तो मनुष्य के ऊपर बिजली गिरने के योग होते हैं।

यहाँ हृत् शब्द का अर्थ अष्टम स्थान लिया गया है। अशनि शब्द का अर्थ संस्कृत में वज्र अर्थात् वर्षा के देवता इन्द्र का हथियार होता है। यह वज्र बादलों की परस्पर टकराहट से उत्पन्न बिजली ही होती है। अन्य किसी प्रकार की बिजली का करेंट लगने का योग भी सम्भव है।

मार्ग में शत्रुघात के योग

मार्गे मार्गे रिपूणां वैरिवर्गश्च स्ववैषम्ये रिपुः ॥७५॥

आत्मकारक या लग्न की नवांश राशि से मार्ग अर्थात् ग्यारहवें स्थान में, मार्ग अर्थात् कुम्भ राशि हो तो मनुष्य को अपने शत्रुओं द्वारा महान् भय होता है। यदि साथ ही आत्मकारक विषमराशि में स्थित हो तो शत्रुओं द्वारा व्यक्ति मार दिया जाता है।

षष्ठ से षष्ठ भाव (एकादश) होने के कारण शत्रुओं का विचार

ग्यारहवें भाव से संगत ही है।

क्रूराश्रयबले रिपुहतः ॥७६॥

आत्मकारक या लग्न की नवांश राशि में यदि कोई क्रूर ग्रह विषम राशि में स्थित हो तो निश्चय से ही व्यक्ति अपने शत्रुओं द्वारा मारा जाता है।

जैमिनीयमत में क्रूर ग्रह यदि विषम राशि में स्थित हों तो और अधिक क्रूर हो जाते हैं। अतः इस अवस्था में विषम राशि में आत्मकारक व आत्मकारक के साथ स्थित ग्रह, ये दोनों ही क्रूर हो जाएँगे।

शन्यारफणिवर्गाद्यैः ॥७७॥

आत्मकारक या लग्न में यदि शनि, मंगल व राहु के वर्ग अधिक पड़ रहे हों तो भी मनुष्य अपने शत्रुओं द्वारा मारा जाता है।

कुम्भ राशि को राहु का स्वगृह माना जाता है (जैमिनीय मत)। अतः इसी आधार पर राहु की राशि का निर्णय समझना चाहिए।

भावेशाक्रान्तराशिस्थः ॥७८॥

आत्मकारक के नवांश से अष्टम राशि का स्वामी यदि शनि, मंगल और राहु से युक्त हो तो भी उक्त फल होता है। आत्मकारक की नवांश राशि से भावेश अर्थात् अष्टमेश जिस राशि में स्थित हो, वह भावेशाक्रान्त राशि हुई। उसी राशि में यदि शन्यादि ग्रह हों तो मनुष्य शत्रुओं द्वारा मारा जाता है। पहले सूत्र ५६ के भाष्य में उल्लिखित श्रीमती गांधी की कारकांश कुण्डली में देखिए। आत्मकारक शनि मकर राशि के नवांश में है। अतः मकर से अष्टम राशि सिंह है। सिंह का स्वामी सूर्य है। उसी में सूर्य व मंगल स्थित हैं। अतः शत्रुओं द्वारा हत होने का योग बनता है। ये युतियाँ जन्म लग्न या कारकांश दोनों में देखनी चाहिए।

अब मुसोलिनी की कुण्डली पर दृष्टिपात कीजिए। इन्हें इनके विरोधियों द्वारा मारा गया था।

आत्मकारक की नवांश राशि मिथुन से अष्टम स्थान में मकर राशि है। इसका स्वामी शनि मंगल के साथ है। अतः शनि-मंगल की एकत्र स्थिति हो गई। सूत्र ७८ के अनुसार शत्रुओं द्वारा मारे जाने का योग बना। हमारा विचार है कि जैमिनिमुनि के सिद्धान्तों को आज जितनी

आतमकारक शुक्र
२.२९°.५१ मिथन
नवांश
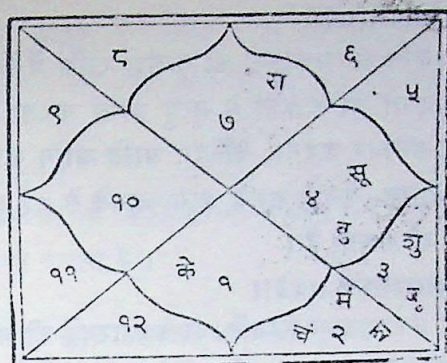
अधिक कुण्डलियों में परखेंगे तो निश्चय से आप इनके नियमों की प्रामाणिकता से खिल उठेंगे।

अपने लोगों द्वारा मारे जाने के योग

रवियुक्तदृष्टे प्राथमिकः ॥७९॥

आतमकारक या लग्न के नवांश से अष्टम राशि का स्वामी जिस राशि में हो, उसमें यदि सूर्य स्थित हो या सूर्य की उस पर दृष्टि हो तो मनुष्य अपने निकट सम्बन्धी द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है।

प्राथमिक शब्द से निकटवर्ती लोगों का अर्थ लिया गया है।

तत्र चन्द्रान्निश्चयेन कुजेन ज्ञातिभ्यः ॥८०॥

यदि आतमकारक नवांश से अष्टम राशीश सूर्य के साथ चन्द्रमा से भी युत-दृष्ट हो अथवा अकेला चन्द्रमा ही दृग्योग करता हो तो मनुष्य निश्चय से अपने बहुत निकटवर्ती व्यक्ति द्वारा मारा जाता है।

यदि उक्त अष्टम राशीश के साथ मंगल हो या वहाँ दृष्टि रखता हो तो अपने मित्र वर्ग से ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

आपसी झगड़े से मृत्यु योग

तत्र शनौ मृत्युवादाग्निकरणश्च ॥८१॥

आतमकारक ग्रह के नवांश से अष्टम राशि का स्वामी यदि शनि से युक्त या दृष्ट हो तो मनुष्य की मृत्यु आपसी वाद-विवाद से या किसी के दाह-संस्कार के समय अथवा किसी प्रकार का अग्नि सम्बन्धी कार्य करते समय होती है।

स्वांशेऽपि ।।८२।।

यदि शनि आत्मकारक की नवांश राशि में स्थित हो तब भी मनुष्य आपसी कलह या अग्नि कार्य से मृत्यु प्राप्त करता है। खाना बनाना, ग्म करना, दाह-संस्कार करना, वेल्डिग आदि अग्नि कार्य की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। भोजन बनाते समय आग लगने से हुई दुर्घटना में इस योग की परीक्षा की जा सकती है।

अन्यतरांशश्च ।।८३।।

इसी प्रकार अन्य सम्बन्धियों के कारकों की नवांश राशि से अष्टम राशि के आधार पर उन सम्बन्धियों के साथ होने वाली घटनाओं का बोध भी उक्त नियमों से हो सकता है।

नीचाश्रये विपरीतम् ।।८४।।

पहले सूर्य, मंगल, शनि, राहु आदि के कारण जो अस्वाभाविक मृत्यु बताई गई है, वहाँ पर सूर्यादि ग्रह यदि अपनी नीचराशि में हों तो विपरीत फल होता है।

आत्मकारक के नवांश से अष्टम राशीश यदि शनि के साथ हो तो पहले बता चुके हैं कि वह व्यक्ति शत्रुओं द्वारा मारा जाता है। अब यदि इस योग में शनि नीच राशि में हो तो सूत्रकार कहते हैं कि विपरीत फल होता है।

(i) यहाँ विपरीत शब्द का अर्थ हो सकता है कि शत्रु के स्थान पर मित्र से मृत्यु मिले। यदि मित्र द्वारा मृत्यु योग प्राप्त हो तो शत्रु हत होना चाहिए।
अग्नि के स्थान पर जल और वाद-विवाद के स्थान पर प्रेम को मृत्यु का कारण मानें। यह प्रथम विकल्प है। हमें यही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(ii) दूसरा विकल्प हो सकता है कि पहले बताए गए सभी मृत्यु कारण अस्वाभाविक हैं। अतः विपरीत अर्थात् स्वाभाविक मृत्यु माननी चाहिए।

अति सुन्दरता से मृत्यु

तत्र शनौ रूपे ।।८५।।

आत्मकारक के नवांश से अष्टम राशि के स्वामी के साथ या उस राशि में शनि हो तो मनुष्य की मृत्यु किसी सुन्दरी के मोहपाश में फँसने से होती है।

विषभक्षणादि ।।८६।।

अथवा उक्त स्थिति में शनि हो तो व्यक्ति प्रेम में निराश होकर जहर खाने से मृत्यु प्राप्त करता है।

सुप्रसिद्ध भावात्भावम् का सिद्धान्त

तनु तनौ दण्डहरम् ।।८७।।

तनु अर्थात् षष्ठ स्थान से तनु अर्थात् षष्ठ में, अर्थात् छठे से छठे (लग्न से एकादश) भाव का नाम 'दण्डहर' है। दण्ड अर्थात् सजा और उसे हरने वाला अर्थात् राजकोप या बन्धनादि से छुटकारा दिलाने वाला अर्थात् स्वतन्त्रता स्थान है। फलित ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ '**उत्तर कालामृत**' में एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि प्रत्येक भाव से जो विचारणीय विषय हैं, उन्हीं सब का विचार प्रकृत भाव से तत्संख्यक दूरवर्ती भाव से भी होगा। जैसे द्वितीय भाव से धन का विचार करते हैं। कुण्डली में द्वितीय से द्वितीय को एतदर्थ देखें। पंचम से पंचम (नवम) को भी विद्या आदि के लिए देखना चाहिए।

इसी आधार पर आयु स्थान अष्टम से अष्टम अर्थात् तृतीय को भी आयु स्थान माना जाता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक मूलतः जैमिनिमुनि हैं। इस सिद्धान्त का बाद में सभी ने प्रायशः यथेष्ट उपयोग किया है। इसी विषय को यहाँ प्रतिपादित किया जा रहा है।

तत्र भाव विशेषः ।।८८।।

अब मैं (जैमिनि) भावों के विषय में कुछ विशेष बता रहा हूँ। अर्थात् यहाँ इसी एकादश भाव से विशेष भावों के विषय में बताऊँगा।

पहले एकादश स्थान को स्वतन्त्रता का स्थान बता चुके हैं। **उत्तर कालामृत** में भी गुलामी का विचार अर्थात् स्वतन्त्रता होगी या परतन्त्रता? इसका विचार एकादश भाव से ही बताया गया है। प्राणों का छूटना भी तो स्वतन्त्रता है, अतः एकादश स्थान जहाँ उपचय अर्थात् वृद्धि-स्थान है, वहीं पर इससे अरिष्ट का विचार भी किया जाता है।

मारक स्थान का निश्चय

अघशवनिधनम् ।।८९।।

एकादश स्थान से चतुर्थ स्थान अर्थात् लग्न से द्वितीय भाव से मनुष्यों के निधन अर्थात् मृत्यु का विचार करना चाहिए।

अ—०, घ—४, श—५, व—४=४५४० ÷ १२=शेष ४। अर्थात् ग्यारहवें से चौथा भाव मारक भाव है। अथवा ४५४ ÷ १२=शेष १०, ग्यारहवें से दशम (लग्न से अष्टम) से जातकों की मृत्यु का विचार करना चाहिए। पाराशर मत में भी तृतीय व अष्टम आयु स्थान हैं अतः इनसे व्यय स्थान (२,७) मारक स्थान कहलाते हैं—

'अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत् ।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते ।।' (लघु पाराशरी)

पाराशर मत में भी सप्तम की अपेक्षा द्वितीय को बली मारक स्थान माना जाता है।

'तत्रापि सप्तमस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम् ।।' (वृ. पा. मारकभेद, ३)

अतः जैमिनीय मत में भी द्वितीय स्थान को मारक बताया जा रहा है।

माता-पिता का मारक स्थान

मातापित्रोर्द्वितीयः ।।९०।।

माता पिता की मृत्यु का विचार एकादश भाव से द्वितीय (द्वि—८, ती—६, य—१=१६८ ÷ १२=शेष ००) अर्थात् द्वादश भाव से होगा। यह स्थान लग्न से दशम है।

जैमिनीय मत में माता व पिता का विचार एक ही नवम भाव से है। यदि तार्किक दृष्टि से चलें तो नवम से सप्तम अर्थात् तृतीय स्थान माता का भी कहा जा सकता है।

दूसरे स्थान को पहले भी मारक माना है, अतः नवम से द्वितीय स्थान अर्थात् दशम को माता-पिता का मारक स्थान कहना युक्ति-युक्त है।

यहाँ ग्यारहवें भाव से गणना का कारण यह है कि सूत्र ८९ में एकादश भाव से गणना की गई है।

पाराशर मत में माता का स्थान चतुर्थ है। तब चतुर्थ से हानि स्थान ...ा मारक हो सकता है। यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि **पराशर** ...वम स्थान से पिता का विचार किया जाना स्वीकार किया है—

किंचिद् विशेषं वक्ष्यामि यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्।
नवमेऽपि पितुर्ज्ञानं सूर्याच्च नवमेऽथवा ॥

(वृ. पा., भाववर्ग, श्लोक ३८-३९)

इसी आधार पर दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में भी नवम भाव पिता का है। इस विषय में देव केरलम्, भावार्थ रत्नाकर, उत्तर कालामृत सभी की संहमति है। गुरुजनों का विचार नवम से ही होता है। दशम से पिता का विचार हमें तो भ्रामक प्रतीत होता है।

जैसा कि पहले बता चुके हैं कि पाराशर मत में सप्तम की अपेक्षा द्वितीय स्थान अधिक बली मारक है। अत: नवम से द्वितीय (दशम) और तृतीय से द्वितीय (चतुर्थ) क्रमशः पिता व माता के बली मारक स्थान हैं। तब कुण्डली विचार करते समय जातक को पिता का सुख कब तक और कितना मिलेगा, एतदर्थ पिता की आयु की अवधि का सामान्य होना आवश्यक माना गया तथा दशम व चतुर्थ से जातक को प्राप्त होने वाले पितृ-मातृ-सुख के सन्दर्भ में विचार किया जाने लगा। अत: पिता के भाग्य, उसकी आर्थिक स्थिति, पिता का अपना सुख, कीर्ति आदि का विचार नवम भाव से ही होगा। इसी कारण पराशर ने नवम भावफल के अध्याय में यही सब बताया है। तब दशम व चतुर्थ से केवल पितृ-सुख व मातृ-सुख (जातक के सन्दर्भ में) देखा जाना ही युक्ति-युक्त है।

भाई आदि का मारक स्थान

ज्ञातिवर्ग भ्रात्रादिस्तृतीयः ।।६१।।

अपने बन्धु-बान्धवों व भाइयों आदि की मृत्यु का विचार पूर्वोक्त एकादश भाव से तृतीय अर्थात् दशवें भाव से करना चाहिए। यह स्थान लग्न से अष्टम स्थान होगा।

ज्ञातिवर्ग का स्थान सामान्यतः चतुर्थ (बन्धु, मित्र) स्थान माना जाता है।

तृतीय व एकादश स्थान जैमिनीयमत में भ्रातृ स्थान है। (देखें,

सू.१-४-३२)। पहले शूल अर्थात् त्रिकोण विशेष मारक माने हैं। **'तत्तच्छूले तेषाम्'** (२-२-११)। अष्टम स्थान तृतीय से षष्ठ अर्थात् रोग स्थान है और चतुर्थ से पंचम अर्थात् शूल स्थान है। अतः इनकी मृत्यु का विचार ... म किया जाएगा। यदि कहें कि सबके अष्टम भाव या २,७ भाव ही मारक होंगे यही जैमिनि को अभीष्ट होगा तो इस विषय में निवेदन है कि तब जैमिनिमुनि एक ही सूत्र में जैसे—**तत्तदघशबनिधनम्'** ही सबकी बात कह देते। ऐसा उन्होंने पहले भी किया है। अतः सामान्य नियम से पृथक् बात प्रतिपादित करने के लिए ही इन सूत्रों की अलग-अलग रचना की गई है।

स्त्री का मारक स्थान

कलत्रं चतुर्थम् ।।६२।।

स्त्री की मृत्यु का विचार चतुर्थ अर्थात् एकादश भाव से दशम में ही होगा। यह स्थान लग्न से अष्टम होता है।

स्त्री स्थान से द्वितीय होने के कारण यह बली मारक होगा।

पुत्र का मारक स्थान

पुत्रं पञ्चमम् ।।६३।।

पुत्र की मृत्यु का विचार एकादश से नवम भाव (पंचम शब्द) से करना चाहिए। यह भाव लग्न से सप्तम होता है।

पुत्र का यह अनिष्ट स्थान है।

शत्रु वर्ग का मारक स्थान

शत्रुवर्गं षष्ठम् ।।६४।।

शत्रु वर्ग की मृत्यु का विचार एकादश से द्वितीय स्थान में (षष्ठ शब्द) होना चाहिए। यह भाव लग्न से द्वादश होता है।

प्रसिद्ध शत्रु स्थान से सप्तम मारक होता है। किसी ने द्वितीय, तृतीय आदि शब्दों को सीधे संख्यावाचक मानकर सूत्रार्थ किया है। हमें यह मन्तव्य स्वीकार नहीं है। जैसा कि पहले कह चुके हैं कि उस प्रकार से अर्थ करने पर सर्वत्र द्वितीय भाव ही आता है। ऐसी स्थिति में जैमिनि एक सूत्र से ही काम चला सकते थे। विज्ञ पाठक स्वयं देखें—

(i) अघशवनिधनम् में लग्न से द्वितीय भाव को अपने लिए मारक माना गया है। अब संख्यावाचक मानने से अर्थ इस प्रकार किया गया है--

(ii) सूत्र ९० में द्वितीय से द्वितीय अर्थात् (तीसरा स्थान) माता-पिता का मारक सिद्ध होता है।

(iii) तृतीय शब्द का अर्थ दूसरे भाव से तीसरा करके कहा है कि बन्धुओं का मारक स्थान चतुर्थ है।

(iv) चतुर्थ शब्द से द्वितीय अर्थात् पंचम स्थान स्त्री मारक माना है।

(v) इसी प्रकार दूसरे भाव से पाँचवाँ पुत्र के लिए व छठा शत्रु के लिए मारक भाव माना है।

इन सबके लिए ५ सूत्र लिखे गए हैं। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि स्वस्थान से द्वितीय भाव या सप्तम भाव को सर्वत्र मारक माना है। तब एक सूत्र में ही सारा अर्थ इस प्रकार कहा जा सकता था कि **'तत्तदघशव-निधनम्'**। अतः यह अर्थ सूत्र शैली के प्रतिकूल है।

दूसरा विरोध यह है कि जैमिनीय मत में तब स्त्री का भाव लग्न से चौथा हो जाता है। यह सर्वथा अप्रामाणिक है। अध्याय १, पाद २ में सूत्र **'लाभे चन्द्रगुरुभ्यां सुन्दरी'** में आत्मकारक के नवांश से सातवें नवांश में ही स्त्री का विचार किया गया है। वहीं पर चतुर्थ नवांश से मकान आदि अचल सम्पत्ति का विचार किया है। अतः चौथे स्थान से स्त्री का विचार करना ऋषिमत विरुद्ध है।

फिर कहीं पर कटपयादि का प्रयोग व कहीं पर संख्यावाचकत्व का प्रयोग परस्पर विरुद्ध व त्रुटिपूर्ण है।

तत्र पापानां सन्निकृष्टम् ॥९५॥

पूर्वोक्त मारक स्थानों में से जिसमें पापग्रह हों, उसी सम्बन्धी के मरण के विषय में समझना चाहिए कि उसकी मृत्यु असामान्य ढंग से होगी। अथवा उस सम्बन्धी की आयु क्षीण होने के योग होंगे।

सन्निकृष्ट शब्द का अर्थ बुरी मृत्यु हो सकता है। इस शब्द का प्रयोग 'निकट आना' अर्थ में भी किया जाता है। अतः ऐसे व्यक्तियों का

मरण निकट होता है अर्थात् उनकी आयु क्षीण होती है, ऐसा अर्थ किया गया है।

जनने ॥९६॥

इसी प्रकार विभिन्न सम्बन्धियों के भावों से जनन अर्थात् आठवें स्थान में यदि पापग्रह हों तो भी असामान्य मृत्यु समझनी चाहिए।

जैसे लग्न से अष्टम में पापग्रह जातक को, चतुर्थ में पापी माता-पिता को, द्वादश में पापी पुत्र को, द्वितीय में पापी ग्रह स्त्री को असामान्य मृत्यु देगा।

अष्टम स्थानों में शुभग्रह होने पर आयु के लिए अनुकूलता मानी जाती है।

स्त्री से विपत्ति योग

लाभे स्त्रिया विपत्तिः ॥९७॥

लग्न से सप्तम स्थान में अथवा ग्यारहवें से सप्तम स्थान में पापग्रह हो तो मनुष्य को स्त्री के कारण विपत्ति का सामना करना पड़ता है।

एकादश भाव से सातवाँ भाव, लग्न से पंचम है। पहले भी पंचम भाव को स्त्री मारक बता चुके हैं। अतः हम लग्न से सप्तम वाले अर्थ को प्रधान मानते हैं। इस स्थिति में सातवें पापग्रह होने से मंगलीक पाप प्रभाव भी प्रसिद्ध है।

मृत्यु विचार के विभिन्न स्थान

भावे स्वकर्म चित्तांशात्स्वांशे निधने निधनम् ॥९८॥

मृत्यु विचार इन भावों से करना चाहिए—

(i) भाव अर्थात् जन्म लग्न से अष्टम स्थान।

(ii) स्वकर्म अर्थात् आत्मकारक से तृतीय स्थान।

(iii) लग्न से षष्ठ भावगत नवांश राशि।

(iv) कारकांश कुण्डली की लग्न राशि से निधन स्थान अर्थात् नवम स्थान।

इन पूर्वोक्त स्थानों में स्थित ग्रहों से मृत्यु का विचार होगा। यहाँ यह विषय बताया जा रहा है।

ऊँचे स्थान से पतन योग

अभूच्चात् पतनम् ।।९९।।

लग्न से अष्टम में, आत्मकारक नवांश से नवम राशि में, लग्न से षष्ठ स्थान में यदि स्वयं आत्मकारक स्थित हो तो मनुष्य की मृत्यु ऊँचे स्थान से गिरने के कारण होती है।

सामान्य मृत्यु योग

शूले मृतिः ।।१००।।

इन पूर्वोक्त भावों में यदि कुम्भ राशि (शूल) पड़ती हो तो मनुष्य की मृत्यु सामान्य प्रकार से होती है।

शूल शब्द का अर्थ कटपयादि से ग्यारहवाँ भाव या ग्यारहवीं राशि होता है। मृतिः के साथ विशेषण नहीं है अतः सामान्य मृत्यु का अर्थ लिया गया है।

ज्ञानपूर्वक मृत्यु योग

धनेन ज्ञानवान् मरणम् ।।१०१।।

यदि पूर्वोक्त स्थानों में कहीं भी धनु राशि हो तो मनुष्य की मृत्यु ज्ञानपूर्वक होती है। अर्थात् मरण समय में व्यक्ति की इन्द्रियाँ काम करती रहती हैं।

संग्रहणी रोग से मृत्यु

नयने ग्रहणीरोगादिः ।।१०२।।

यदि लग्न से अष्टम में या कारकांश से तृतीय में, षष्ठ भाव के नवांश आदि पूर्वोक्त स्थानों में कहीं पर नयन अर्थात् मकर राशि हो तो संग्रहणी आदि पेट के रोगों के कारण मृत्यु होती है।

शत्रुओं द्वारा मृत्यु योग

शूले शत्रुमरणम् ।।१०३।।

यदि उक्त स्थानों में कहीं कुम्भ राशि हो तो मनुष्य को अपने शत्रुओं द्वारा मृत्यु मिलती है।

पहले कुम्भ राशि होने पर सामान्य मृत्यु बतायी है। अब यहाँ एक और वैकल्पिक फल बताया गया है।

ग्रहों से मृत्यु योग

उच्चे ग्रहभीतिः ।।१०४।।

यदि उक्त स्थानों में कहीं पर उच्च अर्थात् कन्या राशि हो तो मनुष्य की मृत्यु ग्रहों के उत्पात के कारण होती है।

ग्रहों के उत्पातों में वज्रपातादि प्राकृतिक प्रकोपों का ग्रहण हो सकता है। अथवा पकड़े जाने के भय से मृत्यु होती है।

संहिता ग्रन्थों में ग्रह उत्पात इस प्रकार बताए गए हैं।

प्रकृति का विपरीत हो जाना ही उत्पात है—

'अन्यत्वं प्रकृतेः यत्तदसावुत्पातसंज्ञकम् ।
अधर्मतस्त्वसत्याच्च नास्ति वधादतिलोभतः ।।
अनाचारान्नृणां नित्यमुपसर्गः प्रजायते ।
दिव्यान्तरिक्षक्षितिजविकारा घोररूपिणः ।।'

(वशिष्ठ संहिता)

अतः असत्य, अनाचार, भ्रष्टाचार, अतिलोभ, अधार्मिकता आदि के कारण मनुष्यों की उच्छृंखलता और निरंकुशता बढ़ जाती है। इसी से होने वाले उत्पात इस श्रेणी में आते हैं। दंगा, महामारी, बाढ़, भूकम्प, युद्ध आदि से मृत्यु का यहाँ ग्रहण है।

सूर्य व शनि से विशेष रोग-विचार

तत्र रविशनिभ्यामोजे कूटराशौ युग्मे निर्णयः ।।१०५।।

सूर्य व शनि जिस राशि में स्थित हों, उससे द्वितीय राशि का निर्णय कर लेना चाहिए।

यदि ये विषम राशि (ओजकूट) में स्थित हों तो गणना क्रमानुसार होगी। यदि ये समराशि में स्थित हों तो गणना व्युत्क्रम से होगी। यह नियम यहाँ लागू होगा।

पैरों में रोग के योग

धनुर्मुखाभ्यां पादरोगः ।।१०६।।

यदि सूर्य व शनि से द्वितीय राशियाँ धनु या मेष पड़ती हों या क्रम और लग्न में पड़ती हों तो मनुष्य के पैरों में रोग होता है।

धन शब्द नवम राशि या भाव का वाचक है और मुख से मेष राशि या लग्न का अर्थ लिया जा सकता है।

काल पुरुष के अंग विभाग में मेष राशि सिर में व धनु राशि जाँघों में पड़ती है। इसी प्रकार सूर्य मुख प्रदेश व शनि पैरों का स्वामी है।

सूर्य शनि से द्वितीय भाव लग्न होने पर ये द्वितीय या द्वादश में स्थित होंगे। इसी प्रकार नवम भाव होने पर ये दशम या अष्टम में स्थित होंगे।

सामान्यतः धनु राशि से मीन तक व नवम भाव से द्वादश तक जंघादि प्रदेश माना जाता है। शनि को रोगकारक भी माना गया है, अतः ऐसा फल युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

इस विषय में एक कुण्डली हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। इसे 'ज्योतिष और रोग' नामक पुस्तक में श्री जगन्नाथ भसीन ने प्रस्तुत किया है।

कुण्डली
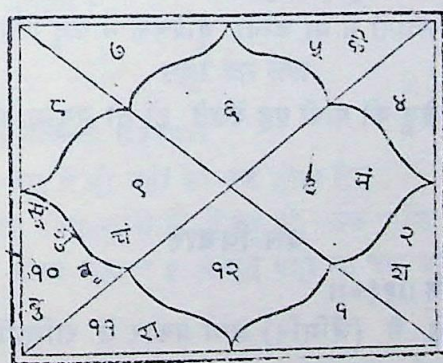
यहाँ सूर्य मकर समराशि में स्थित है। अतः इससे द्वितीय भाव में धनुराशि है।

शनि वृष समराशि में है। अतः इससे द्वितीय भाव में मेष राशि

है। नियम पूर्णरूपेण घटित है। फलस्वरूप इस व्यक्ति को २० वर्ष की आयु में नितम्ब की हड्डियां जुड़ जाने से जीवन भर लँगड़ाप... पड़ा। ...म

इसी बात को सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि सूर्य व शनि यदि वृष या मकर में स्थित हों अथवा अष्टम या द्वादश में विषम राशि में और द्वितीय और दशम में समराशि में हों तो मनुष्य के पैरों में रोग होता है।

अँगुलियों में रोग के योग

तनुविक्रमाभ्यामङ्गुलिरोगः ॥१०७॥

सूर्य व शनि से दूसरा भाव सम विषम राशि भेद से यदि षष्ठ या अष्टम में पड़ता हो।

इनसे द्वितीय भाव में क्रम-उत्क्रम से कन्या व वृश्चिक राशि पड़ती हो तो मनुष्य की अँगुलियों में रोग होता है।

विकलांग योग

तत्रकेतुना अंगहीनश्च ॥१०८॥

तत्र पापदृष्टे पादहीनः ॥१०९॥

यदि उक्त स्थानों में या कन्या वृश्चिक में केतु स्थित हो तो मनुष्य अंगहीन होता है।

यदि उस केतु को पापी ग्रह देखते हों तो मनुष्य को पैरों से रहित होना पड़ता है।

बल-विचार

अथ बलानि ॥११०॥

अब यहाँ से मैं (जैमिनि) अन्य प्रकार से राशियों के बलाबल का विवेचन कर रहा हूँ।

प्राणिनि शुभयुक्ते ॥१११॥

जिस राशि में शुभग्रह स्थित हों वह राशि भी बली होती है।

राशिबल भागे ॥११२॥

समान शुभ ग्रह होने पर अधिक अंश वाले ग्रह से युक्त राशि [illegible]ी जाएगी। राशि-बल पहले अध्याय २-३-९ में भी बताया ।

चर पर्यायेन ॥११३॥

चर, स्थिर, द्विस्वभाव भेद से भी राशियों को उत्तरोत्तर बली मानना चाहिए।

शुभदृष्टे पादहीनः ॥११४॥

यदि किसी राशि को शुभग्रह देखते हों तो उसका एक पाद अर्थात् चौथाई बल कम हो जाता है। अर्थात् वह त्रिपाद बली होती है।

शुभदृष्टि त्रिशूले ॥११५॥

इसी प्रकार किसी राशि से त्रिकोणों पर शुभग्रहों की दृष्टि होने से भी वह त्रिपाद बली होती है।

अंशत्रिशूले वा ॥११६॥

अथवा जिसकी नवांश राशि के त्रिकोणों पर शुभदृष्टि हो वह राशि भी त्रिपाद बली मानी जाएगी।

भावकोणाभ्यां निसर्गतः ॥११७॥

भावों व उनके त्रिकोणों का बल पूर्वोक्त निसर्गबल के अनुसार निश्चित करना चाहिए।

ग्रहों का बल

आश्रयतो बलिष्ठः ॥११८॥

राशि के बल से ही ग्रहों का बल होता है।

अर्थात् ग्रह जिस राशि में स्थित हो, उस राशि का बल ही उस ग्रह का बल भी माना जाएगा। अर्थात् ग्रहों का बल अधिष्ठित राशि बल के समान होता है।

षष्ठ भाव का मारकत्व

षादिभ राशौ पितृलाभयोः ॥११९॥

लग्न और सप्तम में से जो अधिक बली हो अर्थात् पिछले सूत्रों में बताई गई पद्धति से बलनिर्धारणपूर्वक बली लग्न या बली सप्तम से

(पितृ-१, लाभ-७) षादिभराशि (षष्ठराशि) में भी मृत्यु का निर्णय करना चाहिए। अर्थात् उस राशि की दशा, अन्तर्दशा में मृत्यु होती है

पाराशर मत में षष्ठ स्थान को किन्हीं विशेष परिस्थितियों में विचार में सम्मिलित किया जाता है। जैसे अष्टमेश, द्वितीयेश व सप्तमेश आदि व इन्हीं भावों के बलाबल व शनि का तारतम्य देखकर बलवान् मारक दशान्तर्दशाओं का निश्चय करने की परिपाटी है। किन्तु इन बली मारकों की दशा कभी बहुत देर से आने के कारण द्वादश से विचार किया जाता है।

'असंभवे जन्मलग्नाद् व्ययाधीशो हि मारकः।'

(सुश्लोक शतक, मारक०)

वास्तव में यही सिद्धान्त यहाँ भी प्रतिपादित है। पराशर व जैमिनि में यहाँ कोई विरोध नहीं है। जैमिनीय मत में लग्न बली हो तो लग्न से व सप्तम बली हो तो सप्तम से ही विचार किया जाता है।

अतः सप्तम से द्वादश स्थान, लग्न से छठा स्थान है। इसी प्रकार लग्न से द्वादश स्थान, सप्तम से छठा ही तो है। अतः दोनों परिस्थितियों में द्वादश ही एक प्रकार से मारक स्थान होता है। किन्तु जैमिनि षष्ठ को वही महत्त्व देते हैं। अतः हमारे विचार से मारक दशाओं की भुक्ति जीवन में असम्भव हो या न हो, सभी परिस्थितियों में दोनों ही षष्ठों की राशियों की दशादि को बल-निर्धारण से मारक समझना चाहिए।

आशय यह है कि लग्न व सप्तम से षष्ठ राशियों में से जो बली हो, उसकी दशादि में मृत्यु होती है। अर्थात् बल लग्न या सप्तम का न देखकर इनसे षष्ठ स्थानों का देखना चाहिए।

तृतीय स्थान का मारकत्व

स्वकर्मभेदेन ॥१२०॥

मारक दशाओं का निर्णय करते समय आत्मकारक से तृतीय (कर्म) स्थान का भी अन्य मारक भावों से तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए।

माता की मृत्यु का समय जानना

मूलत्रिकोणे पारिजातमयां जन्मयाधुवितत्र परिपाके ॥१२१॥

अपने जन्म लग्न व नवम भाव में स्थित राशियों की दशान्तर्दशा ...तक को आती है; तब वह उसकी माता के लिए मारक समय ... है।

मू—५, त—६, व—४=४६५÷१२=शेष ९।

इसी प्रकार प—१, र—२, प—१, त—६=६१२१÷१२=शेष १।

पहले नवम स्थान को माता-पिता का स्थान बता चुके हैं। अपने से त्रिकोण भावों की भी मारकत्व विवेक में विशेष भूमिका होती है। अतः नवम से त्रिकोण, लग्न को ग्रहण करना भी युक्तियुक्त है।

एवं निधनं मातापित्रोः ॥१२२॥

इस प्रकार मातृकारक, पितृकारक, नवमस्थ राशि, नवमेश आदि व इनसे त्रिकोण राशियों के आधार पर माता-पिता की मृत्यु का समय निर्धारित कर लेना चाहिए।

भूम्यंशश्च निवृत्तिकारकः ॥१२३॥

भूमि अर्थात् मंगल की नवांश राशि यदि उक्त राशियों में से हो तो उस दशा में माता की मृत्यु नहीं होती है।

पहले चन्द्रमा व मंगल में से बलवान् को मातृकारक बता चुके हैं। अतः भूमि से उत्पन्न होने वाले मंगल का अर्थ भूमि शब्द से लिया गया है।

यदि इस शब्द को कटपयादि से लें तो भू—४, म—५=५४÷१२ =शेष ६। अर्थात् षष्ठ भाव या कन्या राशि अर्थ आता है। तब यह अर्थ होगा कि लग्न से षष्ठ भाव में जो नवांश राशि हो वह राशि यदि उक्त राशियों में से कोई एक हो तो माता की मृत्यु की निवृत्ति हो जाती है, अर्थात् मृत्यु नहीं होती।

इस स्थिति में षष्ठ भाव, नवम से दशम भाव होगा। दशम भाव से मृत्यु का निषेध एक लम्बी तुक है, अतः हम मंगल वाले अर्थ को सम्भव मानते हैं। यह भी सम्भव है कि लिपि भेद से भौम शब्द का भूमि पाठ हो गया हो।

माता की निर्याण-दशा

...मृत्युः ॥१२४॥

माता या पिता की निर्याण दशा जानने के लिए भी पूर्वोक्त दशा साधन-पद्धति से राशि स्वामी तक गिनकर दशा वर्ष ... म चाहिए।

पहले चर दशा का साधन बता चुके हैं। व्यक्ति की अपनी चरदशा भेद से जब लग्न व नवम राशि की दशा आती है तो उसमें माता की मृत्यु समझनी चाहिए।

लग्न राशि व मारक राशि का सम्बन्ध

कर्मस्था चरपर्याये ॥१२५॥

भाग्यदारयोः स्थिरोभयोः ॥१२६॥

यदि लग्न या आत्मकारक चर राशि में हो तो इनसे सम-विषम भेद से तृतीय भाव से जातक को अपनी मृत्यु का निर्णय करना चाहिए।

यदि लग्न या आत्मकारक स्थिर राशि में हों तो द्वितीय राशि से मृत्यु का निर्धारण होगा।

यदि ये द्विस्वभाव राशि में हों तो चतुर्थ राशि से मृत्यु का निर्धारण करना चाहिए।

शुभ स्थानों का निर्णय

भाग्यकारकाभ्यां मंगलपदम् ॥१२७॥

लग्न व द्वितीय से पद अर्थात् नवम स्थान मंगल अर्थात् कल्याण, समृद्धि, शुभता, पुण्य आदि का भाव होता है।

मृत्यु मृत्युबि ॥१२८॥

मृत्यु का निर्णय सामान्यतः जन्म लग्न या आत्मकारक से तृतीय स्थानों में होना चाहिए। यह एक सामान्य नियम है।

मृत्यु शब्द का अर्थ तृतीय भाव ही है। तृतीय को वैसे भी अनिष्ट स्थान माना जाता है।

अन्यैरन्यथा ॥१२९॥

यदि तृतीय स्थान की अपेक्षा पूर्वोक्त अन्य मारक स्थान अधिक बली हो या कई नियमों के आधार पर यदि कोई तृतीयेतर भाव मारक

[illegible] रहा हो तो उसी बली भाव में स्थित राशि से, उस स्थिति में [illegible]र्णय करना चाहिए।

[illegible]ूतमन्यत् ॥१३०॥

इस विषय में यदि कोई नियम, उपनियम यहाँ नहीं बताया गया है तो उसका प्रयोग पिछले अध्यायों में प्रतिपादित नियमों व अन्य सम्बन्धित मतान्तरों (पराशरादि प्रतिपादित) से कर लेना चाहिए।

इति पं. सुरेशमिश्र विरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्रभाष्ये आयुर्दायापवादाख्ये तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः ॥

चतुर्थः पादः

पद लग्न से पुनः विशेष विचार

पुनः पदः पदे ॥१॥

अब मैं (जैमिनि) पुनः पद लग्न के नवम भाव से विशेष फल बता रहा हूँ।

यहाँ पदः शब्द का अर्थ नवम भाव है। प—१, द—८=८१÷१२ =शेष ९, इस प्रकार अर्थ लिया गया है!

उपग्रह युक्ते श्रीमन्तः ॥२॥

पद लग्न से नवम भाव में यदि कोई उपग्रह स्थित हो तो मनुष्य धनी एवं माननीय होता है।

उपग्रहों के विषय में हम अपने आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य के पृ० ४१९ पर बता चुके हैं। यहाँ संकेत मात्र करते हैं।

तात्कालिक स्पष्ट सूर्य + ४.१३°.२०′.००″=धूम स्पष्ट

१२ राशियाँ—धूम स्पष्ट	=व्यतिपात स्पष्ट
६ राशि + व्यतिपात स्पष्ट	=परिवेष स्पष्ट
१२ राशियाँ—परिवेष स्पष्ट	=इन्द्रधनुष स्पष्ट
इन्द्रधनु+०.१६°.४०′.००″	=उपकेतु

गुलिक का साधन प्रस्तुत भाष्य में अध्याय ३-३-६८ में बता चुके हैं। शेष काल, मृत्यु, यामार्ध व यमघण्ट के लिए भी दिनमात या रात्रि-मान के ८ समान भाग कर अर्थात् दिन या रात्रि के मान का १/८ भाग लेकर निम्नलिखित गुणकों से गुणा कर लेना चाहिए। यही गुणनफल इनका इष्टकाल होगा। इससे लग्न साधन की तरह इन्हें स्पष्ट किया जा सकता है।

[illegible] के गुणक इस प्रकार हैं--

	रविवार दि.रा.		सोमवार दि.रा.		मंगलवार दि.रा.		बुधवार दि.रा.		गुरुवार दि.रा.		शुक्रवार दि.रा.		शनिवार दि.रा.	
काल	१,४		७,३		६,२		५,१		४,७		३,६		२,५	
मृत्यु	३,६		२,५		१,४		७,३		६,२		५,१		४,७	
यामार्ध	४,७		३,६		२,५		१,४		७,३		६,२		५,१	
यमघण्ट	५,१		४,७		३,६		२,५		१,४		७,३		६,२	

वास्तव में दिनमान या रात्रिमान के अष्टमांशों में कालमृत्यु, यामार्ध, यमघण्ट व गुलिक के भाग होते हैं। पहले खण्ड का अधिपति स्वयं वारेश है। अगले खण्डेश वारक्रम से ही होते हैं।

इसी पद्धति से यहाँ बताया गया है। सूर्य का खण्ड काल है, मंगल का खण्ड मृत्यु, बुध का खण्ड यामार्ध या अर्धप्रहर, गुरु का खण्ड यमघण्ट, शनि का खण्ड गुलिक होता है। अतः रात्रि के गुणकों से पूर्वोक्त अष्टमांश को गुणा कर उसमें दिनमान भी जोड़ लेना चाहिए। तब गुलिक आदि का इष्ट काल होगा।

इन उपग्रहों में से कोई पद लग्न से नवम में हो तो मनुष्य को श्रीमान् समझना चाहिए।

पिता के जन्म लग्न से पुत्र का लग्न जानना

आधानं पितुर्लेयमेषम् ॥३॥

पिता के जन्म लग्न और उससे पंचम भाव से आधान लग्न या (गर्भाधान के समय का लग्न) लग्न जानना चाहिए।

पुत्र का जन्म लग्न जानने के लिए पिता की कुण्डली का अध्ययन सहायक होता है। लग्न स्वयं का प्रतिनिधि है अतः लग्न पिता है, पंचम स्थान पुत्र है। अब देखिए कि सूर्य से, चन्द्र से, लग्न से पंचम स्थानों में स्थित राशियाँ, नवांश राशियाँ व गुरु की राशियाँ प्रायः बलाबल भेद से इस विषय में सहायक होती हैं।

पहले ३-३-७२ के भाष्य में कन्या लग्न की कुण्डली को देखिए। वहाँ लग्न में कन्या राशि है, लग्न से पंचम में मकर, सूर्य से पंचम में कुम्भ व

चन्द्रमा से पंचम में मीन है। बृहस्पति वृषराशि व कर्क नवांश में है ... में मिथुन नवांश, पंचम में मिथुन नवांश, एक पंचम में धनु नवां...

इनके दो सन्तान कर्क लग्न में, एक धनु लग्न में व एक क... में उत्पन्न हुई है।

इसी प्रकार कर्क लग्न वाले निरन्तर चले आ रहे उदाहरण में देखिए—लग्न से पंचम में वृश्चिक राशि, चन्द्र से पंचम में तुला राशि, सूर्य से पंचम में वृष राशि व गुरु से पंचम में धनु राशि है। अस्तु, मंगल वृश्चिक में ही है, अतः वृश्चिक बली है और इनकी एक सन्तान वृश्चिक लग्न में पैदा हुई है। चन्द्र व सूर्य से पंचमेश शुक्र बलवान नहीं है। गुरु से पंचम में गुरु की राशि है। इनकी दूसरी सन्तान धनु लग्न में हुई है। सिंह की अपेक्षा धनुराशि बली है। यह एक पृथक् विषय है।

यहाँ पिता की जन्म कुण्डली से पुत्र का लग्न जानना बताया है। विशेषतया लग्न, गुरु, सूर्य व चन्द्र से पाँचवीं राशि को देखिए व इनकी नवांश राशियों का विचार कीजिए। बली राशियों में से पुत्र-पुत्रियों की लग्न राशि या चन्द्रराशि आपको मिल जाएगी और आप चमत्कृत हो उठेंगे।

ज्योतिष शास्त्र में जन्म लग्न से गर्भाधान का समय और गर्भाधान से जन्म का समय जान लेना सरल है। पहले गर्भाधान के लिए विशेष मुहूर्त्त देखकर पूजा करने के पश्चात् स्त्री पुरुष समुचित समय में संगम करते थे, अतः गर्भाधान का समय जानना सरल था लेकिन आजकल की परिपाटी में गर्भाधान किस दिन, किस समय हुआ होगा यह तो एक यक्ष प्रश्न हो जाएगा। अतः जन्म लग्न से गर्भाधान का समय जाना जा सकता है। इस विषय में **बृहज्जातक निषेकाध्याय** व मुकुन्ददैवज्ञकृत **प्रसवचिन्तामणि** का अध्ययन सहायक होगा। इस विषय में अपने निकट जानकार लोगों से सहायता लेकर गर्भाधान समय जानकर जन्म लग्नादि जानने से नियम की परीक्षा हो जाएगी। अनुसंधानात्मक बुद्धि वाले लोगों पर यह भार है।

पिता का फलादेश

सूर्यात् कर्मणि पितृो ॥५॥

...-पिता या केवल पिता का विचार करते समय, जिस भाव में ... हो, उससे तृतीय स्थान का विचार करना चाहिए।

...राशर के अनुसार सूर्य से नवम भाव में पिता का व चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में माता का विचार होता है।

हमारे विचार से इस सूत्र में निर्दिष्ट फल प्रकार के पीछे यह रहस्य है कि जैमिनि-मत में, लग्न व सप्तम में से जो बलवान् हो, उससे ही लग्नवत् विचार कर दशान्तर्दशादि चलती है। सप्तम मारक स्थान भी है। अतः शरीर की स्थिति व संहार दोनों क्रमशः लग्न व सप्तम से द्योतित होते हैं। यदि शरीर की वर्तमान स्थिति का सम्बन्ध लग्न से है तो शरीर के अन्त का सम्बन्ध सप्तम से है। अतः अन्ततोगत्वा लग्न व सप्तम विरोधी होने पर भी एक श्रेणी में ही आ जाते हैं। जब पिता का स्थान नवम है तो नवम से सातवाँ स्थान तीसरा ही होता है। अतः सूर्य व लग्न से तृतीय व नवम भाव का विचार माता-पिता के सन्दर्भ में अवश्य करना चाहिए। सूर्य पितृ कारक है। अतः सूर्य से तृतीय पिता का अनिष्ट स्थान हुआ। यही कारण है कि अशुभ फल के भाव और अभाव का विचार तृतीय से बताया है।

सन्तान का अन्य विशेष विचार

पुनः पद उत्तरयोः ॥५॥

पिता के जन्म लग्न से पंचम राशि व आधान लग्न अथवा पंचम राशि और सूर्य से तृतीय स्थान इन दोनों भावों के पद पिता की कुण्डली में जान लें। इनसे ही सन्तान होगी या नहीं ? पुत्र होगा या पुत्री ? उनकी भाग्यादि स्थिति कैसी होगी ? इत्यादि प्रश्नों का समाधान होगा।

सन्तान न होने का योग

पादाभ्यां भृगुसौम्यव्यतिरिक्ते ॥६॥

इन पदों में कहीं यदि बुध व शुक्र स्थित हों तो गर्भाधान हो जाने के बाद भी सफल प्रसव नहीं हो पाता है।

इस स्थिति में बार-बार गर्भनाश के योग होते हैं। अथवा गर्भाधान नहीं हो पाता।

आजकल आधान लग्न की वास्तविकता संदेहास्पद है ... विचार से उक्त योग में सन्तान सफलतापूर्वक न होने ... म समझना चाहिए।

यदि आधान लग्न व पंचम राशि से विचार कर रहे हों तो कहना चाहिए कि उक्त योग में गर्भाधान नहीं हो पाएगा।

यदि पंचम राशि व सूर्य से तृतीय राशि से देख रहे हों तो गर्भाधान न होगा अथवा हो जाने पर सफल प्रसव न होगा, ऐसा फल कहना ठीक होगा।

गर्भाधान न होने का योग

दिनकरे लाभे षोरे निःसंज्ञाः स्युः ।।७।।

यदि इन दोनों पद लग्नों से लाभ अर्थात् सप्तम स्थान में और षोरे अर्थात् द्वितीय स्थान में कहीं सूर्य हो तो गर्भाधान के प्रयत्न को निष्फल मानना चाहिए। अर्थात् तब गर्भाधान नहीं होगा। अथवा सन्तान नहीं होगी। अथवा गर्भनाश होगा।

सफल गर्भाधान के योग

प्रियानुपपत्तिः ।।८।।

यदि उक्त पदों से प्रिय अर्थात् (र—२, य—१=१२) बाहरवें स्थान में सूर्य हो तो उक्त नियम की अनुपपत्ति अर्थात् बाध हो जाता है। ऐसी स्थिति में सन्तानोत्पत्ति होती है।

तत्रपाकर्म ।।९।।

यदि उक्त पदों में कहीं तुला राशि स्थित हो तो भी सन्तानोत्पत्ति होती है।

पाकर्म अर्थात् प—१, क—१, म—५=५११÷१२=शेष ७।

इस प्रकार अर्थ लिया गया है। तुला राशि कालपुरुष के पेडू (बस्ति) में पड़ती है तथा गर्भाशय की स्थिति भी उसी क्षेत्र में होती है।

स्वकर्म व्याघ्रश्च ।।१०।।

यदि सूर्य, आत्मकारक की राशि में, कर्म अर्थात् आत्मकारक से

...में या व्याघ्र अर्थात् कारक से नवम राशि में स्थित हो तो ...ोग बताना चाहिए।

... योगों का विचार कदाचित् जैमिनि को आधान लग्न में ही आधक अभीष्ट है। पाराशर मत में आधान लग्न या प्रश्न लग्न से भी इस विषय का विचार किया जाता है। अतः पाठक प्रश्न लग्न से भी जैमिनीय मतानुसार विचार कर परीक्षा करें। यदि जन्म कुण्डली में विचार कर रहे हों तो इन योगों में सन्तान होने का योग मानना चाहिए।

गर्भपात के योग

दिनकरत्रिकोणे लाभपदे गर्भसंप्लवे ॥११॥

यदि सूर्य त्रिकोण स्थानों में हो या सप्तम स्थान के पद में हो तो गर्भ का संप्लव अर्थात् बह जाना, नष्ट हो जाना समझना चाहिए।

पंचम, नवम में सूर्य का होना किसी भी स्थिति में गर्भ को सुरक्षा नहीं देता है।

तत्र गर्भपाते ॥१२॥

यदि प्रश्न लग्न या आधान लग्न या जन्म लग्न से तत्र अर्थात् द्वितीय स्थान में सूर्य स्थित हो तो मनुष्य की स्त्री को गर्भपात होता है।

सामान्यतः चौथे, छठे, सातवें माह में गर्भपात की सम्भावना होती है। यह चिकित्सक लोगों का मन्तव्य है। सूर्य को ज्योतिष शास्त्र में चौथे माह का अधिपति माना जाता है। चतुर्थ मास का गर्भपात निश्चित रूप से निरुपाय होता है, अर्थात् गर्भपात की सम्भावनाएँ सबसे अधिक चौथे मास में ही होती हैं। यदि यह मासाधिपति सूर्य, द्वितीय अर्थात् मारक स्थान में हो तो निश्चय से गर्भपात योग होते हैं। गर्भ के सारे मासों के अधिपति ये माने गए हैं—

शुक्र, मंगल, गुरु, सूर्य, चंद्र, शनि, बुध, लग्नेश, चन्द्र, सूर्य।

वराहमिहिर का कथन है—

भवति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम् ॥ (बृ. जा. निषेक, १६)

मासाधिपतौ निपीडिते तत्कालं स्रवणं समादिशेत् ॥ (वही, श्लोक ६)

अर्थात् मासाधिपति यदि शुभयुक्त, शुभराशि में बली हो तो गर्भवती

को उस मास में शुभ होता है। विपरीत स्थिति मे मासेश हो... फल होता है।

जिस मास का अधिपति, वक्री, निपीडित, पराजित, रश्मिह...म हो, उस मास में तत्काल गर्भस्राव हो जाता है।

इस विषय की विशेष जानकारी के लिए मुकुन्द दैवज्ञ की **'प्रसव-चिन्तामणि'** का अध्ययन करें।

गर्भस्थ शिशु का लिंग-ज्ञान

रविकेत्वंशे शुक्रशोणितौ ॥१३॥

यदि सूर्य मेषराशि के नवांश में हो तो शुक्र अर्थात् वीर्य और शोणित अर्थात् रज का मिलन हो चुका है अथवा अवश्य पुत्र होगा, ऐसा समझना चाहिए।

फलित ज्योतिष में ऋतु और रेतस् अर्थात् आर्तव और शुक्र को क्रमशः शुक्र व मंगल प्रदर्शित करते हैं।

जिस वर्ष में पंचम भावस्थ राशि को, पंचमेश को और शुक्र को एक साथ मंगल का योग प्राप्त हो तो गर्भाधान होता है।

बृहज्जातक में बताया गया है कि जिस मास में स्त्री की जन्मराशि से ३, ६, १०, ११ स्थानों में चन्द्रमा हो, पुरुष की जन्म राशि से उपचय स्थानों में मंगल हो और विशेषतया इन्हें शुक्र देखता हो तो गर्भ सम्भव होता है। (वही, निषेक. श्लो॰ १)

इसी मन्तव्य को सारावलीकार व मणित्थ ने भी प्रकट किया है।

अब देखिए, मेषराशि मंगल की मूल त्रिकोण राशि है। इसमें यदि सूर्य हो या इसके नवांश में हो तो सूर्य अर्थात् पिता उच्च होकर मंगल अर्थात् रेतस् के प्रयोग से पुत्र प्राप्ति करेगा, यह बात तर्क-सम्मत है।

गुरु त्रिंशांशे ॥१४॥

यदि सूर्य बृहस्पति के त्रिंशांश में हो तो भी सफलतापूर्वक पुत्र प्राप्ति बतानी चाहिए।

बृहस्पति पंचम भाव का स्थिर कारक है। लेकिन गुरु का त्रिंशांश ही क्यों? नवांशादि का भी ग्रहण हो सकता है।

...द्दृग्योगे ॥१५॥

...र सूर्य चन्द्रमा का योग या दृष्टि हो तो भी निश्चय से गर्भयोग ...न्तान प्राप्ति बतानी चाहिए।

चन्द्रमा की दृष्टि को जैमिनि ने सर्वत्र शुभ व फलदायी माना है।

चन्द्रमा भी ऋतु का कारण है, मन है। सूर्य पिता है, गर्भाधान करने की शक्ति का प्रतीक है, अतः इन दोनों के दृग्योग में गर्भ होना युक्ति-युक्त है।

सुकलिषु वयोः ॥१६॥

यदि आधान लग्न, प्रश्न लग्न या लग्न से कलि अर्थात् सप्तम स्थान में शुभराशि व शुभग्रह हों तो गर्भ सुचारु रूप से वृद्धि करता है।

वराहमिहिर ने भी लग्न या चन्द्र के साथ या इनसे २, ५, ७, ६, १० भावों में शुभग्रह होने पर या सूर्य की दृष्टि होने पर गर्भ की पुष्टि मानी है। (वही, श्लोक १०); सूर्य को वेदों में भी प्रसव का अधिपति कहा गया है— **'सविता प्रसवानामधिपतिः स···।'**

(शुक्ल) शुक्र रेतौ ॥१७॥

शुक्र ग्रह स्त्री व पुरुष के रेतस् अर्थात् रजोवीर्य का अधिपति होता है।

वर्ण परिपाकम् ॥१८॥

माता-पिता की कुण्डली में पूर्वोक्त वर्णद लग्न को जब शुक्र देखे या वर्णदराशि में आए तब प्रसव होगा, ऐसा समझना चाहिए।

यस्याधानं चन्द्रदृग्योगे ॥१६॥

उपर्युक्त लग्नों के साथ चन्द्रमा का योग या दृष्टि होने पर अथवा चन्द्रमा के दृग्योग से गर्भाशय में भ्रूण की वृद्धि या हानि का ज्ञान करना चाहिए।

यथा आधान परिपाके च चन्द्रबुध भृगु योगाभ्याम्
आधानपरिमिते ॥२०॥

यदि आधान लग्न में और उससे परिपाक अर्थात् पंचम भाव में चन्द्र, बुध, शुक्र का योग हो तो गर्भ निरन्तर बढ़ता हुआ यथा समय प्रसव को प्राप्त होता है।

सुवर्णारणि संयोगे ॥२१॥

यदि लग्न से नवम व चतुर्थ स्थान में स्थित राशियों का ... या स्वामी सम्बन्ध या इनके स्वामियों का क्षेत्रादि सम्बन्ध हो तो ... अवश्य होता है।

शनिचन्द्राभ्यां नाभेरधः ॥२२॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में या इनसे पंचम स्थान में शनि व चन्द्रमा का योग या दृष्टि आदि हो तो गर्भ की नीचे की तरफ खिसकने की सम्भावना बनी रहती है।

इस योग में निश्चित गर्भपात नहीं बताया गया है।

गर्भवायु परिवृन्ते ॥२३॥

यदि उक्त आधान लग्न या प्रश्न लग्न में व इनसे पंचम स्थान में शनि चन्द्रमा का दृष्टि-योगादि हो तो गर्भाशय में वायु भर जाती है, अर्थात् कभी-कभी मिथ्या गर्भवती होने का भ्रम होता है या गर्भ के खिसकने के अवसर होते हैं।

तत्र केतुना पुष्करस्रजा रव्यादि केत्वन्तम् ॥२४॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में और इनसे पंचम स्थानों में यदि केतु की स्थिति हो तो स्त्री को गर्भावस्था में बीच में ही मासिक-स्राव होने लगता है।

इसी प्रकार सूर्य से केतु तक ग्रहों की स्थिति से उनका फल अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार समझना चाहिए।

शनि, चन्द्र व केतु का फल बता चुके हैं। मंगल यदि उक्त स्थानों में पाप प्रभाव में हो तो रक्तस्राव समझना चाहिए। बुध से नसों नाड़ियों में दर्द या त्वचा में विकार कहना चाहिए।

बृहस्पति उक्त स्थिति में हो तो गर्भावस्था में चर्बी बढ़ जाने की सम्भावना बतानी चाहिए। शुक्र हो तो रजो-विकार अथवा कफ-वृद्धि और राहु से गर्भस्राव या घबराहट, दुघटना आदि बतानी चाहिए।

ग्रहा नतिरेतः ॥२५॥

गर्भस्थ शिशु का लिंग और स्वभावगत विशेषताओं का निर्णय आधान लग्न, प्रश्न लग्न व आत्मकारक के द्वादशांश और द्वादशांशेश के शील, प्रकृति आदि के आधार पर करना चाहिए।

...ी द्वादशांश से उसके पूर्व जन्म की स्थिति मानी जा सकती है।
...ताया जा रहा है।

...न्ययोनिगर्भेष्वज: ॥२६॥

यदि उक्त द्वादशांश से द्विपद अर्थात् मनुष्य जन्म सिद्ध न हो तो प्राणी वियोनि अर्थात् अन्य योनि अर्थात् मनुष्येतर प्राणियों की स्वरूपगुणाकृति को लेकर जन्मेगा। अथवा वह पूर्व जन्म में वियोनि में था, ऐसा समझना चाहिए।

राहुचन्द्राभ्यां वीरतम: ॥२७॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न से प्रथम व पंचम स्थान में राहु व चन्द्रमा साथ हों तो मनुष्य का बालक वीर होता है। अर्थात् वह मानसिक रूप से काफी मजबूत होता है।

अवीरोपपत्ति: कर्मणि पाके एवं गर्भनिर्णय: ॥२८॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न से तृतीय या एकादश स्थान में राहु व चन्द्रमा स्थित हों तो उत्पन्न होने वाला बालक थोड़े मनोबल वाला, कमजोर इच्छाशक्ति वाला, अवीर होता है।

इस प्रकार गर्भस्थ शिशु के विषय में निर्णय करना चाहिए।

स्थानाद्यै: स्वांशगश्च ॥२९॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न से सप्तम स्थान या दशम स्थान में (स्थान व आद्य शब्द) राहु व चन्द्रमा स्थित हों अथवा तत्कालीन कारकांश लग्न में स्थित हों तो भी जातक कमजोर इच्छाशक्ति वाला होता है।

यथाधर्मशीले ॥३०॥

प्रश्न लग्न या आधान लग्न से शील अर्थात् पंचम स्थान में स्थित राशि के धर्म व गुण के अनुसार शिशु के आन्तरिक व्यक्तित्व का विचार करना चाहिए। राशियों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि स्वरूप, उनके रजोगुण, सत्त्वगुण प्रभृति गुणों आदि से निर्णय किया जा सकता है। अथवा वहाँ स्थित राशि के स्वामी के शील से देखना चाहिए।

कारकांश से शिशु का विचार

स्वांशग्रहैर्नीच उच्चयो: ॥३१॥

कारकांश लग्नराशि अर्थात् आत्मकारक की नवांश राशि में स्थित

ग्रह की नीच या उच्च स्थिति से शिशु के आन्तरिक स्वभाव, व्य...
का निर्णय करना चाहिए।

पूर्वोक्त प्रकार से जो भी फल मिले, वह यदि उच्चराशिग... म
कारण हो तो उस फल की पूर्ण मात्रा समझनी चाहिए और नीचगत होने पर शून्य फल मानना चाहिए। अथवा कारकांश लग्न में कोई ग्रह नीचगत हो तो बालक कमजोर मनोबल होता है और उच्चगत हो तो बालक दृढ़ विचार शक्ति वाला होता है।

क्रियमेषलग्नेषु ।।३२।।

इसी प्रकार कारकांश लग्न से, बारहवें भाव व पंचम भाव से भी नीचगत व उच्चगत ग्रहों की स्थिति से बालक की मनोवृत्ति व विचार-शक्ति का विचार करना चाहिए।

अथ रविप्राणाः ।।३३।।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में रवि की स्थिति से गर्भस्थ शिशु के प्राणों का विचार करना चाहिए। सूर्य ही आत्मा है। अतः सूर्य बली होने पर प्राणों को स्थिरता देगा। यदि सूर्य उस समय निर्बल हो तो बालक भी निर्बल होगा। प्रायः निर्बल सूर्य असमय में प्रसव करा देता है। अतः आधान लग्न में सूर्य का बली होना आवश्यक है। **वराहमिहिर** ने सूर्य, चन्द्र, मंगल व शुक्र की बलवत्ता को गर्भ की पुष्टि के लिए परम शुभ माना है।

(देखें, बृ. जा., निषेक०, श्लोक ३)

प्रसवकाल का ज्ञान

नैसर्गिकबलेष्वभियोग शूल इह जायते ।।३४।।

प्रश्न या आधान लग्न में जो राशि निसर्ग बली अधिक ग्रहों से युक्त हो, उसी राशि से त्रिकोण राशियों में जब सूर्य आता है तो प्रसव काल जानना चाहिए।

चर, स्थिर, द्विस्वभाव राशियाँ क्रमशः अधिक निसर्ग बली हैं। तब जिस राशि में अधिक ग्रह हों और उसका निसर्ग बल भी अन्य ग्रहाधिष्ठित राशियों से अधिक हो तो उसी राशि से १,५,९ राशियों में सूर्य जब जाएगा, तब यथासम्भव प्रसव होगा। यथासम्भव से हमारा तात्पर्य है कि गर्भ के प्रथम मास में व्यक्ति आकर प्रश्न करता है तब निसर्ग बली राशि से तीनों त्रिकोण राशियों में से भी सर्वाधिक बली को जानिए। उसी राशि

... में प्रसव होगा। यदि बलवान् राशि की संक्रान्ति गर्भ-परिपाक से ... तो गर्भपात कहना चाहिए। अन्यथा उससे १,५,९ राशियों में से जिसकी संक्रान्ति में गर्भ-परिपाक की अवधि व संक्रान्ति का समन्वय होता दिखे, उसी में प्रसव कहना चाहिए।

पुत्र होगा या पुत्री ?

पुं पुमान् ॥३५॥

प्रश्न या आधान लग्न में जो सबसे बली राशि हो, वह पूर्वोक्त प्रकार से जानी जा सकती है। उस बली राशि पर यदि पुरुष तत्त्व का प्रभाव अधिक हो तो पुत्र का जन्म कहना चाहिए। विषम राशि पुरुष व सम स्त्री संज्ञक होती हैं। विषम राशि पर पुरुष ग्रह (सूर्य, मंगल, बृहस्पति) का योग या दृष्टि से प्रभाव हो तो पुत्रोत्पत्ति कहनी चाहिए।

इसके विपरीत होने पर स्त्री जन्म कहना चाहिए!

अथवा प्रश्न लग्न या आधान लग्न पर उक्त प्रकार से प्रभाव का अध्ययन कर पुत्रादि की उत्पत्ति बतानी चाहिए।

इसी प्रकार उक्त लग्नों की नवांश राशियों को भी देखा जा सकता है।

यदि कई प्रकार से एक ही फल प्रतीत हो तो उसे ही प्राथमिकता देनी चाहिए।

इस विषय में **वराहमिहिर** ने कहा है—

(i) यदि लग्न, सूर्य, बृहस्पति व चन्द्रमा (लग्नवत् होने के कारण) यदि ये बलवान होकर विषम राशि में विषम नवांश में हों तो पुत्र जन्म होता है—

आजेक्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः।
पुञ्जन्म प्रवदेत्···।

(ii) यदि ये सब समराशि, सम नवांश में हों तो कन्याजन्म होगा—

···समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषितः॥

(iii) सूर्य व बृहस्पति दोनों विषम राशि में हों तो पुत्र-जन्म होगा और चन्द्र, मंगल व शुक्र तीनों समराशि में हों तो कन्या-जन्म समझना चाहिए

गुर्वर्कौ विषमे नरं शशिसितौ वक्रश्च युग्मेस्त्रियं···

(iv) यदि चन्द्र, मंगल, शुक्र द्विस्वभाव राशि में बुध से दृ
मिथुन, धनु से पुत्र युगल व कन्या मीन से कन्या युगल का
जन्म समझना चाहिए।

द्व्यंगस्था बुधवीक्षणाच्चयमलौ कुर्वन्ति पक्षे स्वके ।।]

(v) शनि यदि लग्नेतर स्थान में विषमगत हो तो पुत्र जन्म
समझना चाहिए। (बृ. जा. निषेक. श्लो ११-१२)

बाण इति ।।३६।।

आधान लग्न या प्रश्न में स्त्री राशि या स्त्री नवांश होने पर पूर्वोक्त प्रकार से कन्या का जन्म समझना चाहिए। यहाँ बाण शब्द कन्या राशि का द्योतक है, अतः हमने कन्या जन्म इस अर्थ का अनुमान किया है। अथवा षष्ठ भाव से शिशु के वर्णादि का ज्ञान करना चाहिए।

शिशु का वर्ण जानने का प्रकार

अत्रोदाहारः ।।३७।।

यहाँ से इस विषय में विशेष कथन किया जाता है। यहाँ 'उदाहार' शब्द से प्रचलित उदाहरण रूपी अर्थ नहीं लेना चाहिए। उदाहरण सूत्रों की रचना नहीं होती। संस्कृत में उदाहार का अर्थ है—अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए किया गया विशेष कथन। इसमें उदाहरण, दृष्टान्त, निदर्शन भी हो सकते हैं। किन्तु उदाहार का अर्थ केवल उदाहरण देना मात्र नहीं होता। यदि मुनि यहाँ कहते हैं कि जैसे कर्क लग्न आधान लग्न हो तो तृतीय में स्त्री राशि कन्या होगी, इत्यादि; तब उदाहरण होता, लेकिन वे इस विषय से सम्बन्धित योगों का आगे उल्लेख कर रहे हैं, अतः उदाहार का अर्थ है—अपनी बात की विशेष व्याख्या, विस्तार, प्रस्तार, सिद्ध करने का प्रयत्न इत्यादि। अतः उदाहरण (Example) अर्थ नहीं है।

हल्का गुलाबी रंग होने के योग

केतुशनिभ्यां रक्तप्रवरः ।।३८।।

यदि केतु व शनि ये दोनों, आधान लग्न या प्रश्न लग्न में साथ-साथ

...क हल्के लाल रंग का होगा। अथवा बालक की माता की गर्भा-
... रक्तस्राव होने के योग होते हैं।

कृष्णवर्णशिशु का ज्ञान

शनिपाताभ्यां कृष्णवर्णः ॥३९॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में शनि व राहु का एकत्र योग हो तो शिशु काले रंग का होगा।

शनिशुक्राभ्यां श्यामवर्णः ॥४०॥

यदि आधान या प्रश्न लग्न में शनि व शुक्र की सहस्थिति हो तो बालक गौरवर्ण होता है।

नीलवर्ण होने का योग

शनिबुधाभ्यां नीलवर्णः ॥४२॥

शनि व बुध का योग होने पर बालक का रंग नीला अर्थात् बहुत चमकीला काला रंग होता है।

सुन्दर लाल रंग होने का योग

शनिकुजाभ्यां रक्तः सुवर्णः ॥४३॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न में शनि व मंगल की युति हो तो शिशु का वर्ण सुन्दर लाल होता है।

उज्ज्वल वर्ण होने का योग

शनिचन्द्राभ्यां श्वेतवर्णः ॥४४॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में शनि व चन्द्रमा का एकत्र योग हो तो बालक का रंग अत्यन्त गौर उज्ज्वल होता है।

कारकांश से बालक का वर्ण निश्चय

स्वांशवशाद् गौरनीलादीनि ॥४५॥

आधान लग्न और प्रश्न में जो ग्रह अधिक अंशों वाला हो, वह जिस नवांश में स्थित हो, उस नवांश राशि के वर्णादि के आधार पर भी गर्भस्थ शिशु के वर्ण की तुलनात्मक स्थिति जान लेनी चाहिए।

पूर्वोक्त प्रकार से प्रश्न लग्न या आधान लग्न से और अ[illegible] के नवांश से तुलना कर बहुमत पक्ष से वर्ण का निश्चय करना च[illegible]

इस विषय में १-४-४२ में भी बताया गया है। राशियों के वर्ण इस प्रकार हैं—

मेष	रक्त वर्ण	तुला	कृष्ण वर्ण
वृष	श्वेत वर्ण	वृश्चिक	पिशंग (पीला) वर्ण
मिथुन	हरित् वर्ण	धनु	पिंगल (पीला) वर्ण
कर्क	पाटल (गुलाबी) वर्ण	मकर	चित्र वर्ण
सिंह	पाण्डु वर्ण	कुम्भ	भूरा रंग
कन्या	चित्रवर्ण	मीन	गौर वर्ण

तथाप्युदाहरन्ति ॥४६॥

इस विषय में (गर्भनिर्णय) में और विशेष बताते हैं।

सन्तानोत्पत्ति का कारण

रेतः सिञ्चन् प्रजाः प्रजनयमिति विज्ञायते ॥४७॥

पुरुष के शुक्राणु से स्त्री के अण्डाणु के मिलन से सन्तान उत्पन्न होती है, यह विषय जन सामान्य को विदित ही है।

चारपापदृग्योगे पुत्रनाशः ॥४८॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न अथवा कारकांश (तत्कालीन) लग्न से द्वितीय में पापग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भ का नाश हो जाता है।

अथवा लग्न राशि में जब गर्भावस्था के अन्तराल में पापग्रहों की दृष्टि या भोग गोचर से बने तो गर्भ को अनिष्ट बताना चाहिए।

शुक्रदृग्योगे पुत्रलाभः ॥४९॥

प्रश्न या आधान लग्न अथवा कारकांश में जब शुक्र की दृष्टि या योग हो तो मनुष्य को पुत्र प्राप्त होता है। अर्थात् गर्भस्थ शिशु को पुत्र मानना चाहिए।

पापशुभदृग्योगाभ्यां प्रथम वर्ण क्रमेण ह्रासावृत्तिः ॥५०॥

प्रश्न लग्न, आधान लग्न या कारकांश में यदि पाप व शुभ दोनों प्रकार के ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त शुभ फल को आनुपातिक रूप से ग्रहण करना चाहिए।

अधिक हो तो शुभ फल, अशुभ दृग्योग अपेक्षाकृत अधिक हो ... फल समझना चाहिए।

यमलादि जन्म जानना

यन्नवभागे नवांशाभ्यां संख्यावृद्धिः ॥५१॥

लग्न में स्थित नवांश की राशि और सन्तानकारक पूर्वोक्त ग्रहों की नवांश राशि से गर्भस्थ शिशु की संख्या वृद्धि जाननी चाहिए।

प्रश्न लग्न या आधान लग्न या कारकांश लग्न में द्विस्वभाव राशि हो।

यदि इनमें द्विस्वभाव राशि का नवांश हो।

लग्न, मंगल, बुध, गुरु ये सब द्विस्वभाव राशि में हों या विषमराशि में हों। साथ ही शुक्र व चन्द्र सम राशि में हों।

बुध मिथुन नवांशगत होकर द्विस्वभाव लग्न को देखता हो, इत्यादि। आशय यह है कि द्विस्वभाव राशियों में या इनके नवांशों में स्थित ग्रहों का जितना प्रभाव अधिकाधिक लग्न पर होगा, उतनी ही सम्भावनाएँ युगल या अधिक शिशुओं की बढ़ जाएँगी।

इस विषय के विशेष परिशीलन के लिए '**प्रसवचिन्तामणि**' का चतुर्थ प्रकाश और **बृहज्जातक** का निषेकाध्याय देखना चाहिए।

गर्भस्थ शिशु के शारीरिक दोषों का ज्ञान

बीजयुगबलयोर्बिन्दुपतन काले यमलाभ्याम् ॥५२॥
उर्धतः शुभपापयोश्चरस्थिरयोर्ध्वं ततोदिकनेत्रविकृतोष्ठ-नासिकमुखकर्णकेशदन्तपटलपादांगहीन कुब्ज बधिर-मूलांगोपांग सुशिर केशावर्त चक्रबीज विपर्यास-कुनखी वृषोन्नत बृहन्नाभिनेत्रः पार्श्वदृष्ट्योरन्ध कुब्ज-वामनसत्त्वस्वरनीचस्वर हीनस्वरेत्यादिष्वपि-पितृमात्रोर्बलानि ॥५३॥

प्रश्न लग्न या आधान लग्न से युग अर्थात् सप्तम स्थान और बल अर्थात् नवम स्थान में यदि द्विस्वभाव राशि, द्विस्वभाव राशि का नवांश हो तो युगल शिशु समझना चाहिए।

अथवा इन स्थानों में दो-दो ग्रह हों तो युगल शिशु गर्भ... समझना चाहिए—

अब शिशु के शारीरिक दोषों का विवेचन किया जाता है --

(i) गर्भाधान लग्न में नवम भाव से (उर्धतः) शुरू कर सारी राशियों के बराबर २४ भाग कर लें। नवम भाव स्पष्ट के आधार पर ०°-१५° तक राशि का पूर्वार्ध व १६°-३०° तक उत्तरार्ध मानें।

(ii) अब आधान लग्न में जहाँ-जहाँ शुभ ग्रह चर राशि में हों और पाप ग्रह स्थिर राशि में हों उन्हें एकत्र लिख लें।

(iii) द्विस्वभाव राशियों से पहले यमलोत्पत्ति बता चुके हैं।

(iv) ये ग्रह राशि के पूर्वार्ध में हैं या उत्तरार्ध में, ऐसा निर्णय कर लें।

(v) तब इन राशियों, चरस्थिरादि राशियों में स्थित ग्रहों (शुभ-पाप) की स्थिति से मेषादि राशि क्रम से निम्नलिखित २४ दोष शिशु में सम्भावित हैं।

(vi) यदि पापग्रह स्थिर में व शुभग्रह चर राशि में हों या जिस राशि में (केवल चर व स्थिर में) जहाँ शुभ व पाप (नैसर्गिक) एकत्र स्थित हों, तदनुसार दोषों का विवेक होगा।

(i) प्रथम राशि के पूर्वार्ध में अर्थात् नवम भावस्थ राशि में यदि उक्त प्रकार से ग्रह स्थित हों तो शिशु की आँख की पुतलियाँ किसी एक तरफ झुकी होती हैं।
उत्तरार्ध में बालक के होठों में कुछ विकार होता है।

(ii) द्वितीय भाव के पूर्वार्ध में नाक की अटपटी बनावट व उत्तरार्ध में मुख की अटपटी बनावट होती है।

(iii) नवम से तृतीय भाव के पूर्वार्ध में कान की अटपटी बनावट और उत्तरार्ध में बाल का छितराया हुआ होना, कम बाल होना अथवा बहुत अधिक बाल होना समझना चाहिए।

(iv) चतुर्थ भाव के पूर्वार्ध में दाँतों की अटपटी बनावट व उत्तरार्ध में पैरों के बीच में अधिक जगह बचना, टेढ़ापन या पैरों की अनियमित बनावट होती है।

पंचम भाव के पूर्वार्ध में कुबड़ापन व उत्तरार्ध में बहरापन होने की सम्भावना रहती है।

(vi) षष्ठ भाव के पूर्वार्ध में सारे शरीर की अनियमित बनावट या शरीर के किसी भाग में अनियमितता होती है। उत्तरार्ध में सुन्दर गर्दन होती है।

(vii) सप्तम भाव के पूर्वार्ध में सिर के बालों में कई स्थानों पर बालों की भँवर (केशावर्त) होती है। उत्तरार्ध में अण्डकोषों में विकार होता है।

(viii) अष्टम भाव के पूर्वार्ध में नाखूनों में विकार होता है। उत्तरार्ध में लम्बा कद होता है।

(ix) नवम से नवम भाव के पूर्वार्ध में बड़ी नाभि या उभरी नाभि होती है। उत्तरार्ध में बड़ी आँखें होती हैं।

(x) दशम के पूर्वार्ध में तिरछी नजर होती है। उत्तरार्ध में अन्धत्व होता है।

(xi) एकादश भाव के पूर्वार्ध में कुबड़ापन या झुकी कमर होती है, उत्तरार्ध में बौनापन होता है।

(xii) बारहवें भाव के पूर्वार्ध में ऊँची आवाज व उत्तरार्ध में धीमी आवाज या गूँगापन होता है।

इन भावों की गणना नवम भाव से ही करनी है। यदि वहाँ नवम में विषम राशि हो तो क्रम से व समराशि हो तो उत्क्रम से गिनें।

नवम भाव पिता का स्थान है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इत्यादि श्रुति के आधार पर पिता ही पुत्र का वास्तव कारण है। कारण के गुण कार्य में आते हैं। अतः पिता के स्थान या पितृकारक से लग्नादि भावों की कल्पना कर उन भावों में स्थित शुभ पाप ग्रहों की स्थिति से उक्त फल बताया गया है। उपलब्ध मूल प्रतियों में सूत्र ५२-५३ को एक ही माना गया है। किन्तु बड़ी ऊहा-पोह से हमने इन्हें दो सूत्र मानकर अर्थ किया है।

सूत्र में प्रयुक्त 'पितृमात्रोर्बलानि' शब्द से यह आशय लिया जाएगा कि गर्भाधान समय में पितृकारक व मातृकारक की भी निर्बलता या क्रूर-

ग्रहों की युति आदि से उपयुक्त अंग विभाग पूर्वक प्राप्त बालक के फल

का समन्वय करना होगा। यदि मातृकारक, पितृकारक व स[illegible]
ये तीनों ही उक्त स्थितियों में क्रूराढ्य हों या चर स्थिरादि राशि में होकर
स्वयं क्रूर हों तो उक्त फल की अनियार्यता समझनी चाहिए।

यदि पितृ-मातृकारक ग्रह शुभयुत-दृष्ट हों तथा उक्त भाव विभाग से गर्भस्थ शिशु का दोषयुक्त होना सिद्ध होता हो तो उक्त फल पूर्ण रूप से घटित नहीं होगा।

एवमृक्षाणां बलानि ।।५४।।

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से राशियों से प्राप्त फल का विचार करते समय फल देने वाली सम्बन्धित राशि के भी बलाबल का विचार कर उक्त फल का तारतम्य निश्चित करना चाहिए।

स्वपितृभाग्ययोः परिपाककाले ।।५५।।

आत्मकारक और लग्न (पिता का) से द्वितीय भावस्थ राशि की जब पिता को दशा आए, तब भी उक्त राश्यर्धविभाग से प्राप्त फल की प्राप्ति कहनी चाहिए।

आशय यह है कि उक्त प्रकार से गर्भस्थ शिशु की अनियमित शरीर-रचना सम्बन्धी फल उक्त दशा काल में भी प्रस्फुटित हो सकता है।

इति पं. सुरेशमिश्र विरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीय सूत्रभाष्ये गर्भवर्णननिर्णयाख्य तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

।। समाप्तश्चायं तृतीयोऽध्यायः ।।

चतुर्थोऽध्यायः

प्रथमः पादः

भावों का शरीर पर आधिपत्य

पितृदिनेशयोः प्राणीदेहः ।।१।।

यहाँ से आधान-कुण्डली या जन्म-कुण्डली में भावों का अंग प्रतिनिधित्व बताया जा रहा है ।

(i) लग्न और अष्टम स्थान के स्वामी ग्रहों में से जो बलवान् हो, वही मनुष्य के शरीर का प्रतिनिधि होता है ।

(ii) अथवा जन्म लग्न और सूर्य लग्न में बलवान् देह का प्रतिनिधि होता है ।

हमें पहला अर्थ अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत होता है । लग्न अर्थात् जन्म लग्न को सामान्यतः प्रसिद्ध सिद्धान्त में भी देह का अधिपति माना गया है । लग्न भाव के नाम तनु, वपु, उदय, आत्मा आदि से भी यही ध्वनि निकलती है ।

अष्टम स्थान मृत्यु स्थान या आयु स्थान है । जीवनी-शक्ति का अध्ययन करते समय, लग्नेश व अष्टमेश का विचार सुविदित है । एक प्रकार से लग्न यदि सकारात्मक है तो अष्टम उसका नकारात्मक है । एक भावरूप है तो दूसरा अभाव रूप । भाव से अभाव को अलग देखना या उन्हें आत्यन्तिक रूप से पृथक् करना सम्भव नहीं है । आशय यह है कि लग्न यदि शरीर का प्रतिनिधि है तो अष्टम शरीर के अभाव अर्थात् 'अस्तित्व रहेगा या नहीं ?' का प्रतिनिधि है । अतः लग्नेश व अष्टमेश में से बलवान् ग्रह शरीर का प्रतिनिधि होगा ।

पहले अध्याय २ पाद १ के सर्वप्रथम सूत्र में भी 'पितृ... का प्रयोग किया जा चुका है। वहाँ पितृ (लग्न) व दिन (अष्टम) के स्वामियों अर्थात् लग्नेश व अष्टमेश का अर्थ ही लिया गया है। अतः हमने इसी अर्थ को प्राथमिकता दी है।

यदि दूसरे विकल्प पर विचार करें तो उसकी सम्भावना से भी निर्भ्रान्त रूप से इन्कार नहीं किया जा सकता है। **पिता च दिनेशश्च पितृदिनेशौ तयोर्मध्ये यः प्राणी बली स देहः देहकारक इति**; इस प्रकार यदि व्याख्या मानें तो दूसरा अर्थ आता है। यह भी ठीक है। कारण यह है कि फलित ज्योतिष में सभी ग्रहों की अधिष्ठित राशियों को या सभी भावों को लग्नवत् मानकर विचार करना बताया गया है—

भावस्य यस्यैव फलं विचिन्त्य,
भावं च तं लग्नमिति प्रकल्प्य।
तस्माद् वदेद् द्वादशभावजानिः,
फलानि तद्रूपधनादिकानि॥' (फलदीपिका, भाव., श्लो-२०)

लेकिन जन्म लग्न, चन्द्र लग्न व सूर्य लग्न को विशेष महत्त्व दिया गया है। फलित में तीनों से ही जन्म लग्नवत् विचार किया जाता है। अतः जैमिनिमुनि ने जन्म लग्न व सूर्य लग्न इन दोनों लग्नों में से बलवान् को देह का प्रतीक माना है।

आशय यह है कि किसी भी अवस्था में सूर्य ग्रह का ग्रहण नहीं है। एक युग्म लग्नेश व अष्टमेश है तो दूसरा लग्न भाव व सूर्य लग्न भाव का है।

दोनों पक्ष समान महत्त्व के हैं। अतः हमारे विचार से मुनिवर को सम्भवतः दोनों ही अर्थ अभीष्ट हों। यदि न भी हों तब भी दोनों प्रकार से विचार करने पर हानि तो नहीं होगी। हाँ, दृष्टि व विचार की निर्मलता अवश्य ही बढ़ेगी। दोनों अर्थों में मल्ल-प्रतिमल्ल भाव स्पष्ट है। पहले विकल्प को प्राथमिकता देने का कारण मेरी अल्प बुद्धि में यह है—

(i) पहले 'पितृदिनेश' शब्द से लग्नेश व अष्टमेश का अर्थ लिया है।

(ii) इस ग्रन्थ में कहीं भी सूर्य के लिए दिनेश शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। प्रायः मुनि ने रवि शब्द का प्रयोग किया है।

..., विचार बुद्धि से देखने पर दूसरा अर्थ भी गौरवपूर्ण प्रतीत होता ... :विज्ञ पाठक दोनों प्रकार से ही विचार कर लें। ऐसा करना कोई अनहोनी नहीं है। देखिए, पहले २-१-५ सूत्र **'एवं मन्द चन्द्राभ्याम्'** में मन्द शब्द का अर्थ शनि लेकर आयु का विचार शनि व चन्द्रमा से किया जाता है। तर्क है कि शनि आयु:कारक है।

अब कटपयादि लें तो म—५, द—८=८५÷१२=१ शेष, अर्थात् लग्न अर्थ लेकर लग्न व चन्द्रमा से भी आयु का विचार विद्वत्सम्प्रदाय सम्मत है। यहाँ दोनों पक्षों को विद्वानों ने खुले हृदय से अपनाया है।

लाभचन्द्रयोः प्राणी हृदयम् ॥२॥

सप्तम स्थान और चन्द्र लग्न में से बलवान् भाव मनुष्य के हृदय का प्रतिनिधि होता है।

लग्न को देह व चन्द्र को प्राण माना जाता है—

'लग्नं देहो वर्गषट्कोऽगकानि,
प्राणश्चन्द्रो धातुरन्ये ग्रहेन्द्राः ॥'

प्राण अर्थात् प्राण वायु अर्थात् आक्सीजन का मुख्य मार्ग फेफड़े हैं। जहाँ से हृदय को वायु मिलती है और हृदय स्वच्छ रक्त को शरीर में प्रसारित करता है। हृत्प्रदेश ही प्राणों का अधिष्ठान माना गया है। प्राचीन भारतीय हस्तरेखा विज्ञान में भी हृदय रेखा को ही जीवन रेखा माना गया है। कारण स्पष्ट है कि हृदय की कार्य-प्रणाली जब तक चलती रहती है तभी तक जीवन है। अतः हृदय ही प्राणों का प्रतीक है। वेदों का वचन है—

स भूमि सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम्। (यजुः)

'वह आत्मा पंचभूतों में सर्वत्र व्याप्त है। नाभि से दस अंगुल ऊपर के प्रदेश में अर्थात् हृदय में निवास करता है।'

जगत् में यह बात प्रत्यक्ष है कि नाभि से हृदय की दूरी अपने हाथ से दस अंगुल होती है। अतः हृदय व प्राण एक ही बात हुई। इसीलिए जैमिनिमुनि ने सप्तम स्थान व चन्द्र लग्न दोनों में से बलवान् को प्राणों या हृदय या जीवन का प्रतीक माना है।

लेयचन्द्रयोः प्राणीशिरः ॥३॥

लग्न और चन्द्र लग्न में से बलवान् भाव प्राणी के सिर का प्रतिनिधि होता है।

भाग्यचन्द्रयोः प्राणीमुखम् ।।४।।

लग्न से द्वितीय स्थान और चन्द्र लग्न या उससे द्वितीय स्थान में से बलवान् भाव मनुष्य के मुख का प्रतिनिधि होता है।

कामचन्द्रयोः कान्तः ।।५।।

जन्म लग्न या चन्द्र से तृतीय स्थान व चन्द्र लग्न में से बलवान् भाव मनुष्य के गले का प्रतिनिधि होता है।

यहाँ कान्त शब्द का अर्थ गला है। 'क' शब्द का अर्थ संस्कृत में पानी, सुख व सिर होता है। 'क' अर्थात् सिर का अन्त अर्थात् अन्तिम भाग अर्थात् गला, गरदन, शिरोधरा अर्थ हुआ।

दारचन्द्रयोः प्राणीबाहुः ।।६।।

जन्म या चन्द्र लग्न से चतुर्थ स्थान और चन्द्र लग्न इनमें से जो सबसे बली हो, वही मनुष्यों की भुजाओं का प्रतिनिधि होता है।

मातृचन्द्रयोः प्राण्युदरम् ।।७।।

लग्न या चन्द्र से पंचम स्थान और चन्द्र लग्न इनमें से बली भाव मनुष्य के पेट का प्रतिनिधि होता है।

ततश्चन्द्रयोः प्राणीजघनम् ।।८।।

लग्न या चन्द्रमा से षष्ठ स्थान और चन्द्रमा, इन सबमें सर्वाधिक बली मनुष्यों की जाँघों का प्रतिनिधित्व करता है।

लाभचन्द्रयोः प्राणीपृष्ठः ।।९।।

लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान और चन्द्र लग्न में से बलवान् भाव मनुष्य के पृष्ठ भाग अर्थात् पीठ का प्रतिनिधित्व करता है।

दिनचन्द्रयोः प्राणीगुदः ।।१०।।

जन्म लग्न या चन्द्र से अष्टम स्थान व चन्द्र लग्न में से जो बलवान् हो वह मनुष्यों के गुदा भाग का प्रतीक होता है।

धनचन्द्रयोः प्राणीपादौ ।।११।।

लग्न या चन्द्रमा से नवम स्थान और चन्द्र लग्न में से बलवान् भाव मनुष्यों के पैरों का प्रतिनिधि होता है।

रिःफचन्द्रयोः प्राणीनेत्रे ।।१२।।

लग्न या चन्द्र से दशम स्थान और चन्द्र लग्न इनमें से जो सबसे बलवान् हो, वही मनुष्यों के नेत्रों का प्रतिनिधि होता है।

...चन्द्रयोः कर्णयोः प्राणी कर्णौ ।।१३।।

जन्म लग्न व चन्द्र लग्न से तृतीय व एकादश भावों में से बलवान् दो भाव कानों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

दोनों तृतीयों में से जो बली हो वह बाएँ कान का और एकादशों में से बलवान् दाएँ कान का प्रतिनिधित्व करेगा। पूर्ववत् चन्द्रमा की राशि से भी भावों की तुलना करनी चाहिए।

रीप्फचन्द्रयोः प्राणी नासिके ।।१४।।

लग्न व चन्द्र से द्वादश स्थान और चन्द्र में से जो सर्वाधिक बली हो, वही मनुष्यों की नाक का प्रतिनिधि होता है।

एवं द्वादशभावानाम् ।।१५।।

इस प्रकार लग्न कुण्डली व चन्द्र कुण्डली के बारहों भावों में अंगों के प्रतिनिधित्व का वर्गीकरण कर दिया गया है।

इस अंग विभाग का प्रयोग गर्भस्थ शिशु के शारीरिक विकास को जानने, जन्मोपरान्त उत्पन्न होने वाले शारीरिक विकारों को समझने, अंगों व उपांगों की बलवत्ता व निर्बलता का सहज अनुमान लगाते समय करना चाहिए। पाराशर मत में अंगों का विभाग अलग प्रकार से किया गया है। कहीं-कहीं पर जैमिनीय मत से समानता भी है। अतः हम यहाँ चक्र द्वारा इसे स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

जैमिनि मुनि ने चन्द्र लग्न को बहुत महत्त्व दिया है। अर्थात् जो अंग लग्न से तत्तद् भावों में पड़ता हो, उसका अर्थात् सारे शरीर व शरीरांगों का प्रतिनिधित्व अकेले चन्द्रमा में है।

जन्म लग्न के साथ चन्द्र लग्न से भी उन-उन भावों को ग्रहण करने के पीछे मेरी धारणा है कि जैमिनि मुनि ने **लयचन्द्रयोः** कहकर सूत्र ३ में चन्द्रलग्न का अवतरण किया था।

अतः चन्द्रमा की राशि को जब उन्होंने सभी अंगों का प्रतिनिधि माना है तो चन्द्रराशि से तत्तद् भावों में भी अंग-विचार करने में कोई हानि नहीं है।

इस स्थिति में यह व्यवस्था रहेगी कि सर्वप्रथम चन्द्रकुण्डली व लग्न-कुण्डली में से प्रतिनिधि भाव की तुलना कर बलवान भाव का निर्णय कर लें। वही बली भाव उस अंग का प्रतिनिधि होगा।

अब चन्द्रराशि और लग्न कुण्डली से प्राप्त राशि की तुलना कर

बली का निर्णय कर लें। यदि भावराशि बलवान् है तो पूर्ववत् ... प्रतिनिधि मानें। यदि चन्द्रराशि, उसकी अपेक्षा बलवान् हो तो ... भावराशि के साथ चन्द्रराशि को भी संयुक्त रूप से उस अंग का प्रतिनिधि मानें।

भावों में अंग विभाग

लग्न—चन्द्र	जैमिनि	पराशर
प्रथम भाव	सिर	सिर
द्वितीय भाव	मुख	मुख
तृतीय भाव	गला व कान	हाथ, छाती
चतुर्थ भाव	भुजाएँ	हृदय
पंचम भाव	पेट	पेट
षष्ठ भाव	जाँघ	कमर
सप्तम भाव	हृदय व कमर	वस्ति (पेडू)
अष्टम भाव	गुदा	गुप्तांग
नवम भाव	टाँगें	जाँघ
दशम भाव	नेत्र	घुटने
एकादश भाव	कान	पिंडली
द्वादश भाव	नाक	पैर

शरीरांगों की पुष्टापुष्टता का विचार

प्राणि बलानि ।।१६।।

जिस अंग का प्रतिनिधि भाव या ग्रह कुण्डली में बलवान् हो तो उस अंग को पुष्ट, ताकतवर एवं उत्तम आकारादि का समझना चाहिए।

अप्राण्यपि पापदृष्टः ।।१७।।

अंगों का प्रतिनिधि भाव यदि निर्बल भी हो, परन्तु उसे पाप ग्रह देखते हों (युक्त न हों) तो वह भी सम्बद्ध अंग का प्रतिनिधि होता है।

प्राणिनि शुभदृष्टे ।।१८।।

यदि बलवान् अंग प्रतिनिधि भाव को शुभ ग्रह देखते हों तो वह और अधिक बली हो जाता है। तब सम्बद्ध अंग का फल श्रेष्ठ होता है।

तत्तद्भावे जन्म सूचितम् ।।१९।।

इन अंग प्रतिनिधि भावों की बलवत्ता व निर्बलता का विचार जन्म

... जन्म लग्न में करना चाहिए। अर्थात् जन्मकालीन ग्रहस्थिति से यह विचार करना चाहिए।

आजन्मादिर्वपुःषु ॥२०॥

इस प्रकार प्राप्त शुभ या अशुभ फल का समन्वय जन्म से लेकर मृत्यु तक करना चाहिए।

अर्थात् यह फल सार्वकालिक है तथापि जन्म समय की स्थिति को प्रधानता देनी चाहिए।

पित्रोः प्राक्काले ॥२१॥

यदि अंगों के प्रतिनिधि भावों से पूर्ववर्ती भावों में मातृकारक व पितृकारक ग्रह स्थित हों तो उक्त अशुभ फल जन्म के बाद कभी भी उत्पन्न होते हैं।

परजात योग का परिष्कार

शरमेव मातापितरौ जनयतः ॥२२॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में लग्नेश, अष्टमेश, सूर्य व लग्न से चन्द्रमा या मंगल और सूर्य व शुक्र का सम्बन्ध होता हो, अर्थात् पूर्वोक्त 'पितृदिनेशयोः प्राणी देहः' के अनुसार जातक का देहकारक जान लें। इस देहकारक के साथ या आधान लग्न (शर) के साथ मातृकारक (चन्द्र-मंगल) व पितृकारक (सूर्य-शुक्र) का योगादि हो तो शिशु को वैधानिक पिता की सन्तान समझना चाहिए। इसके विपरीत होने पर दूसरे व्यक्ति से अनैतिक सम्बन्धों के कारण शिशु की उत्पत्ति होती है।

अशोणितो क्लीबश्च ॥२३॥

यदि पितृकारक ग्रहों का सम्बन्ध देहकारक या देहेश से न हो तो बालक परजात (अशोणित) अथवा नपुंसक होता है।

एवं भावविचारः ॥२४॥

इस प्रकार सभी भावों का विचार करना चाहिए।

हमारे विचार से यह सूत्र यदि वास्तव है तो इसकी स्थिति सूत्र २१ के बाद होनी चाहिए।

अङ्कुशाभ्यां तु ॥२५॥

यदि पितृकारक या मातृकारक (चर कारक या स्थिर कारक) से षष्ठ स्थान में यदि देह पड़ता हो तो भी बालक को अवैध सन्तान अथवा नपुंसक कहना चाहिए।

ध्यान रखिए, इस मत में चरकारक ही प्रधान है। स्थिति में ही स्थिर कारक को देखें।

अवैध होने पर शिशु की जाति वर्ण का निर्णय

वर्णभेदाश्रयेण ॥२६॥

यदि बालक अपने वास्तव पिता की सन्तान हो तब तो उसका वर्णादि (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) पिता के वर्ण के अनुसार ही होगा। यदि वह अवैध सिद्ध होता हो तो उसके वर्णादि का विवेक उस स्थान के आधार पर किया जाएगा, जिसमें देह अर्थात् देहकारक पड़ता हो। उस स्थान की राशि के स्वामियों से यह बात जानी जा सकती है। ग्रहों के ब्राह्मणादि वर्ण बताए जा रहे हैं।

ग्रहों के ब्राह्मणादि वर्ण

जीवेन्दुबुधादयः ब्राह्मणः ॥२७॥

रविः कुजः क्षत्रः ॥२८॥

शनिः शूद्रश्च ॥२९॥

राहुर्दूर जातिः ॥३०॥

केतुश्चांडालः ॥३१॥

बृहस्पति, चन्द्रमा व बुध और आदि कहने से शुक्र ये ग्रह ब्राह्मण वर्ण के हैं।

सूर्य व मंगल क्षत्रिय हैं। शनि शूद्र वर्ण है।

राहु दूरस्थ प्रदेशों, विदेशों में रहने वाले लोगों की जाति का या शूद्रों में भी अत्यन्त शूद्र अर्थात् नीच जाति का होता है। केतु चांडाल है। इस मत में किसी भी ग्रह को वैश्य वर्ण नहीं बताया गया है। पाराशर मत से भी इस प्रसंग में स्पष्ट भेद है।

ग्रहराशि वर्णचक्र

ग्रह	पाराशर वर्ण	जैमिनीय वर्ण
सूर्य	क्षत्रिय	क्षत्रिय
चन्द्र	वैश्य	ब्राह्मण
मंगल	क्षत्रिय	क्षत्रिय
बुध	वैश्य	ब्राह्मण
गुरु	ब्राह्मण	ब्राह्मण

गुरु	ब्राह्मण	ब्राह्मण
शनि	शूद्र	शूद्र
राहु	—	दूर जाति
केतु	—	चांडाल

जैमिनि ने राहु व केतु का भी पृथक्-पृथक् वर्ण माना है। बुध व चन्द्रमा को पराशर ने जहाँ वैश्य माना है वहाँ जैमिनि ने इन्हें ब्राह्मण वर्ण में ही रखा है।

वर्णभेदेन पुत्रलाभाभ्यां मृगवर्णम् ॥३२॥

इस प्रकार आधान लग्न से पुत्र अर्थात् नवम स्थान और लाभ अर्थात् सप्तम स्थान में स्थित राशि व ग्रहों के आधार पर मृग अर्थात् जन्तु का वर्ण निश्चय करना चाहिए।

राशियों का वर्ण निश्चय राशीश से करना चाहिए। जिस ग्रह का जो वर्ण है, वही वर्ण उसकी अपनी राशि का होता है।

लग्न से सप्तम स्थान गुह्य स्थान है, बीज स्थान है। नवम पिता का स्थान है। पिता व शुक्राणु का प्रतिनिधित्व करने के कारण इन दोनों भावों का ग्रहण किया गया है।

आसुरत्रयं च ॥३३॥

यदि देह की प्रतिनिधि राशि पितृकारक या मातृकारक से त्रय अर्थात् द्वादश स्थान में पड़ती हो तो शिशु के अन्दर आसुरी प्रवृत्तियाँ होंगी।

तमोगुण प्रधान वृत्तियाँ जैसे—काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि की वृद्धि व विध्वंसात्मक स्वभाव को आसुरी वृत्ति समझना चाहिए। निराधार आशाएँ करने वाले अर्थात् तृष्णातुर, वृथा कार्य करने वाले, अस्थिर चित्त वाले, मोहित प्राणी राक्षसी वृत्ति के होते हैं। यह **भगवद्-गीता** में कहा गया है—

मोघाशा मोघकर्माणो मोघ ज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

(गीता, अ० ९, श्लो० १२)

साथ ही जो जन पाखण्ड, घमंड, क्रोध, कठोरता, अज्ञान आदि के चंगुल में फँसे रहते हैं वे भी आसुरी वृत्ति वाले हैं—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ! सम्पदमासुरीम्॥

(वही, अ० १६, श्लो० ४)

व्यभिचारी योग

यदि पापबाहुल्यं तत्र रमणीजारः (लः) ॥३४॥

यदि उक्त द्वादश स्थान में पापग्रहों की बहुलता हो तो उत्पन्न बालक आसुर स्वभाव वाला हो कर साथ ही व्यभिचारी, बहुस्त्रीगामी होगा।

संस्कृत भाषा में कई स्थानों पर 'र' व 'ल' को अभिन्न माना जाता है। इसी प्रकार 'ड' व 'ल' को 'श' व 'ष' को भी अभिन्न माना जाता है। इसके पीछे व्याकरण व भाषा विज्ञान का उच्चारण सौकर्य या मुख-सुख सिद्धान्त लागू होता है। आपने ऐसे कई लोगों को देखा होगा जो रेफ को 'ल्' की तरह उच्चारण करते हैं। जैसे—कार्ड को काल्ड, थर्ड को थल्ड आदि। इसी प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोग प्रायः गणेश को गड़ेश व मूढ़ा (बैठने का उपकरण माची या मचिया) को मूणा कहते हैं। यह सब इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है तथा भाषा विज्ञान की प्रारम्भिक जानकारी रखने वाले लोग भी इससे परिचित हैं। अतः हमने यहाँ उपलब्ध पाठ 'जालः', को 'जारः', मानकर अर्थ किया है। जाल का अर्थ है—समूह व जार का अर्थ है—उपपति, पुरुष मित्र, अनैतिक पति। दोनों अवस्थाओं में आशय एक ही है। रमणी-जाल अर्थात् यह बहुत स्त्रियों से युक्त होगा अर्थात् भोगप्रिय होगा। रमणीजार अर्थात् बहुत-सी स्त्रियों से सम्बन्ध रखेगा। फिर रमणी शब्द से भी रमण करने, काम केलि करने की योग्यता से पूर्ण स्त्री का ही अर्थ आता है। इससे भी व्यभिचारी होना ही पुष्ट होता है।

सुखी बालक के योग

सुखं केशानि ॥३५॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में मातृकारक, पितृकारक या लग्न से केश अर्थात् तृतीय स्थानों में यदि देह का प्रतिनिधि भाव या ग्रह पड़ता हो तो बालक सुखी जीवन जीता है।

षडानि ॥३६॥

यदि आधान लग्न, प्रश्न लग्न से और मातृ-पितृकारक से षड् अर्थात् छठे स्थान में देह पड़ता हो अथवा देह के साथ सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु व शुक्र का या इनमें से कुछ ग्रहों का योग पड़ता हो।

दुःखी होने के योग

शनिराहुकेतुजेषु वैपरीत्यम् ॥३७॥

यदि देह के साथ शनि, राहु या केतु का योग हो तो उत्पन्न होने वाला बालक दुःखी होता है।

परमसुखी योग

तालुते फोफस्यशे बले मित्रावरुण बले ॥३८॥

'तालुते' अर्थात् द्वादश स्थान और 'फोफस्य' अर्थात् द्वितीय स्थान के ईश अर्थात् स्वामी ग्रह यदि बल अर्थात् नवम स्थान में हों और सूर्य बलवान् हो तो शिशु भाग्यशाली व सुखी होता है।

त—६, ल—३, त—६=६३६÷१२=१२ शेष, इसी प्रकार

फ—२, फ—२, य—१=१२२÷१२=शेष २, अर्थात्

आधान लग्न या प्रश्न लग्न से द्वितीय द्वादश भावों के अधिपतियों की स्थिति यदि एक साथ भाग्य स्थान में हो तो वास्तव में शुभ फल होगा।

पहले बता चुके है कि संस्कृत में उच्चारण भेद से कुछ अक्षरों में एकरूपता मानी जाती है। संस्कृत साहित्य में आलंकारिक प्रयोगों में यह प्रणाली खूब देखने को मिलती है।

मित्र का अर्थ सूर्य तो सर्वत्र पठित है। कहीं पर वरुण शब्द से चन्द्रमा का भी अर्थ लिया जा सकता है। विदित तथ्य है कि वरुण जल का देवता है अतः जलाधीश हुआ। 'ल' के स्थान पर यदि 'ड' मानकर अर्थ करें तो जडाधीश अर्थात् शीतलता, जड़ता, जाड्य अर्थात् जाड़े का अधिपति चन्द्रमा ही होता है।

मित्रावरुण को एक पद मानकर अर्थ करें तो इससे ग्रह का अर्थ नहीं आता है। **देवी सूक्त** में ये दो देवताओं के रूप में पठित हैं—

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥

(ऋग्वेद देवीसूक्त)

'अर्थात् मैं महर्षि अम्भृण की कन्या वाक् नामवाली (वागाम्भृणी) ही मित्र और वरुण को, इन्द्र और अग्नि को व दोनों अश्विनीकुमारों को धारण करती हूँ।'

वैदिक साहित्य में मित्रावरुण प्रकाश देने वाला देवता है। ऋग्वेद के मित्रावरुण सूक्त का मन्त्र देखिए—

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् । (ऋक् संहिता)

इस मन्त्र का अर्थ सायण ने यह किया है—

'हे चमकने वाले मित्र और वरुण ! तुममें से चक्षुरूप प्रकाशक सूर्य शोभनाकृति वाला होकर अपने तेज का विस्तार करते हुए उदित होता है।'

जहाँ वरुण एक पृथक् देवता के रूप में वेदों में आते हैं तो वहाँ उनका शासक रूप ही दृष्टिगोचर होता है। अत: मित्रावरुण शब्द केवल सूर्य का ही वाचक है। कारण यह है कि वेदों में इन दोनों को प्रकाशक माना है। चन्द्रमा तो सूर्य से प्रकाशित है। इसे चक्षुरूप बताया है। चक्षु वेद पुरुष के शरीर में सूर्य ही है और चन्द्रमा मन। वैदिक साहित्य में प्रचलित द्वादश आदित्यों में मित्र व वरुण सूर्य ही हैं। ये सूर्य के ही नाम हैं। बारह सूर्यों के ये नाम हैं—विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शुक्र, उरुक्रम।

अस्तु हमारे विचार से मित्रावरुण आज का ग्रह सूर्य ही है। ज्योतिष जगत् में चन्द्रमा भी सूर्य व लग्न की तरह धनप्रद है। अत: चन्द्रमा बली हो तो भी धन-वृद्धि होगी। अत: चन्द्र बली होने से निश्चित रूप से योग का फल बढ़ेगा। किन्तु महर्षि का मन्तव्य केवल सूर्य के बली होने से है। ज्योतिष में सूर्य चन्द्र प्रकाशक हैं व अन्य भौमादि पाँच ग्रह तारा ग्रह हैं।

मोक्ष पाने का विचार

मृत्युना कैवल्यम् ॥३९॥

मृत्यु अर्थात् तृतीय स्थान से मोक्ष का विचार करना चाहिए। यदि आधान लग्न से तृतीय स्थान में अथवा देह से तृतीय स्थान में शुभग्रहों का दृग्योगादि हो तो जातक मोक्ष प्राप्त करेगा।

रसिक स्वभाव का योग

श्रृंगारे लाटः ॥४०॥

यदि आधान लग्न या देह से श्रृंगार अर्थात् सप्तम स्थान में शुभ-ग्रहों का दृग्योग हो तो बालक आगे चलकर अत्यन्त बारीक मिजाज, शौकीन, स्वच्छता प्रिय तथा नाज-नखरे वाला होगा।

'लाट' शब्द संस्कृत में कर्णाटक के निकटस्थ प्रदेश का वाचक है। **कथासरित्सागर** में राजा शूद्रक, वीरवर को कर्णाट व लाट का राज्य उपहार में देते हैं। लाट का अर्थ कपड़ा पुराने गहने होता है। यह मत मेदिनी-

...शब्दरत्नावली का है। किन्तु वाचस्पत्यम् में इसे विदग्ध का वाचक भी माना है, अतः विदग्ध ही इसका यहाँ उपयुक्त अर्थ है।

प्राणपानौ बले ॥४१॥

यदि प्राण अर्थात् प्राणपद और आधानादि लग्न (पान) बलवान् हो तो भी उक्त प्रकार का रसिक स्वभाव वाला बालक पैदा होता है।

प्राण शब्द से यहाँ र—२, ण—५=५२÷१२=शेष ४, इस प्रकार चतुर्थ भाव का भी अर्थ लिया जा सकता है। लेकिन हमें प्राणपद वाला अर्थ अधिक संगत प्रतीत होता है।

वास्तव में प्राणपद भी तो भांश अर्थात् ३६० का चौथाई प्राण होता है। अतः ६ प्राणों का १ पल, वह १५ पलों का ९० प्राण अर्थात् ३६० का चतुर्थांश होता है।

इसे स्पष्ट करने के लिए पहले प्रक्रिया समझिए।

९० प्राण=१५ पल, अर्थात् १/४ घड़ी। अतः सूर्योदय से चौथाई घड़ी तुल्य लग्न का मानकर आगे राशिक्रम से प्राणपद लग्न चलता है। यह भी हर दृष्टि से चौथाई होता है। जैसे—भांश का चतुर्थांश अर्थात् ९० प्राण तुल्य, एक घड़ी का चतुर्थांश अर्थात् १५ पल अर्थात् ६ मिनट।

सूर्य चर राशि में हो तो उसी राशि से, स्थिर में हो तो नवम राशि से और द्विस्वभाव में हो तो पंचम राशि से गणना होती है। अब अपने सूर्योदयात् इष्ट काल के घण्टे मिनट या घड़ी पलों को सजातीय बना लें। अर्थात् मिनटमय या पलमय बना लें। अब पलों को १५ से और मिनट हैं तो ६ से भाग दें। अब जो राश्यादि लब्धि है उसे सूर्य चर में हो तो सूर्य स्पष्ट में, स्थिर में है तो सूर्य स्पष्ट+८ राशि में और द्विस्वभाव राशि में सूर्य है तो सूर्य स्पष्ट +४ राशि में उक्त लब्धि को जोड़ने से प्राणपद स्पष्ट होता है।

पाराशर मत में प्राणपद जन्म समय में यदि २, ५, ९, ४, १०, ११ स्थानों में हो तो शुभ अन्यथा अशुभ होता है।

प्राणपद से विशेष फल जानना

मृत्यु विचित्ते ॥४२॥

यदि प्राणपद आधान के समय या जन्म के समय विचित्ते अर्थात् चतुर्थ राशि में पड़े तो बालक की मृत्यु हो जाती है।

चतुर्थ भाव में प्राणपद ऐसा भीषण फल नहीं देता, अतः [illegible]
राशि वाला अर्थ ग्रहण किया है।

सुन्दर बालक

माधुरी कन्ये ॥४३॥

यदि प्राणपद कन्या अर्थात् एकादश राशि अर्थात् कुम्भ राशि में पड़े तो होने वाली कन्या मधुर आकृति वाली होती है। अथवा बालक की आकृति मधुर होती है।

दुष्ट बालक

मांजिष्ठे मृगे ॥४४॥

यदि प्राणपद मांजिष्ठ अर्थात् म—५, ज—८, ठ—२=२८५÷१२ शेष ९, धनुराशि में पड़े तो मनुष्य के स्थान पर चतुष्पद का जन्म कहना चाहिए।

यदि जन्म समय में प्राणपद धनुराशि में हो तो बालक को पशुवत् गुणों से युक्त कहना चाहिए।

कुरूप बालक

मानुषि कुरूपः ॥४५॥

यदि प्राणपद सिंह राशि में पड़े तो बालक कुरूप होता है। यहाँ म—५, न—०, ष—६=६०५÷१२=शेष ५, इस प्रकार अर्थ निकाला गया है।

सम्मान योग

मरणे माने ॥४६॥

यदि प्राणपद धनुराशि में पड़े तो बालक बहुत सम्मानित होता है। पहले इसी राशि में प्राणपद होने से चतुष्पद जन्म कहा था। मरण शब्द से धनु राशि का अर्थ लिया है।

मायावी बालक

माया मालिगे ॥४७॥

यदि प्राणपद मालिग अर्थात् कुम्भ राशि में हो तो बालक मायाचारी अर्थात् ठग, धोखेबाज होता है।

पिता से प्रेम करने वाला बालक

शुभेन कर्मणि पितृ नियोजयेत् ॥४८॥

यदि प्राणपद से तृतीय स्थान में शुभग्रह स्थित हों या उनकी दृष्टि हो तो बालक का अपने पिता से विशेष स्नेह रहता है।

माता व भ्राता का विशेष स्नेही बालक

पापे मातरि मिश्रे भ्रातरः ॥४६॥

यदि प्राणपद से तृतीय स्थान में पाप ग्रह हों तो बालक का स्नेह अपनी माता के प्रति अधिक होता है।

यदि वहाँ मिश्र ग्रह हों तो बालक अपने भाइयों से विशेष प्रेम करता है।

माता-पिता से भिन्न आकृति वाला बालक

शुभपापमिश्रै विरूपः ॥५०॥

यदि प्राणपद राशि के साथ शुभ व पाप दोनों प्रकार के ग्रह स्थित हों तो बालक अपने माता-पिता, भाइयों आदि की आकृति के साथ समानता (Resemblance) नहीं रखता है।

दुःखी बालक

मातुना शोकः ॥५१॥

यदि प्राणपद से मातु अर्थात् पंचम स्थान में पापग्रह हों तो बालक जीवन में शोक सन्तप्त रहता है।

म—५, त—६ = ६५ ÷ १२ = शेप ५। 'ना' शब्द को यदि साथ मानें तो स्थिति ०६५ होती है जिससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

'ना' संस्कृत में पुरुष को कहते हैं। और न निषेध वाचक अव्यय है। प्राणपद से पंचम में पापग्रह हो तो बालक पुत्र होता है, लेकिन दुःखी रहता है। ऐसा अर्थ सम्भव है। अथवा अशोक अर्थात् सुखी और न अशोक अर्थात् सुखी नहीं होगा। इस प्रकार ऊहापोह पूर्वक परिणाम प्राप्त किया है।

कुलनाशक योग

चन्द्रागुदृग्योगान्निश्चयेना स्वमूर्ति पुरुषे कालरूपः ॥५२॥

यदि प्राणपद से पंचम स्थान में स्थित ग्रहों पर चन्द्रमा व राहु की दृष्टि हो तो बालक निश्चय से दुःखी रहता है।

यदि आत्मकारक से पंचम (मूर्ति) व नवम (पुरुष) में पापग्रह चन्द्र राहु से युक्त या दृष्ट हों तो बालक काल रूप होता है। कालरूप से तात्पर्य है कि बालक अपने कुल के लिए काल अर्थात् मृत्यु, नाश, अपयश आदि का कारक होगा।

ऐसा बालक पूर्वजों के पुण्य, धन, सम्पत्ति व सुयश को नष्ट करने वाला होता है।

तिर्यग् दृष्टौ प्रायो निवृत्तिकारकः ॥५३॥

यदि उक्त प्रकार से स्थित ग्रहों व चन्द्र-राहु पर मीन राशि की दृष्टि हो तो प्रायः उक्त अशुभ फल की निवृत्ति हो जाती है।

मीन राशि उभयोदयी है। अतः उसे तिर्यग् कहा जा सकता है। अथवा तिर्यग् राशि अर्थात् कीट राशि (वृश्चिक) का अर्थ लिया जा सकता है।

शूलेशयोर्दारयोः शतोघं गुरुदृष्टे च ॥५४॥

प्राणपद से शूल स्थान अर्थात् एकादश और ईश अर्थात् द्वितीय स्थान में अथवा एकादश चतुर्थ में या द्वितीय चतुर्थ में बृहस्पति की दृष्टि हो तो भी बालक के विषय में उक्त अशुभ फल की निवृत्ति हो जाती है तथा वह बृहस्पति केवल नवम भाव (शतोघ) को देखता हो तो भी अशुभ फल की निवृत्ति हो जाती है।

इति पं. सुरेशमिश्रविरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्रभाष्ये चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः ॥

द्वितीय: पाद:

मारक का विशेष विचार

बलपदयोः प्राणी मारकः ॥१॥

बल अर्थात् नवम स्थान और लग्न का पद इन दोनों में से बलवान् मारक होता है।

यह मारक का विचार बालारिष्ट या जन्मपूर्व फल के सम्बन्ध में करना ही योग्य है। इस सन्दर्भ में सूत्र २-१-१८ भी देखें। वहाँ लग्न पद के स्वामी ग्रह की दशा में, त्रिकोण दशाओं में मरण कहा है।

रुद्राश्रयेऽपि ॥२॥

पूर्वोक्त रुद्रग्रह जिस राशि में स्थित हो, वह राशि भी मारक होती है।

सामान्यतः मारक का विचार पहले किया जा चुका है, लेकिन आधान लग्न से ही बालक के जीवन के विशेप पहलुओं पर विचार कर लेना अर्थात् बालक के जन्म से पहले ही उसका भविष्य कथन कर देना, केवल इसी ग्रन्थ की विशेषता है। यह विषय इतने विस्तार के साथ अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। यहाँ प्रकरण जातक पूर्व (Pre-natal) विषय का चल रहा है। अतः समझा जा सकता है कि इस विषय में जो कुछ यहाँ बताया जा रहा है, आधान लग्न या जातक पूर्व जिज्ञासा होने पर लागू होगा।

भावेऽपि बलदृष्टान्तः ॥३॥

यदि अष्टम भाव भी बली हो, अधिक ग्रहों से युक्त हो या अन्य विषम सम प्रकार से लग्नापेक्षा अधिक बली हो, वह भी मारक हो जाता है। अर्थात् आधानादि लग्न में अष्टम बली होने पर बालक को हीनायु बताना चाहिए।

बल जानने का प्रकार

ओजयुग्मयोः प्राणी बलम् ।।४।।

सम और विषम राशियों में से विषम राशि अधिक बली होती है। अर्थात् स्त्री राशि की अपेक्षा पुरुष राशि बली है। यदि अष्टम में विषम राशि हो और ग्रहयोग से भी बली हो, राशियों के निसर्ग बल से भी बली हो तो निश्चित रूप से उसका प्रभाव बढ़ जाएगा।

पहले बता चुके हैं कि विषम राशि को अपनी पड़ौसी राशि से भी बल मिलता है। यदि विषम राशि स्वयं बली हो तथा उसकी पड़ोसी राशियाँ भी बली हों तो इसका प्रभाव विषम राशि पर अवश्य पड़ेगा। अतः इस प्रसंग में सम-विषम प्रकार से बल देखकर बाद में और बलों को देखना चाहिए।

भावों की दृष्टि का विचार

अभिपश्यन्ति भावानि ।।५।।

पहले अध्याय के भाष्य में राशियों की दृष्टि के विषय में विस्तार-पूर्वक बता चुके हैं। वहाँ अभिपश्यन्ति शब्द का प्रयोग ऋक्ष अर्थात् राशियों के लिए किया गया था। यहाँ भावों के लिए किया गया है।

इसका सरल अर्थ है कि राशियों की तरह भावों की भी परस्पर दृष्टि होती है।

यह दृष्टि किस प्रकार होगी? यह बात स्पष्ट है कि भाव केवल अभि अर्थात् सम्मुख भावों को ही देखते हैं। पार्श्ववर्ती भावों पर इनकी दृष्टि नहीं होगी। इस प्रकार से सम्मुख भाव का निर्णय कर लें—

(i) यदि भाव में चर राशि है तो वह अपने से अष्टम भाव को देखेगा।

(ii) यदि वहाँ स्थिर राशि से छठी राशि सम्मुख है। अतः भाव में स्थिर राशि हो तो अपने से षष्ठ भाव को देखेगा।

(iii) यदि द्विस्वभाव राशि भाव में हो तो सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

यही राशियाँ परस्पर सम्मुख होती हैं।

स्थिरराशेः षष्ठराशिश्चरस्याष्टम एव च।
द्विस्वभावस्य राशेस्तु सप्तमः सम्मुखो मतः ।। (बृ. का.)

"'" भावगत राशियों से भाव दृष्टि चक्र इस प्रकार बनता है।

द्रष्टा भाव	दृश्य भाव	द्रष्टा भाव	दृश्य भाव
मेष	वृश्चिक	तुला	वृष
वृष	तुला	वृश्चिक	मेष
मिथुन	धनु	धनु	मिथुन
कर्क	कुम्भ	मकर	सिंह
सिंह	मकर	कुम्भ	कर्क
कन्या	मीन	मीन	कन्या

यदि भावों की पार्श्व दृष्टि होती तो जैमिनिमुनि इस बात का यहाँ उल्लेख करते या फिर भावों की दृष्टि राशिवत् होती है, ऐसा ही कह देते। अतः हम समझते हैं कि भावों की पार्श्व दृष्टि जैमिनि को अभीष्ट नहीं है। यहाँ बताई गई दृष्टि पूर्णदृष्टि है।

भावों की अल्पदृष्टि

शुभान्यतराणि च ॥६॥

जो भाव शुभ राशि व शुभ ग्रह से युक्त हों वे भी परस्पर साधारण दृष्टि रखते हैं।

जो भाव अशुभ राशि व ग्रह से युक्त हों वे भी परस्पर सामान्य अर्थात् अपूर्ण, थोड़ी दृष्टि रखते हैं।

इसी प्रकार २, ४, ६, ८, १०, १२ भाव व १, ३, ५, ७, ९, ११ भाव परस्पर साधारण दृष्टि रखते हैं।

बालक के मसूढ़े व दाँतों का टेढ़ा होना

प्रत्यक्शूले नित्यविक्रमे बुधशुक्राभ्यां दन्तोष्ठपटल पार्श्वपाः ॥७॥

प्रत्यक् अर्थात् द्वादश स्थान के त्रिकोण स्थानों (१२, ४, ८) में नित्य अर्थात् दशम भाव से विक्रम अर्थात् अष्टम भाव (लग्न से पंचम) में बुध व शुक्र का योग हो तो बालक के दाँत, होंठ आदि टेढ़े और किसी एक तरफ झुके होते हैं।

करकर्णाभ्यां मृत्युचित्तयोः विपरीतम् ॥८॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न से मृत्यु अर्थात् तृतीय में और चित्त अर्थात् षष्ठ स्थान में मिथुन (कर्ण) और धनु (कर) राशियाँ हों तो उक्त फल नहीं होता है।

यमल (जुड़वाँ) योग

लग्नेपितृकभावेऽपि कामनाथयोरैक्ये यमलः ।।९।।

आधान लग्न से तृतीयेश व पितृकारक से तृयीयेश यदि दोनों लग्न में या पितृकारक के साथ अथवा नवम भाव में एकत्र हों तो गर्भस्थ शिशु को यमल कहना चाहिए ।

कामनाथ प्राणिनि शुभम् ।।१०।।

यदि उक्त तृतीय भावों के स्वामी ग्रह यदि बलावन् हों तो दोनों बालक शुभ व जीवनयुक्त होंगे ।

यदि एक भावेश बली हो तो एक ही बालक शेष बचेगा ।

यमल गर्भपात योग

स्वनाथ प्राणिनि च्युतयोः ।।११।।

इस प्रकार आधान लग्न में यदि यमल जातक योग प्रतीत होता हो किन्तु तात्कालिक आत्मकारक की अधिष्ठित राशि का स्वामी भी बलवान् हो तो यह यमल गर्भ प्रायः नष्ट हो जाता है ।

समय से पूर्व प्रसव योग

भावयोः प्राणिनि कक्ष्याह्रासः ।।१२।।

आधान लग्न व पितकारक या नवम भाव से अष्टम स्थानों के स्वामियों की सबलता हो तो ऐसा प्रसव सामान्य समय (४० सप्ताह) से एक कक्षा अर्थात् दशमांश अर्थात् ४ सप्ताह (१ मास) पूर्व हो जाया करता है ।

शुभयोगबलाच्चैवम् ।।१३।।

यदि अष्टम स्थानों में शुभग्रहों का योग हो और लग्न बलवान् हो तो भी प्रसव सामान्य अवधि के पूर्व ही होता है ।

सामान्य से अधिक समय में प्रसव योग

मिश्रे समाः प्राणिहीने विपरीतम् ।।१४।।

यदि उन अष्टम स्थानों में शुभ व पाप ग्रह स्थित हों तो प्रसव सामान्य अवधि में होता है ।

यदि अष्टम स्थान कमजोर हो तो फिर प्रसव ग्यारहवें मास में या और अधिक समय में होता है ।

एक वर्ष में प्रसव योग

समे नित्यम् ॥१५॥

यदि आधान लग्न या पितृभाव (नवम और पितृकारक) से अष्टम स्थानों में ग्रहों की समान संख्या हो अर्थात् दोनों स्थानों पर दो-दो या एक-एक या तीन-तीन ग्रह स्थित हों तो भी प्रसव काल नित्य अर्थात् एक वर्ष होता है। अथवा पूर्वोक्त ग्यारह मासों में एक मास और बढ़ जाता है।

नित्य शब्द का अर्थ एक है। यह एक वर्ष का द्योतक हो सकता है। यदि कहें कि वर्ष का द्योतक शब्द कोई आया नहीं है तो पूर्वोक्त सूत्र में पहले सामान्य अवधि में, फिर ग्यारह मास में प्रसव बताया है। अतः नित्य को एक मास का वाचक मानकर अर्थ होगा कि पूर्वोक्त अवधि में एक मास और बढ़ जाता है। तब भी वह अवधि एक वर्ष हो जाती है।

सामान्य अवधि में प्रसव योग

भाग्ययोर्बलम् ॥१६॥

आधान लग्न व पितृभाव से भाग्य अर्थात् द्वितीय स्थानों की सबलता हो तो सामान्य अवधि में प्रसव हो जाता है।

गुरुचन्द्रयोर्धर्मधनैक्ये कर्मबले ॥१७॥

आधान लग्न व पितृभावों से धर्म अर्थात् ग्यारहवें भाव में और धन अर्थात् नवें भाव में कहीं पर गुरु व चन्द्रमा एक साथ हों और तृतीय स्थान बलवान् हो तो सामान्य अवधि में प्रसव होता है।

मेषे विपरीतम् ॥१८॥

यदि बृहस्पति व चन्द्रमा पूर्वोक्त स्थानों में मेष राशि में हों या सिंह राशि में हों तो सामान्य से अधिक या सामान्य से कम अवधि में प्रसव होता है।

प्रसव के समय का जन्म लग्न व इष्टकाल

ततः प्राणाः स्वपितृयोगः ॥१९॥

आधान के समय जो ग्रह आत्मकारक हो, उसका स्पष्ट राश्यादि व पितृ अर्थात् लग्न के स्पष्ट राश्यादि को परस्पर जोड़ लेना चाहिए। योगफल के बराबर ही जन्म समय में प्राणपद का स्पष्ट मान होगा।

प्राणपद स्पष्ट करने की प्रक्रिया व इसका स्वरूप पीछे ४, १, ४१ के भाष्य में बता चुके हैं। प्राणपद से इष्ट काल शुद्धि की परिपाटी भी

प्रचलित है। यह बात हमें कल्पित प्रतीत होती है। पराशर आदि ने ... की विभिन्न भावों में स्थिति से फल निर्देश किया है। यदि प्राणपद लग्न के तुल्य ही हुआ करता तो फिर विभिन्न भावों में वह कैसे हो सकेगा ?

अस्तु, हमने अनुभव किया है कि प्राणपद स्पष्ट में प्राप्त अंशादि प्राय: लग्न स्पष्ट के अंशादि के तुल्य होते हैं। लेकिन सदा ऐसा नहीं होता है। राशि में समानता नहीं होती, केवल अंशों में समानता सम्भाव्य है। किन्तु इसी आधार पर इसे लग्न या इष्ट का शोधक नहीं माना जा सकता है।

कुछ लोगों का मत है कि प्राणपद की राशि व लग्नगत नवांश राशि एक ही होती है। किन्तु प्राणपद से लग्न राशि जानी जा सकती है। यह एक निर्भ्रान्त तथ्य है।

इस सूत्र में मुनिवर ने आधान लग्न व आत्मकारक के योग से प्राप्त राश्यादि को जन्मकालिक प्राणपद के राश्यादि होना बताया है। अत: जन्म कालीन प्राणपद ज्ञात हो जाने पर, जन्मेष्ट जानना सरल ही है। प्राणपद से जन्म लग्न जानने के विषय में ये तथ्य हैं—

(i) प्राणपद राशि से १,५,६,७,३,११ राशियों में से प्राय: मनुष्य की जन्म लग्न राशि होती है।

(ii) प्राणपद स्पष्ट के अंश प्राय: लग्न स्पष्ट के अंशों के तुल्य ही होते हैं।

शुद्धः स्वकाले ।।२०।।

जन्म लग्न जानने के लिए आत्मकारक के स्पष्ट को आधानकालिक होरा लग्न (काल) में से घटाना चाहिए। यह शुद्ध फल अर्थात् घटाफल ही लग्न होता है।

अथवा पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त प्राणपद की राश्यादि को इस घटा-फल में से घटाने पर लग्न प्राप्त हो जाता है।

इस विषय में ज्योतिष जगत् में प्रचलित सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) आधान लग्न से पंचम राशि लग्न होती है।

(ii) मान्दि चन्द्रमा या गुलिक से ५, ९ राशि लग्न होती है।

(iii) प्राणपद राशि व लग्न नवांश राशि एक होती है।

(iv) लग्न, चन्द्र, गुलिक आदि की नवांश राशि से पंचम सप्तम नवम राशि लग्न होती है।

(v) आधान चन्द्र व जन्म लग्न तुल्य होते हैं।

(iv) आधान लग्न व जन्म चन्द्र तुल्य होते हैं।

आधान लग्न से जन्मकालीन सूर्य का ज्ञान

अनुकूलालये तुंगे नीचे ।।२१।।

जब सूर्य अपनी उच्च राशि, नीच राशि या अनुकूल भाव (केन्द्र, त्रिकोणादि) में आता है तो प्रसव होता है।

भाव बलाभ्यां तु ।।२२।।

आधान काल में सूर्य जिस राशि में हो, उस राशि का व सूर्य का बल जानकर उससे प्रसवकाल जानना चाहिए।

सामान्यत: आधान लग्न राशि से तृतीय राशि, पंचम व नवम राशि में जब सूर्य आता है तब प्रसव माना जाता है।

वराह मिहिर ने इस विषय में जो बताया है वह प्रसिद्ध सिद्धान्त है तथा प्राय: खरा उतरता है।

(i) आधान कालीन चन्द्रमा जिस राशि में स्थित हो, उसकी द्वादशांश क्रम संख्या जान लें।
अब चन्द्रमा की द्वादशांश राशि से उतनी संख्या आगे तक गिनें। जो राशि आए, यही राशि जन्म के समय चन्द्रमा की होगी।

(ii) चन्द्रमा की गत द्वादशांश कला में ५ का भाग देने से चन्द्रमा के अंश मिल जाते हैं। स्पष्ट समझिए—

(iii) आधान कालीन चन्द्रमा की अंशादि में से गत द्वादशांश तक के अंशादि घटा लें। एक द्वादशांश २° ३०′ के बराबर होता है। शेष वर्तमान द्वादशांश के भुक्त अंशादि होंगे।

(iv) वर्तमान द्वादशांश के भुक्त अंशादि की कला बना लें। इन्हें १२ से गुणा कर ८०० से भाग दें तो लब्धि गत जन्म नक्षत्र की संख्या होगी।

(v) शेष को ६० से गुणा कर ८०० से भाग देने से लब्धि जन्म नक्षत्र की युक्त घड़ियाँ होंगी।

(vi) पुन: शेष को ६० से गुण कर ८०० से भाग देने से भुक्त फल होंगे।

(vii) इस प्रकार जन्म नक्षत्र व उसका भयात प्राप्त हो ...
एक और विशेष बात हम पाठकों को बताना चाहते हैं।

आधान लग्न में यदि चर राशि में चन्द्रमा हो और लग्न को देखे तो २८७ दिन, स्थिर राशि का चन्द्रमा यदि लग्न को देखता हो तो २६२ दिन और द्विस्वभाव राशि का चन्द्रमा लग्न को देखे तो २८१ दिन में प्रसव हो जाता है।

आधान समय यदि लग्न या सूर्य चर राशि में हो तो दसवें मास में, स्थिर में हो तो ग्यारहवें मास में और द्विस्वभाव में हो तो बारहवें मास में प्रसव होता है। यह सिद्धान्त है।

किन्तु आजकल सामान्य अवधि अर्थात् ४० हफ्ते से ऊपर समय हो जाने पर डाक्टर लोग दवाओं की सहायता से प्रसव पीड़ा शुरू करवाकर प्रसव करा लेते हैं। यदि तब भी प्रसव न हो तो वे आपरेशन से बच्चा निकाल लेते हैं। अतः यह बात आजकल कम महत्त्व की है।

इन विषयों का विशेष विवेचन **बृहज्जातक** निषेकाध्याय व **प्रसव-चिन्तामणि** (मुकुन्द दैवज्ञ), **होरारत्नम्** आदि ग्रन्थों में किया गया है।

आजकल आधान लग्न को जान लेना भी टेढ़ी खीर ही है। तथापि मूल पुस्तक के अनुरोध से हमने यहाँ इसे लिखा है।

पोलियो व बालारिष्ट

केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु राहुकुजौ जानुहा-
ईरि केवल राहौ तत्र निधनम् ॥२३॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में केन्द्र (१,४,७,१०) त्रिकोण (५,६) व उपचय स्थानों (३,६,१०,११) में यदि राहु व मंगल साथ-साथ हों तो बालक के घुटनों में लकवा होने के योग होते हैं।

और द्वितीय स्थान (ईरि) में अकेला राहु हो तो बालक की मृत्यु हो जाती है।

भौमदृग्योगान्निश्चयेन ॥२४॥

यदि उक्त प्रकार से स्थित राहु को मंगल देखता हो तो मृत्यु निश्चित रूप से होती है।

पानी में गिरने के योग

तत्र शनौ गुरुदृग्योगे सेतुयोग्यं-
स्वत्रिकोणराशिषु ।।२५।।

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न से द्वितीय स्थान में शनि स्थित हो और उसके साथ बृहस्पति हो या बृहस्पति उक्त स्थान में स्थित शनि को देखता हो तो बालक के ऊंचे स्थान से पानी में गिरने के योग होते हैं।

अथवा आत्मकारक से त्रिकोण स्थानों में इसी प्रकार से शनि व बृहस्पति का योग हो तो भी उक्त फल होता है।

सेतु शब्द का अर्थ पुल होता है। जल के ऊपर स्थित किसी ऊंचे स्थान का आशय भी इस शब्द से लिया जा सकता है।

पदे चापद्भावे स्वामिना इत्थम् ।।२६।।

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न के पद में अथवा पद लग्न से षष्ठ भाव में शनि उक्त प्रकार से बृहस्पति से युक्त या दृष्ट हो और इन भावों (पद व षष्ठ) के अधिपतियों से भी दृग्योग बनता हो तो भी बालक ऊंचे स्थान से पानी में गिर जाता है। इन योगों में मृत्यु की बलवती सम्भावना होती है।

ह्रस्वफलादि शुभवर्गयुति शेषास्त्वन्ये ।।२७।।

यदि उक्त जलघात योगों में शनि शुभग्रहों के वर्गों में हो या शनि के साथ कुछ अन्य शुभग्रह स्थित हों तो उक्त फल की मात्रा किसी सीमा तक कम हो जाती है।

इसी प्रकार सूत्र २३-२४ में राहु व मंगल से बनने वाले योगों में भी यदि योगकारक ग्रह शुभ वर्गों में हो या शुभग्रहों से युक्त हो तो भी अशुभ फल की मात्रा घट जाती है।

यदि ये योगकारक ग्रह क्रूर ग्रहों के वर्गों में हों या अन्य क्रूर ग्रहों से युक्त हों तो उक्त फल अपने उत्कट रूप में प्रकट होता है।

जन्म लग्न के विषय में कई अन्य नियम

मूर्ति रूपं च ।।२८।।
स्वकारक व्यतिरिक्तेषु ।।२९।।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न से पंचम (मूर्ति) या द्वादश (रूप) राशि प्रायः बालक की जन्म राशि होती है।

अथवा आधान कालीन आत्मकारक से नवम राशि अथवा आत्मकारक के नवांश से नवम राशि (व्यतिरिक्त) बालक की जन्म लग्न राशि होती है।

भावबले चन्द्राश्रयेऽपि ॥३०॥

आधान कालीन भाव लग्न से नवम (बल) राशि प्रायः बालक की जन्म लग्न राशि होती है ;

आधान काल में चन्द्रमा जिस राशि में स्थित हो, उसी राशि के लग्न में बालक का जन्म होता है।

भाव लग्न साधन का प्रकार सूत्र १-१-३२ के भाष्य में बता चुके हैं। इस विषय में ४-२-२० का भाष्य भी देखें। वहाँ पर हमने आधान चन्द्र का जन्म लग्न होना बताया है।

इस सूत्र में भाव शब्द का अर्थ यदि अष्टम स्थान लें तो आधान लग्न से अष्टम राशि यदि बली है तो वह भी जन्म लग्न हो सकता है, ऐसा अर्थ करना पड़ेगा। लेकिन अष्टम राशि का जन्म लग्न होना हमारे विचार से कल्पना मात्र ही है। अष्टम से नवम (बल) अर्थात् चतुर्थ को लग्न मानना सम्भव है, लेकिन वह अगले सूत्र में बताया जा रहा है।

दारे मित्रस्वपितृभ्याम् ॥३१॥

आधान कालीन लग्न व आत्मकारक से दार अर्थात् चतुर्थ राशि भी जन्म लग्न हो सकती है।

अथवा आत्मकारक व आधान लग्न राशि भी जन्म लग्न राशि हो सकती है।

भावशूलदृष्ट्याच ॥३२॥

आधान लग्न या आत्मकारक से अष्टम राशि को यदि एकादश राशि देखती हो तो अष्टम राशि भी जन्म लग्न हो सकती है।

अष्टम स्थानगत राशि को एकादश राशि देखे, ऐसी सम्भावना केवल स्थिर लग्न में ही हो सकती है। चर या द्विस्वभाव लग्न में अष्टम में क्रमशः स्थिर व चर राशियाँ पड़ेंगी। तब एकादश में भी क्रमशः स्थिर व चर ही होगी। स्थिर, स्थिर राशि को या चर, चर राशि को नहीं देखती है।

रोगी बालक व आधान लग्न

पतिनाथदृष्ट्या रोगः ॥३३॥

"यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न को लग्नेश देखता हो तो बालक को रोग होता है।

पुत्रनाथदृष्ट्या दरिद्रः ॥३४॥

यदि आधान या प्रश्न लग्न को नवमेश देखता हो तो बालक दरिद्र होता है।

अपव्ययी बालक

शूलनाथदृष्ट्या व्ययशीलः ॥३५॥

यदि लग्न को एकादशेश देखता हो तो बालक अपने जीवन में व्यय-शील अर्थात् अपव्ययी होता है।

आधान लग्न व बालक का भावी रोजगार

रिपुनाथदृष्ट्या कर्म ॥३६॥

यदि आधान या प्रश्न लग्न को द्वादशेश देखता हो तो बालक को जीवन में श्रेष्ठ रोजगार मिलता है।

नीरोग बालक

धननाथदृष्ट्या निरोगी च ॥३७॥

यदि आधान या प्रश्न लग्न को नवमेश (धन) देखता हो तो भी बालक श्रेष्ठ रोजगार प्राप्त करता है, तथा साथ ही बालक नीरोग होता है।

लेकिन इस योग में धनी होना आवश्यक नहीं है। पहले सूत्र ३४ में नवमेश की दृष्टि से दरिद्र होना बताया है। यहाँ केवल रोजगार व स्वास्थ्य बताया गया है। अतः विरोध नहीं समझना चाहिए।

समर्थ व माननीय बालक

माननाथदृष्ट्या प्रबलम् ॥३८॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न को मान अर्थात् पंचम स्थान का स्वामी देखता हो तो बालक प्रतापी, शक्तिशाली और माननीय होता है।

सुखी बालक

दारेशदृष्ट्या सुखिनः ॥३९॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न को चतुर्थेश देखता हो तो बालक सुखी होता है।

कुलनाशक योग

कामेशदृष्ट्या प्रध्वंसः ॥४०॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न को यदि तृतीय स्थान का स्वामी देखता हो तो जातक ध्वंस अर्थात् नाश करने वाला होता है।

सुन्दर बालक

भाग्यनाथदृष्ट्या सुरूपः ॥४१॥

आधान लग्न या प्रश्न लग्न को यदि द्वितीय स्थान का स्वामी देखता हो तो बालक सुन्दर रूप-रंग वाला आकर्षक होता है।

प्रबल राजयोग

सर्वदृष्ट्या प्रबलः ॥४२॥

प्रश्न लग्न या आधान लग्न को यदि सारे ग्रह देखते हों तो बालक बहुत सामर्थ्यवान्, प्रभुसत्तासम्पन्न, प्रतापी होता है।

दारभाग्ये च ॥४३॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न से द्वितीय व चतुर्थ भावों को भी इसी प्रकार विविध भावेश देखते हों तो भी पूर्वोक्त प्रकार से फल समझना चाहिए।

वर्णपदाश्रयकोणेषु ॥४४॥

इसी प्रकार आधान कालीन वर्णद लग्न व पद लग्न और आधान लग्न के त्रिकोण स्थानों पर भी विविध भावेशों की दृष्टि से उक्त प्रकार से ही फल समझना चाहिए।

शुक्रे च ॥४५॥

इसी प्रकार आधान लग्न में शुक्र की अधिष्ठित राशि को विविध भावेश देखते हों तो भी उक्त प्रकार से फल होता है।

जीवन्मुक्त या मुमुक्षु बालक

कोणयोः शुभेषु मित्र पापपर्क्षों ॥४६॥

वर्णद लग्न और पद लग्न के त्रिकोणों में यदि शुभ ग्रह स्थित हों और वे सूर्य से आगे निकल चुके हों अर्थात् राश्यंशों में वे सूर्य से आगे हों तो बालक मोक्ष प्राप्त करता है।

ग्रहों की बलवत्ता 'असूर्यंग' होने पर और भी बढ़ जाती है। यदि योगकारक ग्रह सूर्य से आगे निकल चुके हों तो उत्तम फलदायक होते हैं। वर्गोत्तमादि गत, उदित, विजयी, असूर्यंग आदि ग्रह शुभ फल देते हैं। विशेष विवेचन के लिए देखिए हमारी **भावमंजरी प्रणवाख्या पृ० ६८-७३**।

केन्द्रत्रिकोणयोः शुभे कालबलानि ॥४७॥

इसी प्रकार आधान के वर्णद या पद में केन्द्र त्रिकोणों में शुभ ग्रह स्थित हों तथा वे काल बल से युक्त हों तो भी बालक मरणोपरान्त मोक्ष को प्राप्त करता है।

काल बल इन चारों (नतोन्नत बल, पक्ष बल, दिवारात्रित्रिभाग बल, व वर्षेशादि बल) का योग होता है। इसका विस्तार से सोदाहरण विवेचन हम अपने **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य के पृ० २२८ से २३९** पर कर चुके हैं। यहाँ संक्षेप में बता रहे हैं—

(i) **नतोन्नत बल** के लिए पूर्व या पश्चिमनत की घट्यादि को २ से गुणा कर ६० से भाग दें तो लब्धि शनि, मंगल व चन्द्रमा का नतोन्नत बल होती है।

(ii) नतकाल को ३० घड़ी में से घटाने पर उन्नत काल होता है। इसे पूर्वनत हो तो पूर्वोन्नित व पश्चिमनत हो तो पश्चिमोन्नत कहा जाएगा।

(iii) उन्नत काल को २ से गुणाकर ६० से भाग देकर प्राप्त लब्धि सूर्य, गुरु व शुक्र का नतोन्नत बल है।

(iv) बुध का सर्वदा १° ०' ०" नतोन्नत बल होता है।

(i) **पक्ष बल** के लिए स्पष्ट चन्द्र में से स्पष्ट सूर्य को घटाकर इसे षडभाल्प कर लें। अर्थात् अन्तर ६ राशि से अधिक हो तो १२ में से घटा लें।

(ii) इस षड्भाल्प को अंशादि बनाकर १८० का भाग दें। लब्धि

चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र का पक्ष बल है।

(iii) इस पक्ष बल को १° ०′ ०″ में से घटा लें। घटाफल पापग्रहों (सूर्य, मंगल, शनि, पापी बुध) का पक्ष बल होगा।

(i) **दिवारात्रित्रिभाग बल** के लिए दिनमान या रात्रिमान (जन्मानुसार) को तीन बराबर भागों में बाँट लें। त्रिभागानुसार यह बल इस प्रकार रहेगा। जिस भाग में जन्म हो तदनुसार बल जानें।

(ii) दिन के प्रथम त्रिभाग में बुध, मध्य में सूर्य और तृतीय में शनि का १° ०′ ०″ बल होता है।

(iii) रात्रि के प्रथम त्रिभाग में चन्द्रमा का, द्वितीय में शुक्र का व तृतीय में मंगल का १° ०′ ०″ बल होता है।

(iv) यह बल सारे ग्रहों को नहीं मिलता है।

(v) गुरु सदा १° ०′ ०″ बल प्राप्त करता है।

(i) **वर्षेशादि** के बल के लिए पहले वर्षेश, मासेश, दिनेश व काल होरेश का साधन कर लें।

(ii) वर्षेश को १५ कला, मासेश को ३० कला, दिनेश को ४५ कला व होरेश को १ अंश बल प्राप्त होता है।

इन चारों को जोड़ने से काल बल होता है। विशेष उपपत्ति *अभिनव भाष्य से देख लें।

इति पं. सुरेशमिश्रविरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्र भाष्ये चतुर्थाध्याये द्वितीयः पादः ॥

---

* देखें आयुर्निर्णय अभिनवभाष्य, बलसाधनाधिकार।

तृतीय: पाद:

कन्या होने के योग

बुधशुक्रयोर्युग्मे स्त्री जननम् ।।१।।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में यदि बुध और शुक्र समराशि या सम-राशि नवांश में स्थित हों तो कन्या का जन्म बताना चाहिए।

वराहमिहिर ने बताया है कि लग्न, सूर्य, बृहस्पति और चन्द्रमा बली होकर समराशि या नवांश में हों तो कन्या का जन्म होता है।

समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषितः । (बृ. जा. श्लो. ११)

जन्म समय का निर्णय

काल निर्णयादि ।।२।।

बालक के जन्म समय का निर्णय आगे सूत्रों में बताया जा रहा है। इस विषय में हम वराहमिहिर द्वारा प्रतिपादित नियम का ज्ञान भी पाठकों को करा देना आवश्यक समझते हैं। ग्रह अपना फल कब देते हैं? इस विषय में बृहज्जातक के ग्रहयोनि प्रभेदाध्याय के श्लोक १४ में बताया गया है कि सूर्य से फल लाभ का अयन, चन्द्रमा से मुहूर्त, मंगल से दिन, बुध से ऋतु, बृहस्पति से मास, शुक्र से पक्ष व शनि से वर्ष का निर्णय करना चाहिए।

इसके लिए आधान लग्न या प्रश्न लग्न में स्थित नवांश की संख्या से ग्रह नवांश तक की संख्या जानकर पूर्वोक्त वर्षादि का ज्ञान करना चाहिए।

इस विषय में दो सिद्धान्त प्रचलित हैं।

(i) लग्न में स्थित नवांश से सम्बन्धित ग्रह (सूर्यादि) जितने संख्यक नवांश में हों, उतने ही अयन, वर्ष, मासादि में फल-परिपाक कहना चाहिए।

(ii) मणित्थ का मन्तव्य है कि लग्नादि में जो नवांश हो, तदनुसार ही कार्यसिद्धि का समय जानना चाहिए।

हम इस दूसरे सिद्धान्त को अधिक उपादेय समझते हैं। कल्पना कीजिए कोई व्यक्ति ३ ५° ४०′ २०″ स्पष्ट लग्न में हमसे प्रश्न करता है तो लग्न से दूसरा नवांश सिंह राशि का होगा। सिंह का स्वामी सूर्य अयन को बताता है। अतः कह सकते हैं कि दूसरे अयन में अर्थात् वर्तमान अयन से अगले अयन में कार्य होगा।

हमारे विचार से लग्न में जिस ग्रह का नवांश हो, वह ग्रह अपनी नवांश संख्या तुल्य काल में कार्य सिद्ध करेगा।

यदि लग्न में बृहस्पति का नवांश होता तो हम उसकी नवांश संख्या के आधार पर मासों का निर्देश करते।

इसी प्रकार समझना चाहिए कि लग्न में सूर्य का नवांश हो तो नवांश संख्यक अयन में, चन्द्र नवांश हो तो नवांश संख्यक मुहूर्त में, मंगल का नवांश हो तो नवांश संख्यक दिन में, बुध का नवांश हो तो नवांश संख्यक ऋतु में, बृहस्पति का नवांश हो तो नवांश संख्यक मासों में, शुक्र का नवांश हो तो नवांश संख्यक पक्ष और शनि का नवांश हो तो नवांश संख्यक वर्ष में कार्य होगा। यह पद्धति गर्भाधान में भी प्रयोग के योग्य है—

लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नोदितांशसमसंख्यः।
वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधानेऽथ कार्यसंयोगे॥ (मणित्थ)

अंशभेदेन लिप्त विलिप्ताः ॥३॥

कालकाः ॥४॥

अब जैमिनिमुनि के अनुसार कार्य सिद्धि (प्रसवादि) का समय जानने का प्रकार बताया जा रहा है।

लग्न में स्थित नवांश के गत अंशादि को विकलात्मक (विलिप्तादि) काल के दो प्रकारों मूर्त और अमूर्त में से मूर्त कालावधि तक गणना करनी है। मूर्त काल प्राण या सेकेण्ड तक है। जहाँ तक काल खण्ड को नापा जा सके, वही मूर्त भेद है।

सूर्य सिद्धान्त में प्राण पर्यन्त मूर्त काल माना गया है। लेकिन आज-कल प्राण से नीचे भी काल खण्ड को नापा जा सकता है।

एक स्वस्थ व्यक्ति आराम से बैठकर एक बार साँस लेता और छोड़ता है वह समय प्राण माना गया है। इसे ६ गुणा कर लेने पर एक पल होता है।

अब देखिए—अहोरात्र = ६० घड़ी, ६० × ६० = ३६०० पल,

३६०० × ६० = २१६००० विपल। अर्थात् २१६०० प्राण होते हैं। जबकि २४ घण्टे × ६० = १४४० मिनट, १४४० × ६० = ८६४०० से. एक दिन रात में हैं। स्वयं देखिए कि आज हम प्राण से नीचे की संख्या को भी नाप लेते हैं। ८६४०० ÷ २१६०० = ४ अर्थात् एक प्राण में ४ सेकेण्ड होते हैं। अतः प्राण की चतुर्थांश इकाई भी हम सहज ही नाप लेते हैं। विशिष्ट प्रकार की घड़ियों में तो सेकेण्ड के खण्डों को भी जाना जा सकता है।

अतः इस सूत्र के द्वारा जैमिनिमुनि यह बताना चाहते हैं कि समय के उपलब्ध मानकों के आधार पर नवांश के भुक्तांशों को सूक्ष्मतम बना लेना चाहिए। लेकिन हमारा काम अनुविकलाओं तक ही चल जाता है। लिप्ता शब्द कला का ही वाचक है। अतः द्विलिप्ता अर्थात् विकलाएँ और अनुलिप्ता अर्थात् प्रविकलाएँ, १/६० विकला। यहाँ प्रतिपादित सिद्धान्त को वराहमिहिर ने अक्षरशः स्वीकार किया है। यह हम आगे बताएँगे।

अनुलिप्ताश्च ॥५॥

इस प्रकार नवांश के भुक्त मान को अनुलिप्तात्मक अर्थात् प्रविकलात्मक बना लेना चाहिए।

(द्विनाद्वि ?) द्विनाह्नि चतुःसंख्यादि ॥६॥

द्विनाह्नि अर्थात् २ और अहन् अर्थात् ७ = ७२ में चार संख्या अर्थात् इकाइयाँ जोड़ लें। तब ७२०००० संख्या प्राप्त हो जाती है।

इस सूत्र के उपलब्ध पाठ से अर्थ असंगत प्रतीत होता है। अतः हमारे विचार से 'द्विनाह्नि' पाठ शुद्ध है। संख्या शब्द का मान अनुक्त होने से शून्य होगा।

अब देखिए, एक नवांश ३° २०′ अंश के बराबर होता है। इसकी कला बनाएँ तो ३°२०′ × ६० = २०० कला (लिप्ता) होती है।

२०० लिप्ता × ६० = १२००० विलिप्ता (विकला) होती हैं।

अब १२००० × ६० = ७२०००० अनुलिप्ताएँ होंगी।

एक पूर्ण नवांश में तो २४ घण्टे या ६० घड़ी मानकर भुक्त अनु-

लिप्ताओं से अनुपात करें तो सूर्योदयात् गत घंटे या घड़ी मिलेंगी। इतने ही इष्ट काल पर बालक का जन्म होगा।

यही पद्धति **वराहमिहिर** ने श्लोक २१, निषेकाध्याय में बताई है। अनुपात इस प्रकार रहेगा—

७२००००‴ अनुलिप्ताएँ : नवांश भुक्त अनुलिप्ताएँ : : २४ घण्टे : इष्टकाल

$$\text{अतः इष्टकाल} = \frac{\text{भुक्त अनुलिप्ताएँ} \times \text{२४ घंटे}}{\text{७२००००}} = \frac{\text{भुक्तानुलिप्ताएँ}}{\text{३००००}} \text{ होगी।}$$

अतः नवांश की भुक्त प्रविकलाओं में ३०००० का भाग देने से घंटात्मक, १२००० से भाग देने पर घट्यात्मक इष्ट काल प्राप्त हो जाएगा। जन्म समय का मास व पक्ष व दिन आदि जानने का प्रकार पहले बता चुके हैं।

इन सभी साधक-बाधक प्रकार से जन्म समय निश्चित कर लेना चाहिए। उदाहरणार्थ आधान लग्न स्पष्ट ३ ५° २०′ ६ है। यहाँ कर्क का दूसरा नवांश है और इसमें सिंह राशि है।

पूर्वनवांश ३° २०′ अंश पर समाप्त हुआ। अतः वर्तमान नवांश में ५° २०′ ६″—३° २०′ = २° ००′ ६″ अंश बीत चुके हैं। इन्हें लिप्तादि क्रिया से संस्कृत किया तो २ × ६० = १२० कला × ६० = ७२०० विकला × ६० = ४३२००० प्रतिविकला या अनुलिप्ताएँ हुईं।

अब अनुपात जमा लीजिए। ७२०००० अनुलिप्ताएँ ६० घड़ी या २४ घंटे के बराबर हैं तो ४३२००० अनुलिप्ताओं के कितने घंटे होंगे!

७२००० : ४३२००० : : २४ घंटे : इष्टकाल

$$\text{इष्टकाल} = \frac{\text{४३२०००} \times \text{२४}}{\text{७२००००}} = \frac{\text{४३२०००}}{\text{३००००}} = \frac{\text{४३२}}{\text{३०}} \text{ घंटे}$$

अर्थात् १४ घंटे २४ मिनट सूर्योदय के बाद व्यतीत होने पर जन्म होगा।

भावी जन्म लग्न के अंश जानना

नवभाग शेषे ।।७।।

पूर्व प्रकार से प्राप्त अनुलिप्ताओं को ९ से गुणा करने पर भावी जन्म लग्न में विद्यमान नवांश का ज्ञान हो जाएगा।

पहले ज्ञात हो चुका है कि एक नवांश में ७२०००० अनुलिप्ताएँ होती हैं। अतः पूरी राशि अर्थात् ३०° में ७२००००×६=६४८०००० अनुलिप्ताएँ होती हैं। अतः आधान लग्न के वर्तमान नवांश में व्यतीत हुए अंशों को ६ (नवांश संख्या) से गुणा कर लें या सारी राशि की अनुलिप्ताओं को व्यतीत नवांश की अनलिप्ताओं से गुणा कर एक नवांश की अनुलिप्ताओं से भाग दें।

दोनों स्थितियों में बात एक ही है। अनुपात से भी इस प्रकार जमा सकते हैं—

७२०००० : व्यतीत अनुलिप्ता : : ६४८०००० : लग्नवांश

पूर्व उदाहरण में अनुपात इस प्रकार रहेगा—

७२००००:४३२०००::६४८००००:६४८०००० : लग्न गतांश

अतः $\frac{४३२००० \times ६४८००००}{७२००००}$ = ३८८८००० अनुलिप्ताएँ।

एक अंश की अनुलिप्ताओं (२१६०००) से भाग देने पर १८° प्राप्त हुए। अतः लग्न में १८° व्यतीत हो चुकेंगे।

इतनी लम्बी संख्याओं के गुणाभाग से बचने का सीधा प्रकार है कि ४३२०००×६=३८८८०००=१८° अर्थात् व्यतीत अनुलिप्ताओं को सीधे ६ से गुणाकर गुणनफल को २१६००० से भाग दें।

पहले बताए प्रकारों से जन्म मास का निश्चय कर लें। वैसे तो प्रायः दसवें मास में सामान्य प्रसव होता है। प्रसव की अवधि माता के अपने पैतृक संस्कारों व शारीरिक गुणों से भी प्रभावित होती है। अतः व्यावहारिकता का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

पहले प्रसव कालीन सूर्य का ज्ञान भी बताया गया है। अतः सरलता से जन्म लग्न जाना जा सकता है। इस प्रकार नवांश भी जान सकते हैं। इसी नवांश राशि व स्वामी ग्रह से पुरुष स्त्री विभाग द्वारा पुत्र या कन्या होगा। यह विषय अगले सूत्र में बताया जा रहा है।

आद्यांशके ॥८॥

जन्म या आधान लग्न में प्राप्त नवांश के आधार पर आगे बताई जा रही रीति से बालक का स्वरूपादि बताना चाहिए।

यहाँ आद्य शब्द से कटपयादि से १ आता है तथा सामान्यत: भा आद्य या आदि लग्न का वाचक है।

उपलब्ध पाठ में 'आद्यांशके' सूत्र है। इसमें सन्धि विच्छेद कर आदि+ अंशक द्वारा आदि शब्द का अर्थ कटपयादि से अष्टम भाव आता है। अष्टमभाव में स्थित नवांश से बालक का स्वरूपादि निर्णय करना अटपटी बात है। अत: आद्य शब्द को भाव का वाचक मानकर हमने 'आद्यांशके' पाठ माना है। लिपि में इतनी भूल अस्वाभाविक नहीं है। अथवा **'आद्येऽशंके' 'आद्येशंके'** भी विकल्प हो सकते हैं।

जातक के वर्णादि का निश्चय

ग्रहक्रमेण वर्णम् ॥९॥

पहले अन्य प्रकार से जातक का वर्णादि निश्चय बताया था। अब यहाँ पर उक्त प्रकार से प्राप्त नवांशेश से यह बताया जा रहा है। नवांशेश ग्रह के आधार पर बालक का वर्ण विवेक करना चाहिए।

सूर्यादि ग्रहों के वर्णों के आधार पर नवांशेश के तुल्य वर्ण मानें। ज्योतिष में यह बात सुविदित है कि लग्नस्थ नवांशेश के तुल्य शरीराकृति वाला मनुष्य होता है।

पुमान् पुं प्रजः ॥१०॥

यदि उक्त प्रकार से प्राप्त नवांश राशि व नवांशेष पुरुष ग्रह हो तो बालक पुत्र होता है।

यह नियम जातक में वास्तविक जन्म लग्न में भी परखा जा सकता है। विषम राशि पुरुष व सम राशि स्त्री मानकर व नवांशेश से तुलना कर परीक्षा करें।

अन्येस्त्रियः ॥११॥

यदि उक्त नवांश राशि सम हो या इसका स्वामी स्त्री ग्रह हो तो कन्या का जन्म समझना चाहिए।

क्लीबेपूर्वापरौ ॥१२॥

यदि वहाँ नपुंसक ग्रह नवांशेश हो तो पुत्र या पुत्री दोनों में से किसी एक की सम्भावना को बताना चाहिए।

वर्णद लग्न से जातक का विचार

एवं वर्णसंज्ञाः स्युः ।।१३।।

इसी प्रकार से वर्णद लग्न से भी देखना चाहिए ।

पहले कारकांश से, आधान लग्न से, जन्म लग्न नवांश व नवांशेश से क्रमशः वर्णादि विवेक बताया है। अब वर्णद लग्न से भी उक्त प्रकार से विचार करने का निर्देश कर रहे हैं।

पाराशर मत व जैमिनीय सूत्रों पर प्राप्त वृद्धकारिकाओं में वर्णद लग्न को भी लग्न की तरह महत्त्वपूर्ण माना गया है।

वर्णद लग्न से सम्बन्धित एक विशेष नियम

नीचे दारांशकः ।।१४।।

यदि वर्णद लग्न, आधान लग्न से नीच अर्थात् द्वादश स्थान में पड़ता हो तो वर्णद लग्न के चतुर्थ भाव में स्थित नवांश के स्वामी से उक्त प्रकार से विचार करना चाहिए।

आद्यादि स्ववर्णः ।।१५।।

आद्य अर्थात् लग्न की वर्णद राशि से व स्व अर्थात् आत्मकारक की वर्णद राशि से भी पूर्वोक्त प्रकार से पुरुष या स्त्री का जन्म और उसका स्वरूप आदि जानना चाहिए।

अथवा लग्न की वर्णद राशि से पहले अध्याय के सूत्र १,३२ में बताई गई पद्धति से वर्णद दशा का भी विचार कर लेना चाहिए।

मित्रभेदाभ्यां चरपर्यायेण संज्ञाः स्युः ।।१६।।

मित्र अर्थात् लग्न या भेद अर्थात् द्वादश स्थान से वर्णद दशा प्रकार में गणना कर चरदशा की तरह दशा साधन कर लेना चाहिए। वर्णद दशा का सोदाहरण विवेचन हम १-१-३२ के भाष्य में पीछे कर चुके हैं।

धात्वादिरूपवर्णन ।।१७।।

वर्णद लग्न में स्थित राशि या नवांश से भी जातक के धातु व रूप आदि का विचार करना चाहिए।

धातु से तात्पर्य यहाँ पृथ्वी आदि तत्त्वों से है। राशियों के तत्त्व इस प्रकार विभाजित किए जाते हैं—

अग्नितत्त्व	मेष	सिंह	धनु
भूमितत्त्व	वृष	कन्या	मकर
आकाश वायुतत्त्व	मिथुन	तुला	कुम्भ
जलतत्त्व	कर्क	वृश्चिक	मीन

बलवान् ग्रह व बालक का स्वरूप

स्वांशगैश्च बलः ।।१८।।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में आत्मकारक के नवांश में जितने ग्रह स्थित हों, उनमें से सबसे बली ग्रह के आधार पर जातक का स्वरूपादि विवेक करना चाहिए।

अथवा कई ग्रह बली हों तो सबका सम्मिलित प्रभाव जातक पर मानना चाहिए।

ग्रहों का वर्ण विभाग

रविकुजौ रक्तौ ।।१६।।
बुध शुक्रौ श्यामौ ।।२०।।
शनिपाताः कृष्णाः ।।२१।।
कृष्णेतराः स्युः ।।२२।।

सूर्य व मंगल का रक्त वर्ण है। बुध व शुक्र का साँवला रंग है। शेष सब ग्रह काले रंग के हैं ? (शनि, राहु, केतु काले व गुरुचन्द्र गौर वर्ण हैं) ग्रहों का यह वर्ण विभाग पराशर से मेल नहीं खाता है।

ग्रह	वर्ण (जैमिनि)	(पराशर)
सूय	रक्त	रक्त श्मया
चन्द्र	गौर	गौरवर्ण
मंगल	रक्त	रक्त
बुध	साँवला	साँवला
गुरु	गौर	गौर
शुक्र	साँवला	चित्र
शनि (राहु केतु)	काला	काला

सूत्र २२ का पाठ कुछ ठीक प्रतीत नहीं होता है। यदि इसका अर्थ

कर कि इतर (दूसरे) ग्रह कृष्ण वर्ण होते हैं तो पाठ में भाषा की त्रुटि है। इतरा: को यदि ठीक भी मान लें तो भी **'कृष्णा इतरा:'** इत्यादि पाठ होना चाहिए। सन्धि नहीं होगी। अथवा 'कृष्णेतरा:, शब्द को विशेषण मानकर चलें तो इसका अर्थ होगा 'गौरवर्ण वाले'। तब इस सूत्र में ग्रह वाचक एक पद कम पड़ेगा। अत: हमारे विचार से चन्द्र व बृहस्पति को भी काला मानना युक्तियुक्त नहीं है। **यहाँ पर अवश्य ही कोई पद छूटा हुआ है।** अत: मैंने अपनी अल्पबुद्धि से यहाँ अर्थ पूर्ति करने का साहस किया है। जैमिनि ने इसी ग्रन्थ में बहुत स्थानों पर शनि, राहु व केतु को कृष्ण होने का संकेत किया है। सूत्र २१ की कल्पना से सूत्र २२ में भी 'शेषा:' पद का अध्याहार करना सरल होगा तथा पद कम होने की बात भी निमूल हो जाएगी। जैमिनीयमत में शनि राहु व केतु काले रंग के होते हैं इस विषय में प्रमाणस्वरूप ये तर्क हैं—

(i) अध्याय १ पाद ४ सूत्र ४२ 'स्वांशवशाद् गौरनील पीतादीनि' में स्पष्टतया गोरे व काले रंग का उल्लेख किया है। इस सूत्र में भी आत्मकारक की अधिष्ठित राशि नवांश व आत्मकारक के आधार पर बालक का वर्ण निर्णय करना ही बताया है।

(ii) अध्याय ३ पाद ४ सूत्र ३७-४५ तक भी बालक के वर्णनिश्चय का विवेचन किया गया है। वहाँ पर थोड़े परिवर्तन के साथ उक्त सूत्र पुन: आवृत्त हुआ है। वहाँ भी इसका उपर्युक्त अर्थ ही मान्य है। कृपया इस स्थल को पीछे देखें। वहाँ पर प्रश्न या आधान लग्न में शनि, राहु या शनि केतु की युति होने पर बालक का वर्ण काला माना है (सूत्र ३९)।

(iii) वहीं पर आप ध्यान से देखें तो पाएँगे कि शनि अपने साथ स्थित ग्रह के वर्ण को लेकर शिशु को देता है। यह बात ध्यान से देखने पर साफ हो जाती है।
जैसे-शनि व शुक्र से श्याम वर्ण माना है तथा यहाँ पर शुक्र को श्याम वर्ण कहा है।
फिर शनि राहु से काला वर्ण, शनि बुध से काला वर्ण माना है। शनि चन्द्र से उज्ज्वल रंग माना है और गुरु शनि से गौरवर्ण माना है।

(iv) अत: यह बात सिद्ध हो जाती है कि शनि जब कृष्ण या श्याम

वर्ण ग्रह के साथ हो तो बालक को कृष्ण या श्याम वर्ण देता है और जब यह गौर या श्वेत वर्ण वाले ग्रह के साथ होता है तो उन्हें गोरा या उज्ज्वल वर्ण देता है।

(v) अब यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि जैमिनिमुनि गुरु को गौरवर्ण व चन्द्र को अत्यन्त गौरवर्ण मानते हैं। इसी कारण हमने यहाँ अर्थभंग व जैमिनीय वचन भंग (स्ववदतो व्याघात) से बचने के लिए एक पद का गायब होना माना है। सुविज्ञ पाठक भी इससे सहमत होंगे।

प्रसव पूर्व स्थिति (Pre-Natal) का अधिक गूढ़ विवेचन

त्रित्रिभागे चरस्थिरोभयपर्याये ॥२३॥

अब आधान लग्न या प्रश्न लग्न से, शिशुविषयक ज्ञान के लिए और विशेष विचार कर रहे हैं।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न की द्रेष्काण कुण्डली (त्रिभाग) बना लें। ये द्रेष्काण या त्रिभाग प्रत्येक राशि में तीन-तीन होते हैं।

पहला द्रेष्काण सदैव चर, दूसरा स्थिर व तीसरा उभय अर्थात् द्विस्वभाव होता है।

इस द्रेष्काण राशि से भी पुत्र-पुत्री का विचार होगा।

पीछे सूत्र १-१-३५ के भाष्य में हम बता चुके हैं कि जैमिनीयमत में होरा, द्रेष्काण व त्रिंगांश का स्वरूप अलग है। ये हमारे प्राचीन भारतीय ऋषि मत पर आधारित हैं। यहाँ द्रेष्काण के विषय में यह बात साफ हो जाती है। द्रेष्काण को प्राचीनकाल में त्रिभाग कहते थे। इसका ज्ञान निम्नलिखित चक्र से करें। यही इस ग्रन्थ में उचित है—

द्रेष्काण चक्र

	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
प्रथम द्रेष्काण	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०
द्वितीय द्रेष्काण	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११
तृतीय द्रेष्काण	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२

घटिका लग्न व बालक का स्वरूप

घटिका षष्ठि निर्णये ॥२४॥

इस विषय में (पूर्वोक्त) घटिका लग्न भी विचारणीय है। यह लग्न १-१ घड़ी का होता है। अतः ६० घड़ी के दिन-रात में ये ६० लग्न रहेंगे। सूर्योदय काल से १-१ घड़ी पर्यन्त सूर्य राशि से शुरू कर गिनने से इष्ट-कालिक घटी लग्न जाना जा सकता है।

इस घटिका का लग्न का साधन पीछे १-३-२४ के भाष्य में देख लें।

भाव लग्न व बालक का स्वरूपादि

अंशस्यैकस्य पंचघटिकाः ॥२५॥

सूर्योदय से लेकर जन्मकाल पर्यन्त ५-५ घड़ी की अवधि वाला सूर्य राशि क्रम से अंश (लग्न) या भाव लग्न होता है।

ये लग्न अहोरात्र में १२ होते हैं। २-२ घंटे का एक लग्न होगा। सूर्य की राशि से जन्म काल तक गिनकर जितने ५-५ घड़ियों के खण्ड व्यतीत हुए हों, वही गत राशि व अगली वर्तमान भाव लग्न राशि होगी। इसका विवेचन भी हम पीछे १-१-३२ के भाष्य में कर चुके हैं।

यद्यपि अंश शब्द से यहाँ इस ग्रन्थ में प्रायः नवांश का ग्रहण किया गया है। परन्तु नवांश का उपयोग यहाँ ठीक नहीं लगता है। नवांश पाँच घड़ियों का नहीं होता है। अतः अंश शब्द से लग्न का अर्थ लिया है। अंश शब्द का वास्तविक अर्थ भाग ही है। अतः सीधा अर्थ यह है कि ६० घड़ियों के ५-५ घड़ी तुल्य भाग को भी देखिए। इस स्थिति में यह भाव लग्न ही हो सकता है।

विघटी लग्न व बालक का स्वरूपादि

एवं द्वादश पंचस्युः विघटिका क्रमेण ॥२६॥

घटिका लग्न की पद्धति से ही एक-एक लग्न में ५-५ विघटी अर्थात् पल लग्न का विचार कर लेना चाहिए।

जिस प्रकार दिन रात की ६० घड़ियों में पाँच-पाँच घड़ियों के लिए सभी बारह राशियों का भाव लग्न चक्र पूरा हो जाता है। उसी प्रकार

सूक्ष्म गणना के लिए एक घड़ी के घटिका लग्न में ५-५ पलों का विघटिका

(पल) लग्न चक्र पूरा हो जाएगा।

इस प्रकार द्रेष्काण लग्न, घटी लग्न, भाव लग्न व विघटी लग्न का विचार कर लेना चाहिए। विघटी लग्न की यह प्रक्रिया जहाँ सूक्ष्म है वहीं पर नयी भी है। घटी भाव होरादि लग्नों को तो पराशर ने भी माना है परन्तु विघटिका लग्न का उन्होंने उल्लेख भी नहीं किया है।

ओजे पुरुषः ।।२७।।

यदि उपर्युक्त सभी लग्न विषम राशि में पड़ते हों तो निश्चय ही पुत्र का जन्म समझना चाहिए।

युग्मे स्त्रियः ।।२८।।

यदि आधान काल में ये सभी लग्न समराशि में पड़ते हों तो कन्या का जन्म होगा, ऐसा निःसन्दिग्ध है।

ओजयुग्मयोः स्त्रीपुरुषौ ।।२९।।

यदि उक्त लग्नों में अधिक संख्या अर्थात् बहुमत विषमराशि का हो तो पुत्र होगा।

यदि समराशि को बहुमत प्राप्त हो तो कन्या का जन्म होगा।

यथा मातरिवर्णे ।।३०।।

यदि संयोगवश सभी लग्नों में सम व विषम राशियों की संख्या समान हो तो लग्न (मातरि) अर्थात् आधान लग्न से प्राप्त निष्कर्ष को ही प्रामाणिक समझना चाहिए।

आधान होरा लग्न का जन्म लग्न होना

मात्रा प्रसव कालमुखेन ।।३१।।

आधान काल में जो होरा लग्न की राशि हो, वही राशि जब प्रसव मास में उदय हो रही हो अर्थात् उसी राशि का लग्न हो तो बालक का जन्म होगा।

आशय यह है कि आधानकालीन होरा लग्न, बालक का जन्म लग्न हो सकता है।

राह्विन्दुभ्यां स्त्री जननम् ।।३२।।

यदि आधानकालीन होरा लग्न में राहु व चन्द्रमा या इनमें से कोई एक लग्न में स्थित हो तो भी कन्या का जन्म समझना चाहिए।

पुरुषतराः ॥३३॥

यदि आधान लग्न के समय के होरा लग्न में पुरुष ग्रह (सू. मं. बृ.) हो तो पुत्र का जन्म होता है।

लेकिन इन पुरुष ग्रहों के साथ किसी स्त्री ग्रह या नपुंसक ग्रहों का योग नहीं होना चाहिए।

शन्याराभ्यां पुरुषः ॥३४॥

आधानकालीन होरा लग्न में यदि शनि व मंगल स्थित हों तो पुत्र का जन्म समझना चाहिए।

शनिबुधाभ्यां स्त्रियः ॥३५॥

यदि आधानकालीन होरा लग्न में शनि व बुध स्थित हों तो स्त्री का जन्म होता है।

कुबड़ेपन का योग

शनि चन्द्राभ्यां कुब्जः ॥३६॥

यदि आधानकालीन होरा लग्न में शनि व चन्द्रमा साथ स्थित हों तो बालक कुबड़ा या झुकी कमर वाला होता है।

सुन्दर बालिका के योग

शनि शुक्राभ्यां रूपवत्यः ॥३७॥

यदि आधानकालीन होरा लग्न में शनि व शुक्र एकत्र स्थित हों तो बालिका रूपवती होती है।

ये दोनों स्त्री व नपुंसक ग्रह हैं अतः इनकी स्थिति से बालिका का ही जन्म सिद्ध होता है।

पुनश्च 'रूपवत्यः' शब्द में स्त्रीलिंग ही है। अतः स्त्री-जन्म सिद्ध होता है।

चरित्रहीन बालिका का योग

शनिकेत्वोर्जारिणी ॥३८॥

आधानकालीन होरा लग्न में यदि शनि व केतु स्थित हों तो बालिका चरित्रहीन, परपुरुषगामिनी होती है।

वेश्या होने का योग

तत्रबुधांशे बहिर्जारिणी ॥३९॥

आधानकालीन होरा लग्न स्पष्ट से नवांश ज्ञात कर लें। यदि होरा लग्न में बुध की राशि का नवांश हो तो कन्या वेश्या या प्रकटरूप से व्यभिचार करने वाली होती है।

कार्यकुशल व कामुक बालक

चन्द्रशुक्रौ कामी प्रवीणतमश्च ॥४०॥

आधानकालीन होरा लग्न में यदि चन्द्रमा और शुक्र स्थित हों तो बालक कामुक स्वभाव वाला व अत्यन्त कार्यकुशल होता है।

होरा लग्न नवांश से उक्त विचार

अंशभेदेन ॥४१॥

इसी प्रकार होरा लग्न में स्थित नवांश राशि से भी विचार करना चाहिए।

निर्लिप्त बालक

बुध शुक्राभ्यां कामी विरागतः ॥४२॥

यदि आधानकालीन होरा लग्न नवांश में बुध व शुक्र स्थित हों तो बालक कामोपभोग में अधिक रुचि नहीं लेता है। अर्थात् काम के विषय में उसे अरुचि (विराग)-सी बनी रहती है। वह बे-मन से सांसारिक धर्म निभाता है।

अथवा **वि विशेषो रागस्तस्मात्** (**तसिल् प्रत्ययः तः**) अर्थात् अत्यन्त प्रेम व भावुकता के कारण वह बालक कामी होता है। लेकिन हमें पहला अर्थ ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

तत्रकेत्वंशे ॥४३॥

यदि होरा लग्न के नवांश में केतु स्थित हो तो भी बालक वैराग्यपूर्वक कामोपभोग करता है।

केतु को मोक्ष व वैराग्य का कारक माना गया है। इस सूत्र का सम्बन्ध पिछले सूत्र से मानने पर वहाँ विराग का अर्थ विशेष प्रगाढ़ प्रेम न मानकर हमने वैराग्य ही माना है।

छिपे व्यभिचार का योग

गोपमन्यतरः ॥४४॥

यदि होरा लग्न के नवांश में बुध या शुक्र में से कोई एक ही स्थित हो तो बालक छिपे तौर पर व्यभिचार का आचरण करता है।

ये योग बालक व बालिका पर समान रूप से लागू होंगे। होरा लग्न में सभी ग्रह जन्म लग्न की तरह ही होती है। अतः उनकी नवांश राशि भी लग्न नवांश के आधार पर ही जानी जाएगी।

केत्वंशे बुधचन्द्रदृष्टे सर्ववर्णाश्रयेषु संचरितः ॥४५॥

यदि होरा लग्न के नवांश में केतु स्थित हो और उस पर बुध व शुक्र की दृष्टि हो तो बालक सभी जाति वर्णों के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

पापदृष्टे पुंश्चली ॥४६॥

यदि आधानकालीन होरा लग्न के नवांश में केतु स्थित हो और उसे पापग्रह देखते हों तो बालिका केवल पर-पुरुषों के साथ सम्पर्क रखती है।

विधवा योग

सप्तमाष्टमयोः पापबल्ये विधाव ? (विधवा) ॥४७॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न या तत्कालीन होरा नवांश में सप्तम और अष्टम स्थानों में पापग्रहों की बहुतायत हो तो बालिका विधवा होती है।

यदि पुरुष जन्म सिद्ध होता हो तो विधुर योग बताना चाहिए। यहाँ 'बल्ये' शब्द विचारणीय है। ब और व में प्रायः भ्रम हो जाता है। हमारे विचार से यहाँ पर 'वल्ली' शब्द होगा जिसका सप्तम्यन्त रूप 'वल्लौ' बनेगा। लिपिभ्रम से अन्तिम 'ल' को 'य' पढ़ लिया गया है। अतः इसका अर्थ होगा कि पाप ग्रहों की वल्ली। 'वल्ली' शब्द का तद्भव बाली (गेहूं, जौ, ज्वार आदि की बाली) शब्द प्रचलित है। इसका अर्थ समूह, संघात का द्योतक है।

अब 'विधाव' शब्द को लीजिए। इसको हमने 'विधवा' शब्द माना है। ऐसा होना बहुत सम्भव भी है।

ऐसा मानने का एक पुष्ट आधार भी हमारे पास है। **वराहमिहिर** ने सप्तम स्थान (चन्द्र व जन्म लग्न से) में पाप बहुलता होने पर व अष्टम में भी पाप बाहुल्य होने पर विधवा योग माना है।

आग्नेयैर्विधवास्तराशिसहितैर्मिश्रैः पुनर्भूर्भवेत् ॥

(बृ. जा. स्त्री० श्लोक ६)

'चन्द्र या जन्म लग्न से सप्तम में कई पापी ग्रहों से विधवा होती है। व शुभ पापमिश्र होने से पुनः विवाह करती है।'

यही आशय उसने **'क्रूरेऽष्टमेविधवता'** कहकर श्लोक १४ में भी प्रकट किया है।

तत्राष्टमे कुजकेतुषु ॥४८॥

यदि आधान या जन्म लग्न से अष्टम स्थान में मंगल व केतु साथ-साथ हों तो भी बालिका विधवा होती है।

पतिनाशक योग

दृग्योगाभ्यां भर्तृहन्त्री ॥४९॥

यदि अष्टम स्थान पर या सप्तम स्थान पर मंगल व केतु की दृष्टि हो या सप्तम में मंगल केतु हों तो कन्या अपने पति की हत्या करने वाली होती है।

एकांशेन ॥५०॥

यदि मंगल और केतु एक ही नवांश में हों तो भी बालिका अपने पति को मार देती है।

यहाँ सप्तम या अष्टम भाव में स्थित होना अनिवार्य नहीं है। यदि कहीं भी स्थित होकर ये दोनों एक ही नवांश में हों तो यह फल घटित होता है।

दूसरों की सहायता से पति की हत्या का योग

ओजयुग्ममार्गया ॥५१॥

मंगल और केतु यदि विषम राशि नवांश में हों तो स्त्री अपने पति कोअकेली ही मारती है।

यदि ये समराशि में हों तो वह इस कुकृत्य में दूसरों की सहायता भी लेती है।

तलाक होने का योग

नीचे विपर्ययः ॥५२॥

यदि मंगल और केतु अपने नीच नवांग में हों (कर्क राशि में) तो पत्नी अपने पति को नहीं मारती।

इस स्थिति में कदाचित् अलगाव के योग होंगे। यह बात यहाँ सहज ही अनुमेय है।

यह सूत्र पहले अध्याय के पाद ४ में क्रम संख्या १० पर भी है। वहाँ इसका अर्थ है कि उपपद से द्वितीय स्थान का स्वामी यदि नीच गत हो तो मनुष्य की पत्नी साधारण घराने की होती है।

सन्निपात से पति की मृत्यु

षड्वर्गादौ सन्निपातहनने ।।५३।।

यदि मंगल व केतु या अन्य पूर्वोक्त वैधव्य कारक योग होने पर वे ग्रह अपने वर्गों में बहुत जगह नीच वर्ग में हों तो पति की मृत्यु सन्निपात रोग से होती है।

अथवा उक्त स्थिति में पत्नी द्वारा पति की हत्या करते समय, वह स्वयं मृत्यु या कष्ट को प्राप्त करती है।

सन्निपात शब्द से मस्तिष्क ज्वर या त्रिदोष ज्वर समझा जाता है। लेकिन सन्निपात शब्द का अर्थ गिरना भी हो सकता है। अतः पति को मारने जाए और स्वयं मारी जाए या पकड़ी जाए, ऐसा अर्थ भी सम्भव है।

प्रकारान्तर से जातक फल

मूर्तौ रूपम् ।।५४।।

होरा लग्न से पंचम स्थान (मूर्ति) में बालक का रूप आदि देखना चाहिए।

यहाँ पहले से ही आधानकालीन होरा लग्न का प्रसंग चल रहा है। अतः होरा लग्न से पंचम भाव का ग्रहण किया गया है।

सद्बुद्धि वाले बालक का योग

भाग्यांशगैश्चन्द्र बाहुल्ये बुधशुक्राभ्यां सुमतिः ।।५५।।

यदि आधानकाल या जन्मकाल में चन्द्रमा वृषराशि (भाग्य) के नवांश में हो और बुध व शुक्र मिथुन राशि या नवांश (बाहुल्य) में हों तो बालक सुमति से युक्त, अत्यन्त शुद्ध विचारों वाला होता है।

दुर्गन्ध युक्त शरीर वाले बालक का योग

तत्र केतुना केत्वंशे दुर्गन्धः । ५६।

इस सूत्र का सम्बन्ध पिछले सूत्र से है। यदि आधान लग्न या जन्म लग्न में मेष राशि (केतु शब्द) में या इसके नवांश में चन्द्रमा व साथ में बुध, शुक्र हों तो बालक के शरीर से दुर्गन्ध आती है।

जातक ग्रन्थों में मुख-दुर्गन्ध के योग बताए गए हैं। होरारत्नम् में बताया गया है कि मेषराशि में चन्द्र व शुक्र स्थित हों तो बालक के मुख से दुर्गन्ध आती है।

शनिगृहे शनिहद्दगतोऽपिवा भवतिचन्द्रगृहेऽप्यथ भार्गवे।
अजगते वपुषीन्दुगते बुधे रिपुपतौ च मुखस्य विगन्धता।।

(होरारत्नम् ६.)

(i) शुक्र शनि को राशि या शनि की हद्दा में हो।
(ii) कर्क राशि में शुक्र हो।
(iii) मेष में चन्द्रमा व शुक्र हों।
(iv) षष्ठ स्थान में बुध की राशि हो।

इन योगों में मुखदुर्गन्ध होती है। इसी मत का समर्थन **जातकसार-दीप व ज्योतिस्तत्त्व** में भी किया गया है।

यहाँ पर केतु शब्द को यदि केतु ग्रह का वाचक मानें तो केतु का दुर्गन्ध योगकारकत्व सिद्ध नहीं होता है। अतः लग्न में मेष राशि हो या कहीं भी मेष राशि हो और उक्त प्रकार से मेष में बुध, शुक्र व चन्द्रमा का योगादि हो तो जैमिनिमुनि ने भी दुर्गन्धयोग माना है।

टेढ़े-मेढ़े दाँतों का योग

रविदृष्टे दन्तवक्री।।५७।।

यदि आधान लग्न या जन्म लग्न को सूर्य देखता हो तथा वहाँ उक्त ग्रह भी स्थित हों।

अथवा कहीं भी स्थित बुध, शुक्र, चन्द्र को सूर्य देखता हों तो बालक के दाँत टेढ़े होते हैं या दाँतों में विकार होता है।

सप्तम भाव में सूर्यादि पापग्रहों को अन्य क्रूर ग्रह देखें तो सामान्यतः दन्त-विकार होता है।

मेष, वृष व धनु लग्न में स्थित क्रूर ग्रहों को क्रूर ग्रह देखें तो भी दन्त-विकार होता है। यह मत होरारत्नम् का है। कुछ अन्य दन्त-विकारों

के योग इस प्रकार हैं—

(i) १,२,९ लग्न को क्रूर ग्रह देखें या वहाँ क्रूर ग्रह हों।

(ii) लग्न में गुरु व राहु हों।

(iii) अष्टम में शुक्र व शनि हों।

(iv) षष्ठ में पापग्रह व षष्ठेश सप्तम में हों।

(v) मेष, वृश्चिक में षष्ठेश हों।

(vi) लग्नस्थ लग्नेश मंगल को शनि देखता हो।

(vii) षष्ठेश व धनेश पापयुक्त हों।

(viii) षष्ठ में राहु, केतु हों।

(ix) लग्न या पंचम में राहु हो।

(x) सप्तम में पापग्रह हों।

(xi) सप्तम सूर्य, चन्द्र, शनि हों।

क्रोधी बालक का योग

कुजदृष्टे क्रोधकरी ।।५८।।

यदि आधान लग्न या जन्म लग्न या इनके स्वामी ग्रह को मंगल देखता हो तो बालक क्रोधी स्वभाव का होता है।

बलभद्रमिश्र ने बताया है कि चतुर्थ स्थान में कर्क, सिंह, वृष, मीन या वृश्चिक राशि हो तो बालक क्रोधी होता है।

सामान्यतः लग्न, चतुर्थ, पंचम से मंगल का सम्बन्ध जातक को उग्र बनाता है। कुछ योग ये हैं—

(i) १,१० भाव में मंगल हो और दिन का जन्म हो।

(ii) सप्तम या लग्न में मंगल निर्बल हो और शनि से दृष्ट हो।

(iii) लग्नेश निर्बल हो।

(iv) लग्नेश ८,१२ स्थानों में हो।

(v) तृतीय में केतु व पंचम, नवम में जन्मराशीश हो।

(vi) धनेश यदि सगुलिक हो।

नम्र व भीरु बालक

इतर ग्रहदृग्योगः ।।५९।।

सोम्यश्च ।।६०।।

यदि आधान लग्न या जन्म लग्न को अन्य क्रूर ग्रह देखते हों या वहाँ पर स्थित हों तो बालक नम्र होता है ।

यदि लग्न या लग्नेश को शुभग्रह देखते हों तो भी बालक नम्र होता है।

चरित्रहीन योग (मंगलीक योग)

पापे पाप बाहुल्या ।।६१।।

यदि आधान लग्न या जन्म लग्न में पापग्रह स्थित हों तो जातक पाप कर्म करने वाला चरित्रहीन होता है ।

यहाँ हम पाठकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं कि लग्न में मंगल या क्रूर ग्रह स्थित हों तो 'मंगलीक' योग बनेगा । ये बालक मंगल के अतिशय प्रभाव से युक्त होंगे । इसी कारण इनका स्वभाव उग्र व अभिमानी होता है । यहाँ भी सूत्र ५८,६१ में इसी की ओर संकेत किया गया है ।

सुशील कन्या योग

शुभे गुणवती ।।६२।।

यदि आधान लग्न या जन्म लग्न को शुभग्रह देखते हों या वहाँ शुभ ग्रह स्थित हों तो बालिका सुशील, नम्र व गुणवती होती है ।

मिश्रे समाः ।।६३।।

यदि उक्त स्थानों में शुभ व पाप मिश्रित ग्रह स्थित हों तो बालिका का स्वरूपगुणादि पूर्वोक्त प्रकार से मिश्रित ही समझना चाहिए ।

एवमष्टमः सप्तमार्धहरितः ।।६४।।

इसी प्रकार से यदि अष्टम स्थान में पापग्रह स्थित हों तो दुःशीलता व शुभ ग्रह स्थित हों तो सुशीलता होती है । किन्तु अष्टमस्थ ग्रहों का उक्त फल सप्तम या लग्न में स्थित ग्रहों की अपेक्षा आधा ही समझना चाहिए ।

त्रिकोणे त्रिषडायेषु ।।६५।।

इसी प्रकार आधान लग्न या जन्म लग्न से त्रिकोण स्थानों (५,९) में या ३,६,११ स्थानों में शुभग्रह स्थित हों तो जातक सुशील व सुन्दर होता है ।

यदि इन्हीं स्थानों में पापग्रह स्थित हों तो जातक को दुःशील, क्रोधी

व सामान्य रंग-रूप वाला समझना चाहिए।

सामान्यतः त्रिकोणों में शुभग्रह शुभफल देते हैं। परन्तु ३,६,११ में शुभग्रह उत्तम फल नहीं देते हैं।

यहां पर मुनि ने इन स्थानों में भी शुभग्रहों की स्थिति शुभ मानी है।

हमारे विचार से ३,६,११ में शुभ या पाप ग्रहों की स्थिति उक्त प्रकार से सुन्दर या असुन्दर फल तभी देगी जब तीनों उक्त भावों में से कोई भी स्थान खाली न हों। अथवा त्रिकोण शब्द का सम्बन्ध उत्तरपद से मानकर इस प्रकार अर्थ किया जाना चाहिए।

'३,६,११ स्थानों के त्रिकोण में शुभ या पापग्रह हों तो क्रमशः शुभ या अशुभ फल उक्त प्रकार से घटित होगा।' तृतीय भाव के त्रिकोण स्थान (३,७,११) होंगे षष्ठ स्थान के त्रिकोण स्थान (६,१०,२) होंगे। एकादश स्थान के त्रिकोण भी (११,७,३) होंगे।

इनमें से सप्तम व दशम तो केन्द्र स्थान हैं। इनमें शुभ व पाप ग्रहों से क्रमशः शुभ व पाप फल ही होता है, यह बात पाराशर मतानुसार है।

इसी प्रकार (३,११) स्थानों में शुभ ग्रह या पापग्रह हों तो पाराशर मत में क्रमशः अशुभ व शुभ फल देते हैं।

लेकिन इसका सम्बन्ध पत्नी या स्त्री से न होकर अपनी भुजा व पराक्रम से होता है। इन स्थानों में पाप ग्रह बालक को प्रायः क्रूर बनाते हैं।

अब २,१० स्थानों को देखिए। उपपद से द्वितीय स्थान में पापग्रहों की स्थिति से पत्नी के विषय में रोगादि की प्रवृत्ति पहले इसी ग्रन्थ में बताई जा चुकी है। अतः आधान या जन्म से द्वितीय स्थान में पापग्रह जातक को क्रूर कर्मा, रोगी या क्रोधी बनाएँगे। दशम स्थान की इस प्रसंग से सम्बन्धित कोई सूचना जैमिनीयमत में नहीं मिलती है।

कटपयादि से त्रि (द्वितीय भाव) षड् (षष्ठ भाव) आय (लग्न) आता है। किन्तु एक ही सूत्र में दो पद्धतियाँ नहीं अपनाई जा सकती हैं।

अतः सबसे पहला अर्थ ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

नीचे विपर्ययः ॥६६॥

यदि उक्त स्थानों में (१,८,५,९,३,६,११) स्थित ग्रह अपनी नीच राशि में हों तो विपरीत फल होता है।

शुभ ग्रह यदि नीचगत हों तो अशुभ फल और पाप ग्रह नीचगत हों

तो शुभ फल होगा, ऐसा समझना चाहिए।

दिनभाग्ययोरानुकूल्ये ।।६७।।

यदि द्वितीय (भाग्य) व अष्टम (दिन) भाव में नीचगत ग्रह स्थित हों तो अनुकूल फल मिलता है। इस स्थिति में नीच ग्रह भी शुभ फल देंगे।

ध्यान रखिए, जैमिनीयमत में उच्च व नीच अर्थात् ऊपरी या निचली चरम सीमा में ग्रह अपना अधिकतम फल देते हैं।

शुभेतर मिश्रतरौ च ।।६८।।

यदि क्रूर ग्रह शुभ राशियों या मिश्रित राशियों में हों तो भी उक्त प्रकार से अनुकूल फल ही समझना चाहिए। यदि शुभ ग्रह, पाप राशि (विषम राशि) में हों तो वे भी क्रूरवत् माने जाएँगे।

चक्षुबर्णभेदेन नित्यश्च ।।६९।।

लग्न से षष्ठ स्थान की वर्णद राशि यदि लग्न से द्वादश स्थान में पड़ती हो तो उक्त फल सदैव मिलता है। इस स्थिति में सदैव शुभता, सुशीलता व नीरोगता बनी रहेगी।

लग्न नवांश से फल निर्णय

यत्नेऽशंकतः ।।७०।।

अब मैं (जैमिनि) यत्न अर्थात् लग्न में स्थित नवांश से फल जानने का प्रकार बताता हूँ।

नवांश व व्यक्ति का चरित्र

राज्ये नीचे ।।७१।।

यदि लग्न की नवांश राशि, लग्न से बारहवें स्थान (राज्य) में पड़ती हो तो जातक नीच कार्य करने वाला, दुःशील होता है।

कामुकता व नवांश

धनेकामी ।।७२।।

यदि लग्न की नवांश राशि धन अर्थात् नवम स्थान में पड़ती हो तो जातक कामुक स्वभाव का होता है।

मोक्ष व नवांश

धर्मे मोक्षी ।।७३।।

यदि लग्न की नवांश राशि, लग्न से एकादश स्थान (धर्म) में पड़ती हो तो जातक मोक्ष का इच्छुक या मुक्त होता है।

धने पापी ।।७४।।

लग्न नवांश राशि यदि, लग्न से नवम में हो तो मनुष्य पाप कर्म करने वाला होता है।

बाल विधवा योग

तत्रख्यंशे बालविधवा ।।७५।।

यदि कन्या की जन्म कुण्डली में सिंह का नवांश हो तो बालिका बहुत कम अवस्था में ही विधवा हो जाती है।

रवित्रिकोण च ।।७६।।

यदि नवांश कुण्डली में त्रिकोण स्थानों में सूर्य स्थित हो तो भी कन्या अल्पावस्था में ही विधवा हो जाती है।

कामिनी योग

चन्द्रे कामिनी ।।७७।।

यदि लग्न में कर्क का नवांश हो या नवांश कुण्डली में चन्द्रमा त्रिकोण स्थानों में हो तो बालिका सुन्दरी व मदमाते शरीर वाली होती है।

कुरूप योग

चन्द्रत्रिकोणेषु च कुज कुरुपिक्रोधी ।।७८।।

यदि चन्द्रमा से त्रिकोण स्थानों में मंगल स्थित हो तो भी बालिका कुरूपवती व क्रोधी स्वभाव वाली होती है।

कुज त्रिकोणेषु च ।।७९।।

यदि नवांश कुण्डली में त्रिकोण स्थानों में मंगल स्थित हो तो भी बालिका कुरूपवती व क्रोधी स्वभाव वाली होती है।

बाँझपन का योग

बुधवन्ध्या ।।८०।।

यदि नवांश लग्न से त्रिकोण स्थानों में अकेला बुध हो तो स्त्री बाँझ होती है।

अथवा नवांश में बुध हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

पतिपरायण योग

बुधे त्रिकोणेषु चगुरौ पतिभक्तिपरायणा ॥८१॥

यदि जन्म लग्न या नवांश में बुध व बृहस्पति परस्पर एक-दूसरे से त्रिकोण स्थानों में स्थित हों तो स्त्री अपने पति के प्रति समर्पित व तत्प-रायणा होती है।

गुरुत्रिकोणेषु च ॥८२॥

यदि लग्न या नवांश से त्रिकोण स्थानों में बृहस्पति स्थित हों तो भी स्त्री पतिपरायण व समर्पित होती है।

सौभाग्यवती योग

शुक्रे सर्वसौभाग्यकारिणी ॥८३॥

यदि लग्न या नवांश से त्रिकोण स्थानों में शुक्र स्थित हो तो स्त्री सभी प्रकार के सौभाग्यों से युक्त होती है।

सौभाग्य शब्द से तात्पर्य है सुभगत्व। भग का अर्थ है ऐश्वर्य। अतः सौभाग्य शब्द से पति-प्रेम, पुत्रवती होना, माननीय होना, कुलाग्रणी होना, धन-सम्पत्ति से युक्त होना आदि सभी सुख आ जाते हैं।

शुक्र स्त्री कारक ग्रह है तथा प्रेम, विलास, कामोपभोग का प्रति-निधि है, अतः त्रिकोण में इसकी स्थिति इन सब वस्तुओं की बढ़ोत्तरी अवश्य करेगी।

शुक्र त्रिकोणेषु च ॥८४॥

यदि लग्न या नवांश में शुक्र बृहस्पति से त्रिकोण स्थानों में हो तो भी स्त्री सभी प्रकार के सौभाग्य से युक्त होती है।

पुरुषाकार स्त्री के योग

शनौ कामिनी च पुरुषः ॥८५॥

यदि नवांश लग्न या जन्म लग्न में शनि स्वयं स्थित हो तो स्त्री

यद्यपि स्त्रीत्व (कामकेलियोग्यता) से युक्त होती हुई भी देखने में या स्व-भावादि से पुरुष की तरह प्रतीत होती है।

शनित्रिकोणेषु च ॥८६॥

यदि लग्न या नवांश में त्रिकोण स्थानों में या गुरु से त्रिकोण में शनि स्थित हो तो भी स्त्री पुरुषों की तरह दिखने वाली होती है।

पुरुषोचित कार्य करने के योग

राहुसर्वकर्मात्मकेषु ॥८७॥

यदि नवांश या लग्न में राहु स्थित हो तो स्त्री सभी पुरुषोचित कार्य करने वाली होती है।

भारी भरकम कार्य करना, खेल प्रतियोगिताएँ, पुलिस, सेना आदि की नौकरी प्रभृति कार्य पुरुषोचित माने जाते हैं।

राहु त्रिकोणेषु च ॥८८॥

यदि लग्न या नवांश लग्न में त्रिकोण स्थानों में राहु स्थित हो तो भी स्त्री पुरुषों के योग्य सभी कार्य करती है।

भीषण कार्य करने के योग

केतौ चाण्डाली तत्समानवर्ती ॥८९॥

यदि नवांश लग्न या जन्म लग्न में केतु स्थित हो तो स्त्री चाण्डाली होती है। अथवा चण्डाल जैसे चरित्र वाली होती है।

तत् त्रिकोणेषु च ॥९०॥

इसी प्रकार लग्न या नवांश से त्रिकोण स्थानों में केतु की स्थिति से भी स्त्री भीषण कार्य करने वाली चाण्डालवत् होती है।

नवांश वर्णद से विचार

एवं वर्णसंज्ञाः स्युः ॥९१॥

जिस प्रकार से जन्म लग्न के नवांश से उक्त विचार किया गया है, उसी प्रकार से नवांश के वर्णद लग्न से भी विचार करना चाहिए। अथवा जन्म लग्न के वर्णद से देखना चाहिए।

नेत्रहीन योग

चक्षुर्हीनम् ।।६२।।

जिस प्रकार पहले भाव स्पष्ट व होरा लग्न स्पष्ट के जोड़ने से वर्णद बनाना बता चुके हैं, उसी प्रकार से जन्म लग्न के नवांश व होरा लग्न के नवांश को जोड़कर नवांश वर्णद बनाया जा सकता है। किन्तु यह हमें कष्ट कल्पना प्रतीत होती है। अतः वर्णद लग्न से ही विचार करना श्रेष्ठ है। तथापि पाठक नवांश वर्णद से भी देखकर परीक्षा कर लें।

यदि वर्णद लग्न की राशि षष्ठ या अष्टम भाव में पड़ती हो तो व्यक्ति दीन, हीन या नेत्रहीन होता है। यहाँ सूत्र में अन्वय सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है। अतः वर्णद लग्न में केतु हो तो व्यक्ति चक्षुहीन होता है। ऐसा अर्थ भी किया जा सकता है।

वर्णस्त्रिशांशे आद्यापहारे ।।६३।।

वर्ण लग्न में जो त्रिशांश राशि हो, उस राशि की दशा में जब वर्णद लग्न की अन्तर्दशा आएगी तब व्यक्ति को उक्त अशुभ फल (नेत्रहीनता या हीनता) का सामना करना पड़ता है।

पाप त्रिकोणेषु च ।।६४।।

यदि वर्णद लग्न से त्रिकोण स्थानों में पापग्रहों की स्थिति हो तो भी उक्त अशुभ फल होता है।

यथास्वं नीचेषु च ।।६५।।

यदि वर्णद लग्न या उसके त्रिकोण भावों में स्थित ग्रह अपनी नीच राशियों में हों तो उक्त फल अधिक उत्कट होगा। अब किस विषय या वस्तु से व्यक्ति वंचित या हीन रहेगा, इसके लिए नीच राशियों के शील-स्वभाव व अंगों से सम्बन्धी उक्त अशुभ फल होगा। ऐसा समझना चाहिए।

यदि वर्णद लग्न या त्रिकोणों में मकर राशि में बृहस्पति नीचगत हो तो मकर राशि घुटनों की प्रतिनिधि है। अतः घुटनों में विकार होगा। अब कितनी मात्रा में विकार होगा? इसके लिए नीच राशि के गतांश व ग्रहों के बल आदि का विचार करना चाहिए। यही बात मुनि ने अगले सूत्र में बताई है।

जिस ग्रह के अंश अधिक हों वह सबसे अधिक बली होगा। अधिक

भुक्तांश वाला ग्रह कम भुक्तांश वाले ग्रह की अपेक्षा वरिष्ठ, ज्येष्ठ अर्थात् बली होगा।

इसी प्रकार से ग्रहों का बल निश्चय कर गर्भ के मासों का प्रतिनिधित्व भी निश्चित कर लेना चाहिए।

अंशग्रह बलानाम् ॥९६॥

अधिक अंश वाले ग्रह को कम अंश वाले ग्रह से बलवान् मानकर ग्रहों के बल के तारतम्य से फलाफल का विवेक करना चाहिए।

गर्भमासों के अधिपति

रविशुक्राभ्यां प्रथमः ॥९७॥

सूर्य व शुक्र में से जो अधिक अंशों के कारण बली हो, वही गर्भावस्था में प्रथम मास का अधिपति होता है।

रविचन्द्राभ्यां द्वितीयः ॥९८॥

सूर्य व चन्द्रमा में से अधिक बली ग्रह दूसरे मास का अधिपति होता है।

रविकुजाभ्यां तृतीयः ॥९९॥

सूर्य व मगल में से अधिक बल वाला ग्रह गर्भावस्था में तीसरे मास का अधिपति होता है।

रविबुधाभ्यां चतुर्थः ॥१००॥

सूर्य और बुध में से अधिक बली ग्रह गर्भावस्था में चौथे मास का अधिपति होता है।

रविगुरुभ्यां पंचमः ॥क॥

रविशनिभ्यां षष्ठः ॥ख॥

सूर्य व वृहस्पति में से बलवान् ग्रह पंचम मास का अधिपति होता है।

सूर्य व शनि में से बली ग्रह छठे मास का अधिपति होता है। चौथे मास का अधिपति बताकर आगे सातवें मास का अधिपति बताया है। यहाँ सभी ग्रहों को आधिपत्य ग्रहों के क्रमानुसार ही दिया गया है। अतः हमने पंचम व षष्ठ मास से सम्बन्धित सूत्रों का यहाँ प्रस्ताव किया है।

ये सूत्र मूल ग्रन्थ में अवश्य ही कहीं त्रुटित हो गए होंगे।

रविराहुभ्यां सप्तम ॥१०१॥

सूर्य व राहु में से बलवान् ग्रह सातवें मास का अधिपति होगा।

रविकेतुभ्यांमष्टमम् ॥१०२॥

सूर्य व केतु में से बलवान् ग्रह आठवें मास का अधिपति होता है।

गर्भमासों का यह अधिपतित्व विलक्षण है। वराहमिहिर व वृद्धयवन से इस विषय में मतभेद है। उनके मत से मासाधिप इस प्रकार है—

गर्भमास	जैमिनि	वराहमिहिर	वृद्धयवन
प्रथम मास	सूर्य या शुक्र	शुक्र	मंगल
द्वितीय ,,	,, चन्द्र	मंगल	शुक्र
तृतीय ,,	,, मंगल	गुरु	गुरु
चतुर्थ ,,	,, बुध	सूर्य	सूर्य
पंचम ,,	,, गुरु	चन्द्र	चन्द्र
षष्ठ ,,	,, शनि	शनि	शनि
सप्तम ,,	,, राहु	बुध	चन्द्र
अष्टम ,,	,, केतु	लग्नेश	लग्नेश
नवम ,,	सूर्य	चन्द्र	चन्द्र
दशम ,,	सूर्य	सूर्य	सूर्य

जैमिनीयमत की अन्य मतों से विलक्षणता स्पष्ट है। महर्षिवर ने सूर्य को मुख्य मासाधिप माना है। वास्तव में सूर्य प्रसव का अधिपति है। सृष्टि का स्रोत है यह वैदिक धारणा है।

एवं सर्वे रन्ध्रफभाग्ययोः वर्जयेत् ॥१०३॥

रन्ध्र अर्थात् दशम मास व भाग्य अर्थात् नवम मासों के अधिपतियों का विचार नहीं करना चाहिए।

अर्थात् नवम मास तक गर्भ पुष्ट होकर प्रसूत हो सकता है। अतः सामान्य अधिपति सूर्य ही उस समय का अप्रत्यक्ष प्रतिनिधि होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

लाभे च तत्रलाभयोः ॥१०४॥

यदि तत्र अर्थात् द्वितीय मास व लाभ अर्थात् सप्तम मास के अधि-

पति आधान लग्न में सप्तम में हो तो गर्भपात की सम्भावना इन मासों में होती है।

शुभे न दोषः ॥१०५॥

यदि द्वितीय व सप्तम मास के अधिपति यदि शुभ ग्रहों से युक्त होकर सप्तम भाव में हों तो गभपात नहीं होता है।

शुभपापयोर्नक्वचित् ॥१०६॥

यदि सप्तम स्थान में शुभ व पाप ग्रह एकत्र स्थित हों तो भी प्रायः गर्भपात नहीं होता है।

अन्य गर्भपात सम्बन्धी प्रबल योग होने पर इस योग की शक्ति बढ़ जाएगी, ऐसा क्वचित् अर्थात् कहीं-कहीं, कभी-कभी पद से स्पष्ट है।

रन्ध्रापवादे सौम्यत्रिकोणे मृगवर्गादि ॥१०७॥

यदि लग्न (आधान) व अष्टम में शुभ व पाप ग्रह एकत्र हों और त्रिकोण में बुध हो तो बालक का शरीर विचित्र प्रकार का अर्थात् पशु-तुल्य होता है।

ऐसी स्थिति में उसके हाथों, पैरों आदि की संख्या मनुष्य की अपेक्षा अधिक हो सकती है।

बराहमिहिर ने भी कहा है कि बुध त्रिकोण में हो और शेष ग्रह कमजोर हो तो कई सिर, हाथ, पैर वाला बालक पैदा होता है। इसी को गर्गाचार्य ने भी स्वीकृत किया है—

बलैर्हीनैर्ग्रहैः सर्वैर्नवपंचमगे बुधे।
द्विगुणांध्रिशिरोहस्तो भवत्येकोदरस्तथा॥ (गर्ग)

स्वात्रिंशांश स्वनीच भवने ॥१०८॥

आत्मकारक ग्रह जिस त्रिंशांश में हो, वह त्रिंशांश राशि यदि आत्मकारक की नीच राशि हो तो भी बालक के शरीर में आवश्यकता से अधिक अंग होने की सम्भावना रहती है।

यथामृगतौल्यादि ॥१०९॥

यदि आत्मकारक ग्रह मकर या तुला राशि में हो तो भी बालक के शरीर-निर्माण की त्रुटियाँ राशि के स्वरूप गुणों के अनुसार समझनी चाहिए।

अथवा आत्मकारक यदि मकर व तुला के त्रिशांशे में हो तो अंग-विपयय या अंगों की अधिकता समझनी चाहिए।

लग्न नवांश व बालक का व्यक्तित्व

आद्यंश भेदेषु ।।११०।।

लग्न में जिस राशि का नवांश हो, उसी नवांश राशि के आधार पर बालक का रूप, रंग, लिंग व प्रकृति आदि का निर्धारण करना चाहिए।

विलम्ब से प्रसव

राहुकेतुभ्यां प्रबन्धः ।।१११।।

यदि लग्न के नवांश में राहु या केतु स्थित हों तो बालक गर्भावस्था में ही अन्दर रुक जाता है। अर्थात् सामान्य प्रकार से प्रसव न होकर बालक नालवेष्टित होता है या देर से पैदा होता है या अन्य कारण से उसका हिलना-डुलना बन्द हो जाता है।

कष्ट से प्रसव

वर्गोत्तम काले ।।११२।।

यदि आधान लग्न या जन्म लग्न के समय विद्यमान होरा लग्न में वर्गोत्तम नवांश स्थित हो तो बालक का प्रसव कष्टपूर्वक होता है।

प्राणी बलानि ।।११३।।

यदि वर्गोत्तम नवांश में बलवान् पाप ग्रह स्थित हो तो कष्ट से प्रसव होता है।

यदि नवांश राशि अन्य प्रकार से बलवान् हो और पापयुक्त हो तो भी कष्टपूर्वक प्रसव होता है :

यदि बलवान् नवांश राशि में बलवान् शुभ ग्रह स्थित हों तो सुखपूर्वक प्रसव होता है।

नवत्रिषडाययोरंशः ।।११४।।

यदि लग्न में ४, २, ६, १ संख्यक नवांश राशि स्थित हो तो भी कष्टपूर्वक प्रसव समझना चाहिए।

सप्ताष्टगुणचेष्टिताः ।।११५।।

यदि जन्म लग्न में सप्तम, अष्टम स्थान की नवांश राशि हो तो बालक की माँ को उस राशि के गुणानुसार प्रसव पीड़ा सहन करनी पड़ती है।

चन्द्र नवांश का महत्त्व

शुभागेनकर्त्तव्यम् ॥११६॥

इसी प्रकार चन्द्र लग्न में स्थित नवांश से भी विचार करना चाहिए।

लक्ष्यलक्षापवादयोः ॥११७॥

यदि चन्द्रमा या लग्न की नवांश राशि तृतीय या षष्ठ स्थान में हो या इन स्थानों में लग्न नवांश राशि का ही नवांश हो तो बालक की माता को प्रसव से पूर्व अपार कष्ट होता है।

यहाँ लक्ष्य शब्द से लग्न का अर्थ आता है और लक्ष्य का अर्थ निशान या शारीरिक चोट भी है। अतः उक्त योग में प्रसव के समय माता को कष्ट होता है या चोट लगती है।

इस पाद में स्त्रीजातक का विशेष रूप से विचार किया जा रहा है। अतः इन सूत्रों के अनुसार बताए गए योगों का अन्वेषण स्त्रियों की कुण्डली में करें। यदि स्त्री की कुण्डली में ये योग हों तो उन्हें युवावस्था में जब प्रसव होगा तो उक्त फल मिलेगा, ऐसा बताना चाहिए।

भाव गणना का प्रकार

क्रमात्क्रूरे शुभाभ्यांच व्युत्क्रमादुभयोः ॥११८॥

इस प्रसंग में चन्द्रमा या लग्न से बताए गए भावों की गणना विषम राशियों या वृष व वृश्चिक में क्रमपूर्वक करनी चाहिए। इसके विपरीत लग्न या चन्द्रमा समराशि में या कुम्भ, सिंह में हों तो व्युत्क्रम से गणना की जाएगी।

रन्ध्रसप्तमयोरेतत् ॥११९॥

सूत्र ११५ में वांछित सप्तम व अष्टम भावों की गणना में इस पद्धति को अपनाना चाहिए।

शेष भावों की गणना सामान्य प्रकार से ही होगी, ऐसा अन्यथा सिद्ध है।

बलसचरितेध्रुवाः ॥१२०॥

नवांश राशि के बल व चरित्र का प्रभाव निश्चित रूप से बालक के

ऊपर पड़ता है।

स्त्री की सन्तान कैसो होगी ? इस विषय में सप्तम स्थान व अष्टम स्थान को पूर्वोक्त प्रकार से जानकर, उनमें स्थित नवांश से सन्तान का स्वरूपादि विवेक सम्भव है।

यदि समराशि हो तो कन्या, विषम हो तो पुत्र जानना चाहिए। इन राशियों के मूल स्वभाव व इनमें स्थित ग्रह दृग्योगादि के अनुसार ज्ञात फल का समन्वय कर सन्तान का स्वभाव भी जाना जा सकेगा।

एतद्योगविहीनस्तु निश्चिन्त्यः स्त्रीजातके ॥१२१॥

ऊपर बताए योगों के अतिरिक्त योगों का विचार विद्वान् दैवज्ञ को स्त्रीजातक के संदर्भ में करना चाहिए।

यहाँ पर 'विहीन' शब्द विचारणीय है। यदि यह शब्द शुद्ध रूप से पठित है अर्थात् इसमें कोई लिपिभेद नहीं हुआ है तो यही इसका अर्थ होगा। अर्थात् अन्य स्त्रीजातक सम्बन्धी ग्रन्थों से शेष जानकारी प्राप्त कर लें।

अथवा 'विहीन' को गलत ढंग से पढ़ा हुआ मानें तो इसके स्थान पर 'विशेष' शब्द की सम्भावना प्रबल है। तब इसका अर्थ होगा कि उक्त योगों का विचार स्त्री के सन्दर्भ में करें।

इति गुरु-इवनाभ्यां वर्णः ॥१२२॥

इसी प्रकार जातक के व्यक्तित्व व लिंगादि का निर्णय वृहस्पति व सूर्य से भी करना चाहिए।

उपलब्ध प्रति में 'गुरुणाभ्यां' पद हमें अटपटा व त्रुटिपूर्ण लगता है। वहाँ द्विवचन का प्रयोग स्पष्टतया दो ग्रहों का सूचना देता है। अतः हमने वैकल्पिक रूप में (गुर्विनाभ्याम्) पाठ माना है।

स्वपितृवर्णश्च ॥१२३॥

इसी प्रकार आत्मकारक की राशि व नवांश, लग्न की राशि व नवांश व इनके वर्णद लग्न से भी विचार करना चाहिए।

इति पं. सुरेशमिश्र विरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीय सूत्रभाष्ये

॥ चतुर्थाऽध्याये तृतीयः पादः समाप्तः ॥

चतुर्थः पादः

सन्तान का विशेष गूढ़ विचार

गुणेषु गुणरमणी ॥१॥

स्त्रीजातक के विशिष्ट प्रस्तुतीकरण के उपरान्त मुनिवर इस अध्याय में जातक की अपनी सन्तान के विषय में विशेष विवेचन का अवतरण कर रहे हैं।

पहले बता चुके हैं अपनी सन्तान का विचार लग्न, आत्मकारक, चन्द्रमा, बृहस्पति व सूर्य से करना चाहिए।

अतः गुण अर्थात् पंचम भावों में सन्तान का विचार अभीष्ट है। लग्न, चन्द्र, कारक, सूर्य, वृहस्पति से पंचम स्थानों का विचार कर, सन्तान का विवेक कर लें।

यदि ये भाव बलवान्, शुभयुक्त, नवांश बली आदि हों तो सुखी सन्तान होगी।

इसके अतिरिक्त स्त्री अर्थात् माता के अपने गुणों—शारीरिक गठन, आन्तरिक संरचना, सन्तानोत्पत्ति की सामर्थ्य, रोग, स्वभाव आदि का भी विवेचन कर लें।

इस प्रकार बालक पर अपनी माता के गुणों का व माता की कुण्डली के उक्त पंचम भावों का प्रभाव पड़ता है।

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभ वर्गेषु ॥२॥

माता या पिता की कुण्डली में केन्द्र व त्रिकोण स्थान यदि शुभ ग्रहों से युक्त हों शुभ प्रभाव में हों या इन स्थानों में शुभ वर्ग पड़ रहे हों तो

सन्तान अवश्य होती है।

पुत्र कारक ग्रहों का निर्णय

अर्कारमन्दफल(ण)यो पुमांश्च ॥३॥

यदि केन्द्र या त्रिकोणों में सूर्य, मंगल, शनि व राहु हों या इनमें विषमराशियाँ हों तो पुत्र सन्तति की अधिकता बतानी चाहिए।

कन्या कारक ग्रह

चन्द्र बुधाभ्यां स्त्री च ॥४॥

यदि केन्द्र या त्रिकोणों में चन्द्रमा व बुध स्थित हों या उनमें सम राशियाँ हों तो कन्या सन्तति की अधिकता होती है।

दृग्योगाभ्यामपि ॥५॥

यदि केन्द्र या त्रिकोण स्थानों में पुत्रकारक ग्रहों (सू. मं. श. रा.) की दृष्टि या अन्य सम्बन्ध बनता हो तो पुत्रों की अधिकता समझनी चाहिए।

यदि इन स्थानों में कन्या कारक (चं. बु.) की दृष्टि या सम्बन्ध बने तो कन्या सन्तान की अधिकता समझनी चाहिए।

प्रथम रजोदर्शन से भविष्यफल कथन

यथा निर्हरणम् ॥६॥

कन्या को जब पहली बार रजोदर्शन हो उस समय की लग्न कुण्डली बनाकर भी उक्त प्रकार से सन्तानादि का विचार करना चाहिए।

आज के युग में यह बात अनोखी जान पड़ती है, परन्तु प्राचीनकाल में दैवज्ञ कन्या के प्रथम रजोदर्शन के समय से भी भविष्य कथन किया करते थे। विज्ञ पाठकों के लाभार्थ हम यहाँ इस विषय में कुछ अधिक जानकारी प्रस्तुत कर रहे हैं—

(i) प्रथम रजोदर्शन में मासानुसार फल इस प्रकार बताया गया है—

मास	फल	मास	फल
चैत्र	वैधव्य	आश्विन	तपोवृद्धि
वैशाख	धन, पुत्र लाभ	कार्तिक	अल्पायु
ज्येष्ठ	रोग	मार्गशीर्ष	बहुपुत्रता
आषाढ़	सन्तान नाश	पौष	चरित्रहीनता

श्रावण	धन लाभ	माघ	पुत्र
भाद्रपद	दुर्भगत्व	फाल्गुन	श्रीमती

मुहूर्तचिन्तामणि में मार्गशीर्ष मास का फल दीर्घायु होना माना है ।

(ii) यदि शुक्ल पक्ष में प्रथम रजोदर्शन हो तो सुशीलत्व और कृष्ण पक्ष में दशमी से अमावस्या तक वेश्यात्व और दशमी से पहले कृष्ण पक्ष में मध्यम फल होता है ।

(iii) **ज्योतिर्निबन्ध** में बताया गया है कि प्रतिपदादि तिथियों में प्रथम रजोदर्शन का यह फल होता है—

तिथि	फल	तिथि	फल
प्रतिपदा	सौभाग्य	नवमी	विधवा
द्वितीया	धन व पुत्र	दशमी	श्रेष्ठ भाग्य
तृतीया	पुत्रवती	एकादशी	पुत्रवती
चतुर्थी	दुःखी (विधवा)	द्वादशी	वेश्याबुद्धि
पंचमी	पतिप्रिया (धनी)	त्रयोदशी	धनी
षष्ठी	कलहप्रिया	चतुर्दशी	वेश्या
सप्तमी	धनी	पूर्णिमा	सर्वसुखी
अष्टमी	कलहप्रिया	अमावस्या	विधवा

यदि तिथि क्षय में रजोदर्शन हो तो अशुभ फल होता है ।

(iv) वारों का फल इस प्रकार है—

वार	कश्यप	वशिष्ठ	ज्योतिर्निबन्ध
रविवार	रोगी	पीड़िता	विधवा
सोमवार	पतिव्रता	पतिव्रता	मृतपुत्रा
मंगलवार	दुःखी	बाँझ	आत्मघातिनी
बुधवार	सौभाग्यवती	सन्तानवती	कन्यावती
गुरुवार	श्रीयुक्त	धनी	पुत्रयुक्ता
शुक्रवार	पतिपरायणा	आनन्ददायिनी	कन्यावती
शनिवार	मलिना	चरित्रहीन	पुंश्चली

हमें **कश्यप ऋषि** वाला मत अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है । यह मत मुहूर्त चिन्तामणि की पीयूष धारा में उद्धृत है ।

(v) वशिष्ठ संहिता में नक्षत्रों का फल बड़े विस्तार से बताया है ।

ज्योतिर्निबन्ध वशिष्ठ संहिता व गर्गादि के मन्तव्य का सार-तत्त्व इस प्रकार है—

नक्षत्र	फल	नक्षत्र	फल
अश्विनी	पुत्रवती	स्वाति	पतिप्रिया
भरणी	दुर्भगा	विशाखा	धनी
कृत्तिका	साध्वी	अनुराधा	निर्धन
रोहिणी	धनी	ज्येष्ठा	भाग्यवती
मृगशिरा	पुत्रवती	मूल	दु:शीला
आर्द्रा	सामान्य चरित्र	पू. षा.	कलहप्रिया
पुनर्वसु	सुपुत्रवती	उ. षा.	सुभगा
पुष्य	पुत्रवती	श्रवण	धनी
श्लेषा	मृत्यु	धनिष्ठा	धनी
मघा	निर्धन	शतभिषा	निर्धन
पू. फा.	सुभगा	पू. भा.	कलहप्रिया
उ. फा.	धनी	उ. भा.	सुशील
हस्त	विदुषी	रेवती	धनपुत्रयुता
चित्रा	धनी		

(vi) विष्कुम्भादि योगों में शुभ योगों का फल शुभ व अशुभ योगों का फल अशुभ होता है। **ज्योतिर्निबन्ध व ज्योतिषसार** में इनका पृथक्-पृथक् फल बताया गया है।

योग	फल	योग	फल
विष्कुम्भ	दुर्भगा	वज्र	स्वच्छन्द
प्रीति	स्नेह	सिद्धि	पुत्रवती
आयुष्यान्	धनी	व्यतिपात	पतिघातनी
सौभाग्य	पुत्रवती	वरीयान्	मृतवत्सा
शोभन	मंगला	परिध	मृतपुत्रा
अतिगण्ड	वन्ध्या	शिव	पुत्रवती
सुकर्मा	शुभ	सिद्ध	शुभ
धृति	सम्पत्ति	साध्य	धर्मपरायणा
शूल	शूलयुता	शुभ	शुभगुणवती
गण्ड	पुंश्चली	शुक्ल	शुभकरी

वृद्धि	पुत्रवती	ब्रह्म	पतिपरायणा
ध्रुव	शोभना	ऐन्द्र	देवरप्रिया
व्याघात	आत्मघाती	वैधृति	पतिनाशिनी
हर्षण	हर्षयुक्ता		

(vii) इसी प्रकार प्रथम रजोदर्शन के समय उदित लग्न का फल भी **दैवज्ञ मनोहर** में इस प्रकार बताया गया है—

लग्न	**फल**	**लग्न**	**फल**
मेष	व्यभिचारिणी	तुला	विचक्षणा
वृष	परकामुकी	वृश्चिक	पतिव्रता
मिथुन	धनभोगयुता	धनु (पूर्वार्ध)	दुराचारिणी
		धनु (उत्तरार्ध)	पतिव्रता
कर्क	व्यभिचारिणी	मकर	मानहीना
सिंह	पुत्रवती	कुम्भ	निर्धन कुल
कन्या	श्रीमती	मीन	विचक्षणा

इन लग्न में यदि शुभ ग्रहों के वर्ग अधिक हों तो नीरोग व भाग्यशालिनी होगी।

पाप वर्गों में रोग पीड़ित अनर्थ करने वाली व दुष्ट बुद्धि होती है। जैमिनिप्रोक्त पूर्व प्रतिपादित नियमों से इनका विशेष शुभाशुभ फल जाना जा सकता है।

सामान्यत: विवाह लग्न में जिन ग्रहों व भावों के सम्बन्ध से अशुभ फल होता है, उनसे प्रथम रजोदर्शन के समय भी हानि होती है।

जो ग्रह व भाव विवाह के समय शुभ फल देते हैं, वे ही इस प्रसंग में भी शुभ होते हैं। **दैवज्ञ मनोहर** में ऐसा ही बताया गया है—

लग्ने ग्रहसंस्था विवाहवत् ॥

(मु. चिन्तामणि. पीयूषधारा १.५ से उद्धृत)

जन्म लग्न से वैधव्य ज्ञान

रोगे पापे वैधवी पापदृग्योगान्निश्चयेन ॥७॥

यदि कन्या के जन्म लग्न में अष्टम स्थान (रोग) में पापग्रह स्थित हों तो विधवा योग होता है।

यदि उस पापग्रह के साथ और पापग्रह भी दृष्टि या युति रखते हों

तो निश्चय से विधवात्व समझना चाहिए। वराहमिहिर ने इस योग को यथावत् स्वीकार किया है।

क्रूरेऽष्टमे विधवता निधनेश्वरोऽशे
यस्य स्थितो वयसि तस्य समेप्रदिष्टा।
सत्स्वर्थगेषु मरणं स्वयमेवतस्याः
कन्यालिगोहरिषु चाल्पसुतत्वमिन्दोः॥ (बृ. जा., स्त्री०, श्लो. १४)

(i) जन्म लग्न से अष्टम में क्रूर ग्रह विधवा योग बनाते हैं।
(ii) अष्टमेश की नवांश राशि के स्वामी की अवस्था या दशा में वैधव्य होता है।
(iii) शुभ ग्रह द्वितीय स्थान में हों तो सुहागिन ही मरती है।
(iv) जन्म समय चन्द्रमा जब कन्या, वृश्चिक, वृष व सिंह में हो तो कम सन्तान वाली होती है।

वैधव्य का समय

उच्चे विलम्बात् ॥८॥
नीचे क्षिप्रम् ॥९॥

यदि अष्टम स्थान में स्थित क्रूर ग्रह अपनी उच्चराशि में हों तो देर से विधवा होती है।

यदि वह क्रूर ग्रह नीच राशि में हों तो जल्दी ही विधवा हो जाया करती है।

मिश्रे मिश्रात् ॥१०॥

यदि वहाँ क्रूर ग्रहों में से एक उच्च में हो व दूसरा नीच में हो तो मध्यायु में अर्थात् प्रौढ़ावस्था में पति की मृत्यु हो जाती है।

चन्द्रकुजदृष्टौ निश्चयेन ॥११॥

यदि उक्त अष्टम स्थान में नीचगत या उच्चगत पाप ग्रह को चन्द्रमा व मंगल देखते हों तो निश्चय ही यह फल घटित होता है।

सन्तान होने के बाद वैधव्य

आद्या आत्मजस्त्री ॥१२॥

यदि उक्त अष्टम स्थान में स्थित पाप ग्रह राशि के प्रथम नवांश में हो तो कन्या उत्पन्न होने के बाद वैधव्य होता है।

काये पापे कोणवा ॥१३॥

यदि स्त्री के जन्म लग्न में कार्य अर्थात् एकादश स्थान और कोण अर्थात् तृतीय स्थान में पाप ग्रह स्थित हों तो भी सन्तानोत्पत्ति के बाद स्त्री को वैधव्य पाने का योग होता है।

गर्भाधान के समय संभोग का प्रकार

पापदृग्योगकाले वियोनिसञ्ज्ञायां विधित्वादिति ।।१४।।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न को जब पाप ग्रह देखते हों या वहाँ पाप ग्रह स्वयं स्थित हों।

अथवा सप्तम स्थान (काल) में पाप ग्रहों की दृष्टि या योग हो। आधान कालीन होरा लग्न को पाप ग्रह देखते हों या उसमें पापग्रह स्थित हों तो पशुवत् मैथुन किया गया समझना चाहिए। इस विषय में बृहज्जातक में बताया गया है—

यथास्तराशिर्मिथुनंसमेति तथैव वाच्यो मिथुन प्रयोगः।
असद्ग्रहालोकितसंयुतेऽस्ते सरोष इष्टैः सविलासहासः ।।

(निषेक, श्लो० २)

आधान या प्रश्न लग्न से सप्तम स्थान में जो राशि स्थित हों, उसी के स्वरूप के समान मैथुन होता है।

यदि उस स्थान में पापग्रहों की दृष्टि या योग हो तो क्रोध के साथ और शुभग्रहों का दृग्योग होने पर हासपूर्वक रमण होता है।'

इसी मन्तव्य की पुष्टि सारावली में भी की गई है। इस सन्दर्भ में मेष, वृष, कर्क, सिंह, वृश्चिक, धनु आदि चतुष्पद या बहुपद राशियों से पशुवत् ग्राम्य ढंग से मैथुन समझना चाहिए। शेष द्विपद राशियों में पुरुषवत् मैथुन कहना चाहिए।

पुरुष का स्वरूपादि ज्ञान

धात्वादिवर्णकाले ।।१५।।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न से सप्तम स्थान में स्थित राशि के आधार पर भी सम्भोग कर्ता का वर्ण, रूप, धातु आदि का निश्चय करना चाहिए।

भावपरिवेधनेन ।।१६।।

इसी प्रकार सप्तम भाव या लग्न की राशि से वेध करने वाली राशियाँ या दृष्टि रखने वाली राशियों से भी वर्ण धातु आदि का विवेक करना चाहिए।

यहाँ भी सम्भोग करने वाले पुरुष का ज्ञान बताया गया है।

उच्चे स्वांशवर्गः ॥१७॥

यदि सप्तम स्थान में कोई ग्रह उच्चराशि में स्थित हो तो सप्तम स्थान में स्थित नवांश के स्वामी के अनुसार अर्थात् उस नवांशेश की प्रकृति के अनुसार सम्भोगकर्ता पुरुष की प्रकृति का निश्चय करना चाहिए।

अर्धांशे पश्वादियोनिसम्बन्धः ॥१८॥

यदि सप्तम राशि के पूर्वार्ध में पापग्रह स्थित हों तो सम्भोग पशुवत् किया गया है, ऐसा समझना चाहिए।

मध्ये मृगाः ॥१९॥

यदि सप्तम स्थानगत राशि के मध्य में पापग्रह स्थित हो तो भी चतुष्पदों की तरह सम्भोग का प्रकार समझना चाहिए।

अन्त्ये कीटकादयः ॥२०॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न के सप्तम स्थान में स्थित राशि के अन्तिम भाग में पापग्रह स्थित हों तो कीड़े-मकोड़ों की तरह सम्भोग समझना चाहिए।

संभोग के स्थान का विवेक

एवमुभौ शुभलोके ॥२१॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न से सप्तम स्थान में शुभ व पाप दोनों ग्रह साथ-साथ हों तो सम्भोग किसी सुन्दर स्थान पर हुआ है, ऐसा समझना चाहिए।

रविशुक्राभ्यां पापपूर्वम् ॥२२॥

यदि आधान लग्न या प्रश्न लग्न से सप्तम स्थान में सूर्य व शुक्र स्थित हों तो सम्भोग से पहले कठोर भाषण, कलह या क्लेश हुआ था, ऐसा बताना चाहिए। अथवा उक्त स्थिति में अवैध शारीरिक सम्बन्ध बताना चाहिए।

अन्यैरन्यथा ॥२३॥

यदि उक्त सप्तम स्थान में सूर्य व शुक्र को छोड़कर शेष पाप ग्रह हों अर्थात् मंगल, शनि, राहु व पापयुक्त बुध हों तो भी कलहपूर्वक सम्भोग बताना चाहिए।

यदि सप्तम स्थान में चन्द्र, गुरु, शुभयुक्त बुध हों तो प्रसन्नतापूर्वक प्रेममय वातारण में सम्भोग हुआ है, ऐसा समझना चाहिए।

अथवा सूर्य शुक्र के अतिरिक्त ग्रह वहाँ हों तो विधान सम्मत पति-पत्नी का ही शारीरिक सम्बन्ध हुआ है, ऐसा बताना चाहिए।

अत्र शुभः केतुः ।।२४।।

यदि सप्तम स्थान में केतु स्थित हो तो उसे इस प्रसंग में शुभ माना जाएगा।

यदि केतु किसी भी स्थान में स्थित होकर पापग्रहों से दृष्ट हो तो उसे भी क्रूर मानना चाहिए, ऐसी ध्वनि स्पष्ट है। इसकी पुष्टि अगले सूत्र में की गई है।

पापदृग्योगान्न ।।२५।।

यदि केतु को पाप ग्रह देखते हों या केतु के साथ पापग्रह स्थित हों तो उसे शुभ नहीं माना जाएगा।

गर्भ की सम्भावना का ज्ञान

रविराहु शुक्राः ।।२६।।

गुरुश्चैककालाद् दृग्योगमिति ।।२७।।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न से सप्तम स्थान पर सूर्य, राहु, शुक्र व वृहस्पति में से किसी एक का भी योग हो या सप्तम स्थान पर इनकी दृष्टि हो तो गर्भधारण की सम्भावना को पुष्ट समझना चाहिए।

यथा चन्द्रम् ।।२८।।

इसी प्रकार आधानकालीन या प्रश्नकालीन चन्द्रमा को भी लग्न की तरह मानकर, उससे व सप्तम स्थान से भी इन योगों का फल देखना चाहिए।

अर्थात् तत्कालीन चन्द्र कुण्डली में भी इन योगों का व आगे बताए गए योगों का अनुसंधान करना चाहिए।

तत्र गुरुवर्गे स्वाम्यंशे च ।।२९।।

यदि चन्द्र लग्न में वृहस्पति के अधिक वर्ग हों या चन्द्र राशीश के वर्ग विद्यमान हों तो अवश्यमेव बालक की उत्पत्ति होगी, ऐसा समझना चाहिए।

स्वेशभूमित्र नीचांशकश्च ॥३०॥

यदि आत्मकारक की राशि का स्वामी और मंगल, आधानकाल या प्रश्नकाल में नीच अर्थात् मीन राशि के नवांश में हो अथवा ये दोनों नीच नवांश में हों तो भी बालक की उत्पत्ति निश्चय ही समझनी चाहिए।

पूर्णेन्दुराह्वारान्तरालाश्च ॥३१॥

यदि चन्द्रमा आधानकाल या प्रश्नकाल में पूर्ण हो और राहु तथा मंगल के अन्तराल में हो तो भी बालक के जन्म को निश्चित मानना चाहिए।

शुभवर्गे शुभदृष्टियुतः ॥३२॥

यदि आधानकाल या प्रश्नकाल में चन्द्रमा शुभ ग्रहों के वर्ग में स्थित हो या शुभ ग्रहों से युक्त हो या शुभ ग्रह चन्द्रमा को देखते हों तो भी बालक के जन्म की सम्भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं।

अंशे मित्रभेदात् ॥३३॥

इसी प्रकार आधानकालीन या प्रश्नकालीन नवांश कुण्डली में भी चन्द्रमा या लग्न पर मित्र ग्रहों की दृष्टि से बालक का जन्म मानना चाहिए।

यदि शत्रुग्रहों से चन्द्रमा युक्त या दृष्ट हो तो बालक के जन्म की सम्भावनाएँ क्षीण हो जाती हैं।

स्वानन्द तुल्येवा ॥३४॥

यदि आधानकाल या प्रश्नकाल में स्व अर्थात् आत्मकारक या चन्द्रमा आनन्द अर्थात् वृश्चिक राशि में या तुल्य अर्थात् कर्क राशि में हो तो भी बालक का जन्म होता है अर्थात् गर्भाधान को सफल बताना चाहिए।

वर्गेनवांशश्च ॥३५॥

यदि आधानकाल या प्रश्नकाल में चन्द्रमा या आत्मकारक वृश्चिक या कर्क के वर्गों में हों अथवा नवांश कुण्डली में इन राशियों में हों तो भी गर्भ सम्भव योग होता है तथा प्रसव सफलतापूर्वक होगा, ऐसा बताना चाहिए।

प्रसव के समय बेहोशी का योग

तत्र ज्ञानाज्ञानेषु ।।३६।।

आधानकाल या प्रश्नकाल के लग्न, चन्द्रमा व आत्मकारक पर यदि शुभग्रहों का प्रभाव अधिक हो तो सामान्य प्रसव पीड़ा होती है और प्रसव के समय माता की चेतना बनी रहती है।

इसके विपरीत यदि इन पर अशुभ अर्थात् क्रूर ग्रहों (केतु रहित) का अधिक प्रभाव हो तो चेतनाशून्य होकर ही माता प्रसव करा पाती है।

पहले प्रसवपीड़ा व मानसिक घबराहट के कारण माता की संज्ञा-शून्यता प्रायः प्रथम प्रसव के समय तो हो जाया करती है। किन्तु आजकल आपरेशन आदि की स्थिति में स्थानीय या सर्वांगीण बेहोशी आवश्यक हो जाती है। गर्भ में बालक की उल्टी स्थिति, टेढ़ा होना, सिर का बड़ा आकार, प्रसव मार्ग का संकीर्ण होना आदि अनेक कारण हैं जिनके कारण आपरेशन से प्रसव कराया जाता है।

राहु, मंगल व शनि का समवेत प्रभाव अवश्य ही शल्यक्रिया का सूचक होगा। राहु चेतना का, मंगल औजार प्रयोग का व शनि औजारों का प्रतीक है। मंगल शनि से स्थानीय संज्ञा शून्यता (Local-Anaesthesia) और राहु से सर्वांग बेहोशी (General-Anaesthesia) समझनी चाहिए।

सप्तम भाव का भी पुत्र भावत्व

पुत्रमणि रमणो ।।३७।।

स्त्री की कुण्डली में मणि अर्थात सप्तम स्थान से ही पुत्रादि का विचार करना चाहिए।

पाठकों को यह बात कुछ अटपटी लग सकती है, परन्तु बिल्कुल सटीक है। देखिए, आधान का प्रसंग चल रहा है। आधान के उपयोगी अंगों का सम्बन्ध पुरुष व स्त्री के लग्नों में सप्तम भाव से है। यह बात निर्विवाद है।

पिता आधानकर्ता है जबकि माता प्रसव करने वाली। अतः पिता आधानोपरान्त कृतकार्य हो जाता है जबकि माता प्रसव काल तक सप्तम भाव सम्बन्धी अंगों का उपयोग करती है। अतः पुरुष व स्त्री की कुण्डली में सन्तान पैदा होने के बाद सन्तान का प्रतिनिधित्व पंचम भाव करेगा,

जबकि सन्तान अर्थात् गर्भाधान होगा या नहीं ? प्रसव होगा या नहीं ! इत्यादि प्रश्नों का निर्णय सप्तम भाव से ही करना पड़ेगा। कल्पना कीजिए, किसी की कुण्डली में पंचम भाव से सन्तान सुख सिद्ध होता है किन्तु सप्तमादि भावों से निर्वीर्यत्व, अविवाहित होना आदि सिद्ध होता हो तो पहला फल कैसे घटेगा ? अतः सन्तानोत्पत्ति योगों की नपुंसकों के लिए निष्फलता बताई गयी है। इसी कारण स्त्री की कुण्डली में सन्तान विचार हेतु सप्तम भाव का भी अपना विशेष महत्त्व है इस विषय में भावकारकों का विशेष विचार करते हुए **पराशर** ने भी कहा है—

सुते सुतं विजानीयात् तथा (पत्नीं) सप्तम भावतः।
सुतस्थाने ग्रहस्तिष्ठेत् सोऽपि कारक उच्यते ।।

(बृ. पा., कारका०, श्लोक ३३, बम्बई संस्करण)

बाद के संस्करणों में तथा शब्द के स्थान पर पत्नी शब्द माना गया है। किन्तु सप्तम से पुत्र विचार पराशर को अभीष्ट है। यह तर्क सम्मत भी है। **उत्तरकालामृत** भी सप्तम भाव का पुत्र कारकत्व मानता है।

वादो मैथुनदत्तपुत्रधृतजास्वीयान्यदेशेतथा,
जायामान्मथजं रहस्यमखिलं चौर्यं वदेत्सप्तमात् ।।

(उ. का., कारक., श्लो. ३२)

अर्थात् दत्तक पुत्र का विचार सप्तम से करना चाहिए। सीधी बात है कि अपना पुत्र न होने पर व्यक्ति दत्तक पुत्र लेगा। अर्थात् अपना पुत्र होगा या नहीं ? यह बात सप्तम भाव से भी सम्बद्ध है।

सूत्र में प्रयुक्त पुत्र शब्द को यदि कटपयादि से लें तो नवम भाव का अर्थ आता है। नवम भी पुत्र विचार में ग्राह्य है—

पंचम से पंचम होने के कारण नवम भाव भी पंचमवत् है।

पदोपपदादि से नवम भाव में पहले मुनि ने सन्तान का विचार किया है। अतः प्रसव के विषय में सप्तम भाव मुखय भूमिका रखता है।

कुछ अन्य पुत्रकारक (नवीन उद्भावना)

बुधः केतुर्वा ।।३८।।

बुध व केतु को भी सन्तान कारक के सम्बन्ध में देखना चाहिए। आशय यह है कि बुध नपुंसकता का प्रतीक है तो केतु सर्वोच्च वैराग्य का

प्रतिनिधि है। अतः नपुंसक और वैराग्य योग न होने पर सन्तान योग फलित होंगे, ऐसा समझना चाहिए।

महर्षि जैमिनि के सिद्धान्तों का अनुपालन **प्रश्न मार्ग** व **उत्तरकालामृत** में पग-पग पर किया गया है। देखिए, बुध का कारकत्व, वहाँ शिशु का विचार व वंश चलने या न चलने का विचार बुध से बताया है—

वैराग्यतुं विचित्रहर्म्यभिषजः कण्ठाभिचारौ शिशुः।
नाभीगोत्रसमृद्धिमिश्रसपदार्थान्यान्ध्रभाषाधिपो ॥

(उ. का., श्लोक ३५-३६)

नवम भाव भी पुत्र स्थान

शुभचन्द्राभ्याम् ॥३९॥

शुभ अर्थात् नवम भाव और चन्द्रमा से भी पुत्र का विचार करना चाहिए।

नवम भाव 'भावात्भावम्' के सिद्धान्त से पंचम से पंचम है। अतः पुत्र विचार में ग्राह्य है। जैमिनि ने पीछे पद से नवम भाव में पुत्र विचार बताया है। इसी आधार पर **उत्तरकालामृत** में साफ लिखा है कि पुत्र पुत्री का विचार नवम भाव से भी करना चाहिए—

पुष्टिः सज्जन संगतिः शुभपितृस्वपुत्रपुत्र्यस्तथा...
ब्रह्मस्थापनवैदिकक्रतुधनक्षेपाः स्युरंकर्क्षतः ॥

(उ. का. कारक., श्लोक १७)

स्वलग्ननाथाश्च ॥४०॥

आत्मकारक जिस राशि में हो, उसका स्वामी और जन्म लग्नेश ये दोनों ग्रह भी पुत्रकारक होते हैं।

त्रिकोण स्थानों का सीधा सम्बन्ध, धन, सम्पत्ति, पुत्र व समृद्धि आदि से है। लग्न, पंचम, सप्तम, नवम, तृतीय व एकादश से छह स्थान सन्तान प्राप्ति के संदर्भ में विचारणीय हैं—

सन्तानाप्तेर्मुख्यमार्गं प्रवक्ष्ये,
दुश्चिक्यायांगास्तधी भाग्यभानि।
संतानाख्यानीरितानि ग्रहज्ञैस्
तेष्वप्यंगायात्मजानंगभानि ॥

(प्रश्नचिन्तामणि, २.७)

'सन्तान प्राप्ति के मुख्य भावों को बताता हूँ। तृतीय, एकादश, लग्न, सप्तम, पंचम व नवम ये स्थान दैवज्ञों ने सन्तान स्थान बताए हैं।

इनमें भी लग्न, एकादश, पंचम व सप्तम मुख्य हैं।'

इन स्थानों में जब स्त्री या पुरुष की जन्म राशि से शनि या वृहस्पति गोचरवश आते हैं तो सन्तान प्राप्त होती है। सन्तान प्राप्ति सम्बन्धी गोचर का विशेष विचार जानने के लिए **प्रसवचिन्तामणि** का द्वितीय प्रकाश देखना चाहिए। वहाँ विस्तार से इसका विचार किया गया है।

वेदश्रुत्यन्तरिक्षश्रवणपरिमिते (२०४४) वैक्रमे भाद्रमासे,
तामिस्रे कृष्णजन्मोत्सव इतिदिवसेऽहस्करे राजधान्याम्।
देहल्यां विप्रवंश्यः प्रतिहितविशयो मिश्रलक्ष्मा सुरेशो,
भाष्यं श्रीजैमिनीये सुविमलवचनै रानुपूर्व्यमभाणीत् ॥१॥
शान्तिप्रियाख्यभाष्यं तु सूत्रार्थानां प्रदर्शकम्।
असंशयं विविक्तार्थं रमतां धीमतां मतौ ॥२॥

इति पं० सुरेशमिश्रविरचिते शान्तिप्रियाभिधाने जैमिनीयसूत्रभाष्ये
चतुर्थाध्याये वियोनिभेदोनाम चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

॥ इति शम् ॥

आयु की सम्पूर्ण जानकारी के लिए महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

आयुर्निर्णयः

(Life Span Calculus)

ग्रन्थकार : आचार्य मुकुन्द 'दैवज्ञ पर्वतीय'

हिन्दी टीका व विस्तृत व्याख्या—डॉ० सुरेश चन्द्र मिश्र

मूल हस्तलिखित पाण्डुलिपि से सर्वप्रथम प्रकाशित एक ऐसा ग्रन्थ जो आयु-र्निर्णय सम्बन्धी सभी पहलुओं पर शास्त्रीय व आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डालता है। बादरायण, गर्ग, यवन, पराशर आदि महर्षियों एवं वराह, श्रीपति, सत्याचार, मणित्थ व श्रीधर आदि आचार्यों के वचनों को आधार बनाकर और अपने अनुभव को लेकर इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है।

इस ग्रन्थ रत्न में आप पायेंगे—

(१) आयु की स्थिति क्या ? इस मानव सुलभ जिज्ञासा के लिए आयुर्निर्णय की अनेक ज्ञात व अज्ञात विधियाँ।
(२) जीवन की वास्तविक अवधि जानकर जीवन की व्यावहारिक रूपरेखा का ज्ञान।
(३) अल्पायु से लेकर लम्बी से लम्बी सम्भावित आयु के योग।
(४) गणित द्वारा विभिन्न पद्धतियों मे आयु की सूक्ष्मतम अवधि का ज्ञान।
(५) मृत्यु के कारण (मृत्यु किस प्रकार) का सांगोपांग विवेचन।
(६) रोगों व उनके कारणों का गूढ़ ज्ञान।
(७) मृत्यु-कारक दशा का सही वैज्ञानिक निर्णय।
(८) ग्रहों की भाषा का स्पष्ट अर्थ, जिसे आज तक गुप्त समझा जाता है।
(९) जीवन में एक नया उत्साह व अपूर्व आत्मविश्वास।
(१०) एक अभिनव शास्त्रीय व वैज्ञानिक दृष्टि—जो प्रत्येक क्षण आपका मार्गदर्शन करेगी।
(११) कठिन विषय पर भारतीय पराविद्या की महत्त्वपूर्ण थाती।
(१२) प्रस्तुति सहज एवं सरल। जहाँ साधारण जानकार लाभ उठा सकते हैं वहीं विद्वत् समाज इसकी प्रामाणिकता को सराहेगा।
(१३) ग्रन्थ इस कोटि का जिसे संग्रह करना आप पसंद करेंगे।
(१४) आकस्मिक दुर्घटनाएँ विषय पर अच्छा प्रकाश (उत्तम परिवेश में)।

इस सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ के पास होने पर इस विषय में कुछ और ज्ञातव्य नहीं रहता।

मूल्य : २००रुपये

प्रामाणिक ज्योतिष ग्रंथ

भावार्थ रत्नाकर

श्री रामानुजाचार्य जी का यह ग्रंथ अनेक नूतन और फलित सिद्धान्तों के लिए याद किया जाता है। अभी तक यह हिन्दी के पाठकों के लिए शुद्ध पाठ सहित उपलब्ध नहीं था। इस अभाव की पूर्ति श्री **जगन्नाथ भसीन** ने अपनी उसी चिर परिचित बोधगम्य शैली में की है। इसमें आपको अनेक नये एवं अकाट्य नियम देखने को मिलेंगे जो फल-कथन की प्रामाणिकता को बढ़ाकर यश का भागी बनाएँगे। जैसे—

(i) लग्नेश, जन्म-कुण्डली में शुभ किन्तु वृषभ लग्न में शुक्र कष्टकारक क्यों?
(ii) ग्रह की राशि जिस भाव में पड़ती हो, वहाँ से भी उसका फल देखना चाहिए।
(iii) शुभ बृहस्पति उपचय स्थान में अनिष्ट फल क्यों करेगा?
(iv) धनु लग्न में पंचमस्थ नीचगत शनि शुभ फल क्यों करेगा?
(v) कारक अपने भाव से स्थित हो तो भाव का नाश, लेकिन कितना?

मूल्य : 40 रुपये

दैवज्ञ वल्लभा

(वराह मिहिराचार्य का दुर्लभ प्रश्न ग्रन्थ)

व्याख्याकार—डॉ० शुकदेव चतुर्वेदी

सिद्धान्त, संहिता व होरा की तरह ज्योतिष शास्त्र की प्रश्न शाखा भी बड़ी चामत्कारिक है। पृथुयशा, भट्टोत्पल नीलकंठ, रुद्रमणि आदि विद्वानों ने प्रश्न विषय पर जो कुछ लिखा है उसका आधार वराह मिहिराचार्य का यह प्रस्तुत ग्रन्थ ही है। अभी तक यह ग्रन्थ अलभ्य था। अब विद्वान् टीकाकार की प्रामाणिक व्याख्या सहित सर्वप्रथम प्रकाशित किया गया है। इसकी प्रामाणिकता के पारखी स्वयं विद्वान् पाठक हैं, जिन्होंने इसे बड़ी ललक के साथ अपनाया है।

इसमें आप कार्य-सिद्धि, लाभ-हानि, जय-पराजय, अचानक लाभ (लाटरी सट्टा आदि) विदेशी व्यापार, व्यवसाय में सफलता, चोरी गई वस्तु का प्रश्न, दाम्पत्य, सन्तान प्रेम, विवाह, मजदूर-मालिक विवाद, देश की राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति का विचार आदि विषय वराह मिहिर के वचनों द्वारा पायेंगे।

खोए व्यक्तियों के विषय में जानने की अनूठी पद्धति इसकी अपनी विशेषता है। इसके अतिरिक्त मुष्टि प्रश्न एवं मूक प्रश्न का विचार भी प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत है। श्रमिक सम्बन्ध एवं राजनैतिक प्रश्नों का प्रश्न-पद्धति से समाधान अन्यत्र न मिलेगा।

प्रकीर्ण अध्याय में विशिष्ट प्रश्नों की अपूर्व समाधान पद्धति ज्योतिषियों, ज्योतिष प्रेमियों के लिए पूर्ण सहायक, जिज्ञासुओं का कामधेनु, विद्वानों का स्नेह-पात्र, अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा संग्रहणीय ग्रंथ निश्चय ही हर पल उपकृत करेगा।

नवीन संशोधित संस्करण

मूल्य : 50 रुपये

उत्तर कालामृत

कवि कालिदास द्वारा रचित

हिन्दी व्याख्याकार—जगन्नाथ भसीन

भला ज्योतिष जगत् के महर्षि पराशर के सिद्धान्तों को कौन काट सकता है ? किन्तु आप इस ग्रंथ में कई ऐसे सिद्धान्त पाएँगे जो **पराशर विरोधी ; किन्तु व्यवहार में सर्वथा सही हैं ।**

दक्षिण भारत में इसका विशेष आदर है । सरल हिन्दी व्याख्या सहित इस ग्रंथ में सच्चे उदाहरणों द्वारा विषय का प्रामाणिक विवेचन किया गया है । हिन्दी भाषा का यह पहला प्रामाणिक संस्करण आपके लाभार्थ है ।

नीच ग्रहों से बनने वाले राजयोगों का सोदाहरण विवेचन. शुक्र अनिष्ट स्थानों में भी शुभ फल कारक, आरूढ़ व पद से समस्याओं के समाधान की अनोखी विधि, आयु-विचार, भाव-विचार, मृत्यु का प्रकार, राहु-केतु का विशेष अध्ययन, प्रश्न-विचार आदि विषयों का आश्चर्यपूर्ण विवेचन आप इस ग्रंथ में पाएँगे ।

घड़ी के बिना भी लग्न का ज्ञान हो सकता है । जन्मपत्री के बिना भी भविष्य कथन प्रामाणिक होगा, शनि बहुत सामर्थ्य वाला ग्रह है । पत्नी कैसी होगी ? गर्भस्थ शिशु का ज्ञान आदि सरल ढंग से समझाया गया है ।

ग्रहों के कारकत्व का सर्वथा निराला विवेचन आप यहाँ पाएँगे । दशा व अन्तर्दशा के फल का विवेनन तो सचमुच आपको गागर में सागर प्रतीत होगा ।

ग्रंथ में आपको कई ऐसी चुटीली जानकारी मिलेंगी जो आपको चौंका देंगी तथा आपको सत्य वचन दैवज्ञ बनाकर आपकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाएँगी । मुहूर्त व प्रश्न पर भी चटपटी सामग्री, राजयोग भंग, सन्तान, दत्तक पुत्र, पत्नी, सम्पत्ति, रोग, अमृत घटियों का फल आदि आप सरल शैली में पाएँगे ।

ज्योतिष साहित्य का यह गौरव ग्रंथ अपने नाम के अनुरूप अमृत ही है जिसे आप अवश्य सँजोना, पसन्द करेंगे ।

ज्योतिष शास्त्र में कई मौलिक सिद्धान्तों का सूत्रपात करने वाला परम प्रामाणिक ग्रंथ अब सरलता से उपलब्ध है ।

[illegible], परिवर्धित, संशोधित संस्करण, मूल्य : 100·रुपये

प्राचीन, अनुपम, फलित ग्रन्थ भाषा टीका सहित

भावमंजरी

मूल रचनाकार स्व० आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ पर्वतीय के दीर्घकालीन परिश्रम के सफल रूप में यह ग्रन्थ कुण्डली के भावों का फलादेश कहने का सोपान है। हिन्दी व्याख्या डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र ने की है।

कुण्डली में स्थित ग्रह के बलाबल आदि के आधार पर फलकथन के प्रकार का ज्ञान तो आप सामान्यत: सभी एतद् विषयक ग्रंथों में पा सकेंगे, किन्तु भावों की भी जन्मतिथि, नक्षत्र एवं मुहूर्त निकालकर तदनुसार भाव से सम्बन्धित फल कब, कितनी मात्रा में मिलेगा ? इसका समाधान आप प्रस्तुत ग्रन्थ में पा सकेंगे।

भाव में स्थित ग्रहों के आधार पर तो मनुष्य को जीवन में शुभाशुभ फल मिलता ही है। साथ ही भावेश, भावकारक एवं भाव का विचार भी इस सन्दर्भ में आवश्यक है। फलादेश का सर्वांग पूर्ण प्रकार बताने की दिशा में ग्रन्थकार के प्रयास की प्रशंसा किए बिना आप रह न सकेंगे।

अनेक अशुभ योगों के कारण ग्रहों से घिरे हुए भाव का फल भी मिलेगा। इसके लिए ग्रहों की परस्पर बाधकता का ज्ञान जरूरी है जैसे कुण्डली में अशुभ राहु का दोष बलवान् बुध शान्त कर देता है तथा इन दोनों के अशुभ फल को अकेला शनि दूर कर सकता है। कुण्डली के फलादेश में उठने वाले कई अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तम व तर्कसंगत समाधान आपको मिलेगा।

कई उच्चस्थ ग्रह होने पर भी व्यक्ति भाग्यहीन हो सकता है तथा नीच व अल्पबली ग्रहों के बावजूद भी एक बलवान् शुभ ग्रह जीवन में कैसे और कब सफलता देगा ? इन सब शंकाओं का समाधान आपको मिलेगा। ग्रन्थ में विषय का सर्वांगीण विवेचन, अनेक ऐसी गुत्थियों का समाधान है जो अभी तक सुलझ नहीं पा रही थी। फलादेश विषयक अनोखे ढंग का ग्रन्थ जो अपनी मौलिकता से निश्चय ही आपको प्रसन्न कर देगा।

ज्योतिषशास्त्र के रसज्ञ विद्वानों को कृतकृत्य करने वाली इस मंजरी से आप अपना पुस्तकोपवन अवश्य सजाना पसन्द करेंगे।

संस्कृत भाषा में श्लोकबद्ध हस्तलिखित पाण्डुलिपि से सरल व सुबोध शैली में हिन्दी व्याख्या सहित सर्वप्रथम सम्पादित व प्रकाशित एक विलक्षण ग्रन्थ, जो आपको अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से प्रभावित करेगा। साथ ही ग्रन्थकार के कवित्व को देखकर तो निश्चय ही आप खिल उठेंगे।

मूल्य : 50 रुपये

वृहद् ग्रन्थ

ज्योतिष साहित्य में प्रथम श्रेणी के मौलिक ग्रन्थों में

अष्टकवर्ग महानिबन्ध

(Astakvarga System of Prediction)

ग्रन्थकार—आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ पर्वतीय

हिन्दी टीका एवं विस्तृत व्याख्या—डॉ० सुरेशचन्द मिश्र

ज्योतिष शास्त्र को वैदिक ज्ञान का नेत्र कहा गया है। इस कथन की प्रामाणिकता फलादेश की सत्यता एवं सटीकता पर आधारित है, इस तथ्य से सभी ज्योतिष-जिज्ञासु परिचित हैं। एक तरफ जहाँ समस्त भारत के ज्योतिर्विदों ने अष्टकवर्ग की इस अद्भुत, वैज्ञानिक एवं सटीक फल-कथन प्रणाली को ललक के साथ अपनाया हुआ है, वहीं दूसरी तरफ पाश्चात्य ज्योतिषी भी इससे प्रभावित हुए विना नहीं रह सके हैं।

इस चामत्कारिक विषय को पराशरादि महर्षियों, वराह प्रभृति आचार्यों एवं वैद्यनाथ जैसे संग्राहक विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में स्थान देकर इसका गौरव तो बढ़ाया ही है, साथ ही इसे प्रामाणिकता भी प्रदान की है।

विस्तृत रूप में सर्वांगपूर्ण शास्त्रीय पद्धति से इसका विवेचन आज तक एक स्थान पर संस्कृत ग्रन्थों में भी दुर्लभ रहा है। विशेषतया हिन्दी-भाषी पाठक तो इस विषय के ज्ञान से वंचित ही रहे हैं। प्रस्तुत गौरवशाली ग्रन्थ निश्चय ही इस अभाव की पूर्ति करते हुए आपकी तमाम जिज्ञासाओं को शान्त करेगा।

हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित इस ग्रन्थ रत्न में आप पाएँगे—

(१) विषय की सम्पूर्ण जानकारी। (२) गूढ़ विषय का विद्वत्तापूर्ण, शास्त्रीय किन्तु सरल विवेचन। (३) फलादेश की शक्ति को धारदार बनाने का अद्वितीय ढंग। (४) समग्रता, सरलता एवं विषय की उच्चता के साथ व्यावहारिकता का समावेश। (५) चमत्कारिक फल कहकर यश एवं धन की प्राप्ति।

फलादेश का सूक्ष्मतम अनुसन्धान पूर्ण कार्य प्रथम श्रेणी के मौलिक ग्रन्थों की शृंखला में एक अपूर्व वृद्धि। ज्योतिष के फलित विभाग में मेरुदण्ड समान (जैसा स्थान) आपके ज्ञान में अपूर्व वृद्धि। मूल्य : 200 रुपये।

सामुद्रिक शास्त्र की प्राचीन परम्परा का सर्वांग विवेचन

हस्त संजीवन

(हिन्दी व्याख्या व मूलपाठ सहित)

हिन्दी व्याख्या व सम्पादन—डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र

लगभग ३०० वर्ष पुराना यह ग्रन्थ हस्तसामुद्रिक पर भारतीय पद्धति से लिखे गए ग्रन्थों में अनुपम व प्रामाणिक है। मूल ग्रन्थकार मेघविजयी गणि महाराज ने, जो जैन साधु थे, अपनी तपःपूत प्रतिभा से निष्पन्न ज्ञान को सामुद्रिक शास्त्र के साथ अनूठे ढंग से समायोजित किया है।

पंचांगुलिदेवी की साधना व मूल अमोघ मन्त्र, जिसकी साधना बड़े-बड़े हस्तरेखाविद् भी किया करते थे। ५०० श्लोकों (अनुष्टुप्मान) में रचा गया एक ऐसा सन्दर्भ ग्रन्थ है जिसे अनेक विद्वानों ने प्रमाण रूप में उद्धृत किया है।

सरल व्याख्या पद्धति व विषय का सुन्दर विवेचन शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों को आपके समक्ष प्रकाशित कर देगा।

इसमें आप अनेक अद्भुत विषयों का विवेचन पाएँगे।

१. हाथ का स्पर्श करने मात्र से ही जीवन के ज्वलन्त प्रश्नों का समाधान।
२. हाथ देखकर ही जन्म कुण्डली आदि बनाकर सूक्ष्म फलादेश।
३. शरीर के सभी अंगों का प्रामाणिक फल विवेक।
४. हाथ देखकर ही मूक प्रश्न का निर्णय।
५. हाथ देखने से ही भूमण्डल के फल का ज्ञान (मेदिनीय ज्योतिष)
६. सामुद्रिक के बत्तीस चिह्नों का फल।
७. स्त्री व बालक के हाथ देखने की पद्धति।
८. हथेली पर अनेक चक्रों का न्यास करके प्रामाणिक फल।

हस्त सामुद्रिक पर ऐसा आर्ष ग्रन्थ जिसमें आपकी अनेक अनुत्तरित शंकाओं का समाधान मिलेगा। ज्योतिष के होरा, शकुन, मुहूर्त, प्रश्न आदि अंगों का सामुद्रिक के साथ अनोखा तालमेल देखकर आप खिल उठेंगे।

लघुपाराशरी

व्याख्या—डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र

ज्योतिष प्रेमियों के लिए आवश्यक ही नहीं, अति उपयोगी भी है। पुस्तक छोटी होते हुए भी गागर में सागर है। जिसमें फलित जानने के लिए अनमोल सूत्र आपके हाथ आएँगे और आपके ज्ञान चक्षु खोल देंगे।

इस अनुपम पुस्तक में पाराशर सिद्धान्त को केवल ४२ श्लोकों में समेट दिया गया है जो ज्योतिष रूपी समुद्र के पार जाने में नौका समान सिद्ध होगा।

मूल्य : 40 रुपये